अथ श्रीगरुड़पुराणं भाषाटीकासहितम् ।

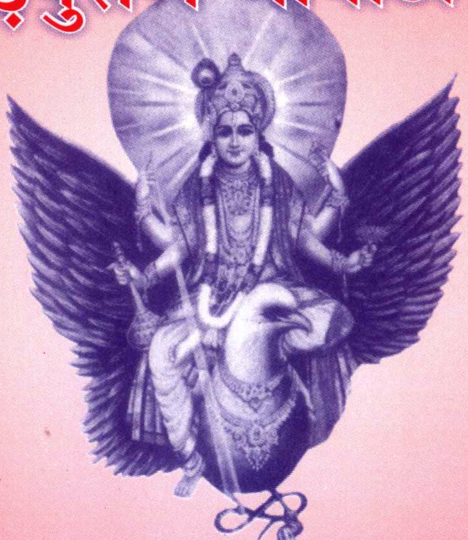

प्रकाशक - तेजकुमार बुक डिपो (प्रा0) लिमिटेड
उत्तराधिकारी - नवलकिशोर बुक डिपो, लखनऊ 226001

[मूल्य रु0 90 मात्र

अष्टम बार 650]

श्रीगणेशाय नमः ।। बन्दन करि गणपतिचरण, श्रीशारदपद ध्याय । भाषा गरुड़पुराण की बिरचूं विशद बनाय १ ।। श्रीभगवान् वृक्षरूप से वर्णन किये जाते हैं—धर्म ही जिनका पुष्ट बँधा हुआ मूल है, वेद ही स्कन्ध (पेड़) है, पुराण शाखाएँ (डालें-डालियाँ) हैं, यज्ञ ही जिसका फूल है, और मोक्ष ही जिसका फल है ऐसे मधुसूदन (मधु दैत्य को मारनेवाले भगवान्) रूपी वृक्ष की जय हो ।। १ ।। देवताओं के क्षेत्र नैमिषारण्य में

श्रीर्जयति ॥ धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः । क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति ॥१॥ नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः। सत्त्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥२॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥३॥ ऋषयः ऊचः ॥ कथितो भवता सम्यग्वेदमार्गः सुखप्रदः । इदानीं श्रोतुमिच्छामो यममार्गं

शौनक आदि ८८००० ऋषियों ने स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिए हजार वर्ष में समाप्त होनेवाले यज्ञ का अनुष्ठान किया था ।। २ ।। एक समय प्रातःकाल होम करके बैठे हुए उन मुनियों ने सूतजी का सत्कार कर उनसे आदरपूर्वक यह पूछा कि ।। ३ ।। (हे सूतजी !) आपने सुख के देनेवाले वेद के मार्ग का अच्छे प्रकार वर्णन कर

दिया है। अब भयदायक यम के मार्ग का वृत्तान्त और संसार के दुःख तथा उनसे उत्पन्न क्लेशों के नाश का साधन आपसे सुनना चाहते हैं इसलिए इस लोक के और परलोक के दुःखों को यथार्थरूप से वर्णन कीजिए ॥ ४-५ ॥ सूतजी बोले कि हे मुनियो ! पुण्यात्माओं को सुख देनेवाले और पापियों को दुःख देनेवाले बहुत

भयप्रदम् ॥ ४ ॥ तथा संसारदुःखानि तत्क्लेशक्षयसाधनम्। ऐहिकामुष्मिकान्क्लेशान् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ श्रृणुध्वं भो विवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम्। सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां दुःखदायकम् ॥ ६ ॥ यथा श्रीविष्णुना प्रोक्तं वैनतेयाय पृच्छते। तथैव कथयिष्यामि सन्देहच्छेदनाय वः ॥ ७ ॥ कदाचित्सुखमासीनं वैकुण्ठे श्रीहरिं गुरुम्। विनयावनतो

दुर्गम यममार्ग को आप लोगों से कहता हूं, सुनिये ॥ ६ ॥ जैसे गरुड़जी के पूछने पर विष्णु भगवान् ने उनसे जो इतिहास कहा है उसी प्रकार आप लोगों का सन्देह दूर करने के लिए कहता हूँ ॥ ७ ॥ किसी समय वैकुण्ठलोक में बैठे हुए जगद्गुरु श्रीभगवान् से गरुड़जी ने विनय करके पूछा कि हे देव ! आपने मुझसे भक्ति

के अनेक मार्ग तथा भक्तों की उत्तम गति का बहुत प्रकार से वर्णन किया है ॥ ८-९ ॥ अब आपसे भयदायक यम का मार्ग सुनना चाहता हूँ । क्योंकि मैंने सुना है कि जो आपकी भक्ति से रहित हैं वे ही यमलोक में जाते हैं ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आपका नाम जपना सुगम है और जिह्वा अपने वश में हैं इस पर भी जो

भूत्वा पप्रच्छ विनतासुतः ॥ ८ ॥ गरुड़ उवाच ॥ भक्तिमार्गो बहुविधः कथितो भवता मम । तथा च कथिता देव भक्तानां गतिरुत्तमा ॥ ९ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भयंकरम् । त्वद्भक्तिविमुखानां च तत्रैव गमनं श्रुतम् ॥ १० ॥ सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी । तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराधमान् ॥ ११ ॥ अतो मे भगवन् ब्रूहि पापिनां या गतिर्भवेत् । यममार्गस्य दुःखानि यथा ते प्राप्नुवन्ति वै ॥ १२ ॥ श्रीभगवा-

मनुष्य नरक में जाते हैं उन अधमों को धिक्कार है ॥ ११ ॥ इसलिए हे भगवन् ! पापियों की जो गति होती है और यमलोक के मार्ग में उनको जो दुःख मिलते हैं वह सब मुझसे कहिए ॥ १२ ॥ श्रीभगवान्

कहते हैं कि हे पक्षिराज गरुड़ ! सुनिए । पापी लोग जिस मार्ग में होकर जाते हैं वह सुनने में भी भयदायक है ॥ १३ ॥ हे गरुड़ ! जो पापकर्म में लगे हैं, दया और धर्म से रहित हैं, कुसंगति में रहते हैं, उत्तम वेद-शास्त्र और सुसंगति से जो दूर रहते हैं, तथा जो अपने को प्रतिष्ठित समझकर किसी से नम्रता नहीं करते,

नुवाच ॥ वक्ष्येऽहं श्रृणु पक्षीन्द्र यममार्गं च येन ये । नरके पापिनो यान्ति श्रृण्वतामपि भीतिदम् ॥ १३ ॥ ये हि पापरतास्तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः । दुष्टसंगाश्च सच्छास्त्रसत्संगतिपराङ्मुखाः ॥ १४ ॥ आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः । आसुरं भावमापन्ना दैवीसंपद्विवर्जिताः॥ १५ ॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥ ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम् । पापशीला

धन और मान के मद से जो असुरभाव को प्राप्त हो रहे हैं और दैवीसंपत्ति से रहित हैं, माया-मोह में फँसकर जिनका चित्त परधन-परदारादि में भ्रम रहा है और जो काम-भोगों में फँसे हुए हैं वे अपवित्र नरक में गिरते हैं ॥ १४-१६ ॥ जो ज्ञानी मनुष्य हैं वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं और जो पापी हैं वे दुःख से

यमकृत कष्टों को भोगते हैं ॥ १७ ॥ जैसे पापी लोग इस लोक में दुःख भोगकर मरने के बाद यमयातना को पाते हैं उसको सुनो ॥ १८ ॥ पहले जन्म के संचित पुण्य और पापकर्म के फल को भोगने के बाद शेष अशुभ कर्मों से उसके शरीर में कोई रोग पैदा हो जाता है ॥ १९ ॥ फिर मानसिक तथा शारीरिक कष्ट से युक्त और जीवन की आशा किये हुए जीव को बलवान् काल, सर्प के समान, बिना जाने ही आकर घर लेता

नरा यान्ति दुःखेन यमयातनाम् ॥ १७॥ पापिनामैहिकं दुःखं यथा भवति तच्छृणु । ततस्ते मरणं प्राप्य यथा गच्छन्ति यातनाम् ॥ १८ ॥ सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा पूर्वं यथार्जितम् । कर्मयोगात्तदा तस्य कश्चिद्व्याधिः प्रजायते ॥ १९ ॥ आधिव्याधिसमायुक्तं जीविताशासमुत्सुकम् । कालो बलीयानहिवदज्ञातः प्रतिपद्यते ॥ २० ॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः

है ॥ २० ॥ इतने पर भी उसको वैराग्य नहीं प्राप्त होता है। वह अपने से पालित स्त्री-पुत्रादि से पालन किये जाने पर भी बुढ़ापा से रूप-रहित और मरणासन्न हो घर में रहता है तथा अपमानयुक्त उनके दिये हुए आहार को कुत्ते के समान खाता है तथा रोग से अग्नि मन्द हो जाती है, आहार घट जाता है, घूमने-

फिरने की शक्ति नहीं रहती है ॥ २१-२२ ॥ कफ से जब नाड़ियाँ रुक जाती हैं तो प्राणवायु उनसे निकलने का उद्योग करता है तब नेत्र फट जाते हैं और कास-श्वास से पीड़ित प्राणी के कण्ठ में घरघराहट होने लगती है ॥ २३ ॥ भाई-बन्धुओं से घिरा हुआ वह पड़ा-पड़ा शोचा करता है और काल के वश में होने से बुलाने पर

स्वयं भृतैः। जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ २१ ॥ आस्तेवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन्। आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोल्पचेष्टितैः ॥ २२ ॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः। कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ २३ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः। वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ २४ ॥ एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्मजितेन्द्रियः। म्रियते रुदतां स्वाना मुरुवेदनयास्तधीः ॥२५॥ तस्मिन्नन्तक्षणे तार्क्ष्य

भी नहीं बोलता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार कुटुम्ब के पालन-पोषण में मन लगाये तथा बड़े कष्ट से नष्टबुद्धिवाला वह प्राणी रोते हुए अपने कुटुम्बियों के बीच में मर जाता है ॥ २५ ॥ हे गरुड़ ! उस अन्त समय में देवताओं

की सी दिव्यदृष्टि हो जाती है, सम्पूर्ण संसार एकाकार मालूम होता है अतः वह कुछ भी नहीं कहता है ॥ २६ ॥ सब इन्द्रियों के विकल होने से चेतनता जाती रहती है और यमदूतों के निकट होने से प्राण चलायमान हो जाते हैं ॥ २७ ॥ जब प्राणवायु अपने स्थान से चलायमान होता है तब एक-एक क्षण कल्प के समान बीतता

दैवी दृष्टिः प्रजायते । एकीभूतं जगत्सर्वं न किंचिद्वक्तुमीहते ॥ २६ ॥ विकलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जडतां गते । प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर्निकटवर्तिभिः ॥ २७ ॥ स्वस्थानाच्चलिते श्वासे कल्पाख्यो ह्यातुरक्षणः । शतवृश्चिकदष्टस्य या पीडा सानुभूयते ॥ २८ ॥ फेनमुद्गिरते सोऽथ मुखं लालाकलं भवेत् । अधोद्वारेण गच्छन्ति पापिनां प्राणवायवः ॥ २९ । यमदूतौ

है और सैकड़ों बिच्छुओं के काटने की सी पीड़ा मालूम पड़ती है ॥ २८ ॥ इसके बाद मुंह से झाग उगलने लगता है, लार से मुंह भर जाता है । पापियों का प्राणवायु अधोद्वार (गुदा में) से होकर निकलता है ॥ २९ ॥ प्राण निकलने के समय क्रोध से लाल आंखोंवाले, भयानक तथा पाश और लोहदण्ड हाथ में लिये,

नग्नवेश, दाँत कटकटाते हुए यम के दो दूत वहाँ आकर प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥ उनके बाल ऊपर को उठे हुए रहते हैं, वे कौआ के समान काले होते हैं, उनका मुख टेढ़ा होता है, बड़े-बड़े नख होते हैं जिनसे वे हथियार का काम लेते हैं। उनको देखकर प्राणी डर से मल-मूत्र त्याग देता है ॥ ३१ ॥ हाहाकार करता

तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ। पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायितौ ॥ ३० ॥ ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ। स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥ ३१ ॥ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो हाहाकुर्वन कलेवरात्। तदैव गृह्यते दूतैर्याम्यैः पश्यन् स्वकं गृहम् ॥ ३२ ॥ यातनादेहमावृत्य पाशैर्बद्ध्वो गले बलात्। नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥ ३३ ॥ तस्यैवं नीयमानस्य दूताः संतर्जयन्ति च। प्रवदन्ति भयं तीव्रं नर-

हुआ वह प्राणी शरीर से निकलने पर अँगूठे के बराबर शरीर को पाता है और अपने घर को देखता हुआ यमदूतों से पकड़ा जाता है ॥ ३२ ॥ उस यातना भोगने योग्य शरीर को घेरकर उसके गले में रस्सी बाँधकर बलपूर्वक ऐसे ले जाते हैं जैसे अपराधी पुरुष को राजा के सिपाही ले जाते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वे यमदूत

उस जीव को ले जाते हुए डराते-धमकाते तथा नरकों का बार-बार भय दिलाते हैं ॥ ३४ ॥ और कहते हैं कि हे दुष्टात्मा ! जल्दी चल, तू यमलोक को जायगा। देर मत कर, हम तुझे कुंभीपाक आदि नरकों में ले जायँगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार के यमदूतों के वचन तथा भाई-बन्धुओं का रोना सुनकर ऊँचे स्वर से हाहाकार

काणां पुनः पुनः ॥ ३४ ॥ शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् यास्यसि त्वं यमालयम्। कुम्भी पाकादिनरकांस्त्वां नयावोऽद्य माचिरम् ॥ ३५ ॥ एवं वाचस्तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा। उच्चैर्हाहेति विलपंस्ताड्यते यमकिङ्करैः ॥३६॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः । पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघंस्वम-नुस्मरन् ॥ ३७ ॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबा-

कर रोता हुआ वह यमदूतों से पीटा जाता है ॥ ३६ ॥ उन यमदूतों के डर से उसका हृदय फट जाता है और वह काँपने लग जाता है तथा अपने पापों का स्मरण करता हुआ वह मार्ग में कुत्तों से खाया जाता है ॥ ३७ ॥ भूख और प्यास से पीड़ित एवं धूप और दावानल की पवन से तपा हुआ प्राणी गरम बालूवाले मार्ग में, जहाँ

कि विश्राम-स्थान और जल नहीं है, चलने में असमर्थ भी कोड़ा की मार से पीड़ित हो चलता है ॥ ३८ ॥ थका हुआ वह जहाँ तहाँ गिरता-पड़ता, मूर्च्छित होता तथा फिर उठता है, इस प्रकार असमर्थ प्राणी पापरूप अंधकारमय मार्ग से यमलोक में पहुँचाया जाता है ॥ ३९ ॥ दो या तीन मुहूर्तों में वह प्राणी यमलोक में पहुँचाया

लुके । कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोपि निराश्रमोदके ॥ ३८ ॥ तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः । यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥ ३९ ॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीयते तत्र मानवः । प्रदर्शयन्ति दूतास्ता घोरा नरकयातनाः ॥ ४० ॥ मुहूर्तमात्रात्त्वरितं यमं वीक्ष्य भयं पुमान् । यमाज्ञया समं दूतैः पुनरायाति खेचरः ॥ ४१ ॥ आग-

जाता है । वहाँ यमदूत उसको घोर यमयातनाएँ दिखाते हैं अर्थात् नरकों का दृश्य दिखाते हैं ॥ ४० ॥ फिर एक मुहूर्तमात्र में वह यमराज को देखकर भयभीत होता है । तथा यमराज की आज्ञा से वह आकाशचारी फिर दूतों के साथ मृत्युलोक में आ जाता है ॥ ४१ ॥ वहाँ वासना से बँधा हुआ वह देह में प्रवेश करना

चाहता है परन्तु यमदूतों से बाँधा हुआ वह भूख प्यास से पीड़ित हो रोता है ॥ ४२ ॥ यद्यपि आतुरसमय में दिया हुआ दान और मृत्युस्थान पर पुत्रादिकों से दिये हुए पिण्ड को खाता है तथापि हे गरुड़ ! वह पापी नास्तिक होने से तृप्त नहीं होता है ॥ ४३ ॥ पापियों को पिण्डदान और तिलजल की अंजुली नहीं मिलती हैं इसलिए

म्य वासनाबद्धो देहमिच्छन् यमानुगैः धृतः। पाशेन रुदति क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः ॥ ४२ ॥ मुक्तपिण्डं सुतैर्दत्तं दानं चातुरकालिकम्। तथापि नास्तिकस्तार्क्ष्य तृप्तिं याति न पातकी ॥ ४३ ॥ पापिनां नोपतिष्ठन्ति दानं श्राद्धं जलाञ्जलिः। अतः क्षुद्व्याकुला यान्ति पिण्डदानभुजोऽपि ते ॥ ४४ ॥ भवन्ति प्रेतरूपास्ते पिण्डदानविवर्जिताः। आकल्पं निर्जनारण्ये भ्रमन्ति बहुदुःखिताः ॥ ४५ ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अभुक्त्वा

क्षुधा-तृषा से व्याकुल रहता है ॥ ४४ ॥ जो पिण्डदान से रहित हैं वे प्रेत होकर कल्पभर दुःखित हुए निर्जन वन में घूमते हैं ॥ ४५ ॥ बिना भोगे करोड़ों कल्प में भी कर्म क्षीण नहीं होते हैं। तथा यम-यातना भोगें

बिना मनुष्य का शरीर भी नहीं मिलता है ।। ४६ ।। इसलिए पुत्र को चाहिए कि वह दश दिन तक पिण्डदान करे। हे पक्षिराज गरुड़ ! वह प्रतिदिन का दिया हुआ पिण्ड चार भागों में बँट जाता है ।। ४७ ।। दो भागों से तो पंचभूतात्मक देह पुष्ट होता है (अर्थात् उस प्राणी के लिए शरीर बनता है), तीसरा भाग यमदूतों

यातनां जन्तुर्मानुष्यं लभते न हि ॥ ४६ ॥ अतो दद्यात्सुतः पिण्डान्दिनेषु दशसु द्विज। प्रत्यहं ते विभज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम ॥ ४७ ॥ भागद्वयं तु देहस्य पुष्टिदं भूतपञ्चके। तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं सोपजीवति ॥ ४८ ॥ अहोरात्रैश्च नवभिः प्रेतः पिण्डमवाप्नुयात् । जन्तुर्निष्पन्नदेहश्च दशमे बलमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ दग्धे देहे पुनर्देहः पिण्डैरुत्पद्यते खग। हस्तमात्रः

को मिलता है तथा चौथा भाग उस प्रत को मिलता है ।। ४८ ।। इस प्रकार नव दिन पिण्ड पाकर उस प्रेत का शरीर बन जाता है और दशवें पिण्ड से उसमें बल आ जाता है ।। ४९ ।। हे गरुड़ ! शरीर जल जाने पर फिर पिण्डों से एक हाथ भर का शरीर बन जाता है। जिससे मार्ग में शुभ और अशुभ फलों को भोगता

हुआ यमलोक में जाता है ।। ५० ।। पहले दिन जो पिण्ड दिया जाता है उससे मस्तक बनता है, दूसरे पिण्ड से गरदन और कन्धा, तीसरे पिण्ड से हृदय, चौथे से पीठ, पाँचवें से नाभि, छठे से कटि तथा गुप्त स्थान (मल-मूत्र के स्थान) और सातवें पिण्ड से घुटना और सब प्रकार की हड्डियाँ, आठवें तथा नवें पिण्ड से जंघा

पुमान् येन पथि भुंक्ते शुभाशुभम् ॥ ५० ॥ प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेनमूर्धा प्रजायते । ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन तृतीयाद्धृदयं भवेत् ॥ ५१ ॥ चतुर्थेन भवेत्पृष्ठं पञ्चमान्नाभिरेव च । षष्ठेन च कटी गुह्यं सप्तमा त् सक्थिनी भवेत् ॥ ५२ ॥ जानू पादौ तथा द्वाभ्यां दशमेऽह्नि क्षुधा तृषा ॥ ५३ ॥ पिण्डजं देहमाश्रित्य क्षुधाविष्टस्तृषार्दितः । एकादशं द्वादशं च प्रेतो भुंक्ते दिनद्वयम् ॥ ५४ ॥ त्रयोदशेऽहनि प्रेतो यन्त्रितो यमकिङ्करैः । तस्मिन्मार्गे व्रज-

और पैर उत्पन्न होते हैं और दशवें दिन के पिण्ड से उस शरीर में भूख और प्यास पैदा होती है ।।५१–५३।। इस प्रकार पिण्ड से उत्पन्न शरीर को पाकर भूख-प्यास से व्याकुल उस प्रेत को ग्यारहवें और बारहवें दिन दिया हुआ अन्नादि खाने को मिलता है ।। ५४ ।। तेरहवें दिन यमदूतों से बाँधा हुआ वह प्रेत पकड़े हुए बन्दर

की तरह अकेला उस मार्ग में चलता है ॥ ५५ ॥ हे गरुड़ ! वैतरणी नदी को छोड़कर यममार्ग का विस्तार छियासी हजार योजन है ॥ ५६ ॥ प्रेत प्रतिदिन दो सौ सैंतालीस योजन रात-दिन में चलता है ॥ ५७ ॥ रास्ते में क्रम से सोलह पुर मिलते हैं, उनको पारकर पापी धर्मराज के स्थान में जाता है ॥ ५८ ॥ सोलह

त्येको गृहीत इव मर्कटः ॥ ५५ ॥ षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः । यममार्गस्य विस्तारो विना वैतरणी खग ॥ ५६ ॥ अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम् । चत्वारिंशत्तथा सप्त दिवारात्रेण गच्छति ॥ ५७ ॥ अतीत्य क्रमशो मार्गे पुराणीमानि षोडश । प्रयाति धर्मराजस्य भवन पातकीजनः ॥ ५८ ॥ सौम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमो क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्। नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयो-

पुरों के ये नाम हैं—१ सौम्य, २ सौरिपुर, ३ नगेन्द्रभवन, ४ गन्धर्वशैल, ५ आगमपुर, ६ क्रौञ्चपुर, ७ क्रूरपुर, ८ विचित्रभवन, ९ बह्वापद, १० दुःखदपुर, ११ नानाक्रन्दनपुर, १२ सुतप्तभवन, १३ रौद्रपुर, १४ पयोवर्षण,

१५ शीताढ्य और १६ बहुभीति । इसके आगे धर्मराज का भवन और उससे आगे यमपुर है ।। ५९ ।। यम के पाशों से बँधा हुआ वह पापी मार्ग में हाय-हायकर रोता हुआ अपने घर को छोड़कर यमराज के पुर को जाता है ।। ६० ।। गरुड़पुराण का पहला अध्याय समाप्त हुआ ।। १ ।।

वर्षणं शीताढ्यं बहुभीतिधर्मभवनं याम्यं परं चाग्रतः ॥ ५८ ॥ याम्यपाशैर्धृतः पापी हाहेति प्ररुदन् पथि। स्वगृहं तु परित्यज्य पुरं याम्यमनुव्रजेत् ॥ ६० ॥ इति श्रीसारोद्धारे गरुडपुराणे पापिनामैहिकामुस्मिकदुःखनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

गरुड उवाच॥ कीदृशो यमलोकस्य पन्था भवति दुःखदः। यत्र यान्ति यथा पापास्तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यममार्गं महद्-

गरुड़जी बोले कि हे भगवन् ! यमलोक का कैसा दुःखदायक मार्ग है और उसमें किस प्रकार पापी लोग जाते हैं यह मुझसे कहिए ।। २ ।। श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! बहुत दुःखदायक यम का मार्ग तुझसे

कहता हूँ जिसको सुनकर मेरे भक्त तुम भी कंपायमान हो जाओगे ॥ २ ॥ उस मार्ग में विश्राम करने के लिए वृक्षों की छाया नहीं है और प्राणों की रक्षा के लिए अन्न आदि भी नहीं हैं ॥ ३ ॥ प्यास लगने पर पीने के लिए जल भी

दुःखप्रदं ते कथयाम्यहम् । मम भक्तोऽपि तच्छ्रुत्वा त्वं भविष्यसि कम्पितः ॥ २ ॥ वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः । यस्मिन्मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् समुद्धरेत् ॥ ३ ॥ जलं न दृश्यते क्वापि तृषितोऽतीव यत् पिबेत् । तपन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा खग ॥ ४ ॥ तस्मिन्गच्छति पापात्मा शीतवातेन पीडितः । कण्टकैर्विध्यते क्वापि क्वचित्सर्पैर्महाविषैः ॥ ५ ॥ सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिर्घोरैर्भक्ष्यते क्वापि पापकृत् । वृश्चिकैर्द-

नहीं है । वहाँ प्रलयकाल के समान बारहों सूर्य तपते हैं ॥ ४ ॥ उस मार्ग में ठंढी हवा से दुःखित प्राणी कहीं काँटों से बिंधा हुआ, कहीं साँपों से काटा हुआ चलता है ॥ ५ ॥ कहीं सिंह, व्याघ्र (बाघ) और कुत्तों

से काटा जाता है, कहीं बिच्छुओं से काटा जाता है तथा कही अग्नि से जलता है ।। ६ ।। इसके पश्चात् बड़ा भयंकर असिपत्रवन मिलता है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई दो हजार योजन की है ।। ७ ।। उसमें कौआ, उल्लू, बर्रं, गीध, मधुमाखी और मच्छर भरे हैं तथा दावाग्नि लगी हुई है, वहाँ उन तलवार के समान पैने

श्यते क्वापि क्वचिद्दह्यति वह्निना ॥ ६ ॥ ततः क्वचिन्महाघोरमसिपत्रवनं महत् । योजनानां सहस्रे द्वे विस्तारायामतः स्मृतम् ॥ ७ ॥ काकोलूकवटगृध्रसरघादंशसंकुलम् । सदावाग्नि च तत्पत्रैश्छिन्नभिन्नः प्रजायते ॥ ८ ॥ क्वचित्पतत्यन्धकूपे विकटात्पर्वतात्क्वचित् । गच्छते क्षुरधारासु शंकूनामुपति क्वचित् ॥ ९ ॥ स्खलत्यन्धरमेत्युग्रे जले निपतति क्वचित् । क्वचित्पङ्के

पत्तों से छिन्न-भिन्न हो जाता है ।। ८ ।। रास्ते में कहीं अंधे कुएँ में गिरता है, कहीं भयावह पर्वत से गिरता है, कहीं छुरे की धार के समान कीलों या काँटों पर चलना पड़ता है ।। ९ ।। कहीं अन्धकारयुक्त गड्ढे में गिरता है, कहीं जल में गिरता है, कहीं जोंकों से युक्त कीचड़ में फँसता है और कहीं तपे हुई कीचड़

में चलना पड़ता है ।। १० ।। कहीं गर्म बालू पर, कहीं तपे हुए ताँबे के पत्रों पर और कहीं धुआँ से भरे मार्ग में अंगारों पर चलना पड़ता है ।। ११ ।। मार्ग में कहीं अंगारे बरसते हैं, कहीं वज्र और शिलाएँ बरसती हैं। कहीं खून की और शस्त्रों की वर्षा होती है तो कहीं गर्म जल बरसता है ।। १२ ।। कहीं खारी कीच की

जलौकाढ्ये क्वचित्संतप्तकर्दमे ॥ १० ॥ संतप्तवालुकाकीर्णे ध्मातताम्रमये क्वचित् । क्वचिदङ्गारराशौ च महाधूमाकुले क्वचित् ॥ ११ ॥ क्वचिदङ्गारवृष्टिश्च शिलावृष्टिः सवज्रका । रक्तवृष्टिः शस्त्रवृष्टिः क्वचिदुष्णाम्बुवर्षणम् ॥ १२ ॥ क्षारकर्दमवृष्टिश्च महानिम्नानि च क्वचित्। वप्रप्ररोहणं क्वापि कन्दरेषु प्रवेशनम् ॥ १३ ॥ गाढान्धकारस्तत्रास्ति दुःखारोहशिला क्वचित् । पूयशोणितपूर्णाश्च विष्ठापूर्णा ह्रदाः क्वचित् ॥ १४ ॥ मार्गमध्यवहात्युग्रा

वर्षा होती है, कहीं नीचा रास्ता है, कहीं ऊँचे पर्वत पर चढ़ना पड़ता है और कहीं गुफाओं में जाना पड़ता है ।। १३ ।। वहाँ बहुत गहरा अन्धकार है, कहीं बड़े दुःख से शिला पर चढ़ा जाता है। कहीं पीब, रक्त और विष्ठा से भरे कुण्ड हैं ।। १४ ।। मार्ग में अत्यन्त भयदायक वैतरणी नदी है। वह देखने में दुःखदायक ही नहीं है

किन्तु वह सुनने में भी भयदायक है ॥ १५ ॥ वह दुर्गम नदी सौ योजन चौड़ी है, उसमें पीब और रक्त बहता है, हड्डियों से बने हुए उसके किनारे हैं तथा मांस और रक्त की उसमें कीच है ॥ १६ ॥ वह पापियों के लिए अगाध और दुस्तर है । उसमें बाल ही शिवाल हैं, बड़े-बड़े घड़ियालों और सैकड़ों घोर गिद्धादि पक्षियों से

घोरा वैतरणी नदी। सा दृष्टा दुःखदा किं वा यस्या वार्त्ता भयावहा ॥ १५ ॥ शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितवाहिनी। अस्थिवृन्दतटा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा ॥ १६ ॥ अगाधा दुस्तरा पापैः केशशैवालदुर्गमा। महाग्राहसमाकीर्णा घोरपक्षिशतैर्वृता ॥ १७ ॥ आगतं पापिनं दृष्ट्वा ज्वालाधूमसमाकुला। क्वथते सा नदी तार्क्ष्य कटाहान्तर्घृतं यथा ॥ १८ ॥ कृमिभिः

व्याप्त है ॥ १७ ॥ वह नदी आये हुए पापी को देखकर अग्नि की ज्वाला और धुआँ से भरकर ऐसे खौलने लगती है जैसे कड़ाही में घी खौलता है ॥ १८ ॥ वह नदी सुई के तुल्य मुंहवाले घोर कीड़ों से भरी है तथा

वज्र के समान चोंचवाले गीध और कौओं से घिरी है ॥ १९ ॥ तथा सूस (घड़ियाल), मगर, जोंक, मच्छ और कछुआ आदि जलचर तथा थल में रहनेवाले अन्य मांसभक्षक जीवों से पूर्ण है ॥ २० ॥ उस नदी की धारा में पड़े हुए पापी लोग हा भाई, हा पुत्र, हा तात, इस प्रकार बार बार चिल्लाकर रोते हैं ॥ २१ ॥ जब प्राणी

संकुला घोरैः सूचिवक्त्रैः समन्ततः । वज्रतुण्डैर्महागृध्रैर्वायसैः परिवारिता ॥
१८ ॥ शिशुमारैश्च मकरैर्जलौकैर्मत्स्यकच्छपैः । अन्यैर्जलस्थजीवैश्च
पूरिता मांसभेदकैः ॥ २० ॥ पतितास्तत्प्रवाहे च क्रन्दति बहु पापिनः ।
हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ क्षुधितास्तृषिताः पापाः
पिबन्ति किल शोणितम् । सा सरिद्रुधिरापूरं वहन्ती फेनिलं बहु ॥ २२ ॥
महाघोरातिगर्जन्ती दुर्निरीक्ष्या भयावहा । तस्या दर्शनमात्रेण पापाः

को भूख और प्यास लगती है तो रक्त ही पीने को मिलता है। क्योंकि उस नदी में फेनयुक्त रुधिर ही बहता है ॥ २२ ॥ वह बड़े जोर से गर्जती है, उसकी ओर देखा भी नहीं जाता । वह ऐसी भयंकर है कि उसको

देखकर ही पापी अचेत हो जाते हैं ॥ २३ ॥ उसमें बहुत से बिच्छू और काले साँप भरे हैं। उसमें पड़े हुओं को बचानेवाला कोई नहीं है ॥ २४ ॥ उस वैतरणी नदी में लाखों भँवर पड़ते हैं, जिससे पापी लोग क्षणमात्र में पाताल में चले जाते हैं और क्षण भर में ही ऊपर आ जाते हैं ॥ २५ ॥ वह नदी पापियों को

स्युर्गतचेतनाः ॥ २३ ॥ बहुवृश्चिकसंकीर्णा सेविता कृष्णपन्नगैः । तन्मध्ये पतितानां च त्राता कोपि न विद्यते ॥ २४ ॥ आवर्तशतसाहस्रैः पाताले यान्ति पापिनः । क्षणं तिष्ठन्ति पाताले क्षणादुपरिवर्तिनः ॥ २५ ॥ पापिनां पतनायैव निर्मिता सा नदी खग । न पारं दृश्यते तस्या दुस्तरा बहुदुःखदा ॥ २६ ॥ एवं बहुविधक्लेशे यममार्गेऽतिदुःखदे । क्रोशन्तश्च रुदन्तश्च दुःखिता यान्ति पापिनः ॥२७॥ पाशेन यन्त्रिताः केचित्कृष्यमाणास्तथांकुशैः । शस्त्राग्रैः

गिराने के लिए ही बनाई गई हैं। उसका पार नहीं दिखाई देता है। वह बहुत दुःखदायक और दुस्तर है ॥ २६ ॥ इस प्रकार अनेक क्लेश और दुःखों से भरे यममार्ग में पापी लोग रोते और चिल्लाते जाते हैं ॥ २७ ॥ किसी को फाँस में बाँधकर, किसी को अंकुशों से खींचकर और किसी को भाला आदि अस्त्रों से छेदकर यमदूत ले

जाते हैं ॥ २८ ॥ तथा किसी के नाक में और किसी कान में रस्सी बाँधकर तथा किसी को काल की फाँसी में बाँधकर खींचते हैं और किसी को कौए ही चोंच से घसीटते हैं ॥ २९ ॥ यमदूत किसी-किसी के गले, हाथ, पैर और पीठ में संकल बाँधकर और उनपर लोहा लादकर मार्ग में ले जाते हैं ॥ ३० ॥ तथा यमदूत भयंकर

पृष्ठतः प्रोतैर्नीयमानाश्च पापिनः ॥ २८ ॥ नासाग्रपाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथापरे । कालपाशैः कृष्यमाणाः काकैः कृष्यास्तथापरे ॥ २९ ॥ ग्रीवाबाहुषु पादेषु बद्धाः पृष्ठे च श्रृंखलैः । अयोभारचयं केचिद्वहन्तः पथि यान्ति ये ॥ ३० ॥ यमदूतैर्महाघोरैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः वमन्तो रुधिरं वक्त्रात्तदेवाश्नन्ति ते पुनः ॥ ३१ ॥ शोचन्ते स्वानि कर्माणि ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः । अतीवदुःखसंपन्नाः प्रयान्ति यममन्दिरम् ॥ ३२ ॥ तथापि स व्रजन्मार्गे

मुद्गरों से मारते हैं जिससे मुँह से खून गिरने लगता है । उसी खून को वे पापी पुनः खाते हैं ॥ ३१ ॥ और अपने किये हुए कर्मों को सोचकर बहुत ग्लानि करते हैं और अत्यन्त दुःख भोगते हुए यमलोक को जाते हैं ॥ ३२ ॥ तथापि वे मूढ़ रास्ते में चलते हुए हे पुत्र, हे पौत्र, ऐसा कहते और हाय-हायकर रोते हैं तथा बहुत दुःखी

होते हैं ।। ३३ ।। और कहते हैं कि बड़ भारी पुण्य से तो मनुष्य का जन्म मिलता है, उसको पाकर भी धर्म नहीं किया, यह मैंने क्या किया ।। ३४ ।। मैंने दान नहीं दिया, होमं नहीं किया, न तप ही किया और न देवताओं की पूजा ही की, न विधिपूर्वक तीर्थों की सेवा ही की है । हे जीव ! जैसा तूने किया है वैसा फल भोग ।। ३५ ।।

पुत्र पौत्र इति ब्रुवन् । हाहेति प्ररुदन्नित्यमनुतप्यति मन्दधीः ॥ ३३ ॥ महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते । तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम् ॥ ३४ ॥ मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः । न तीर्थसेवा विहिता विधानतो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥ ३५ ॥ न पूजिता विप्रगणाः सुरापगा न चाश्रिताः सत्पुरुषा न सेविताः । परोपकारो न कृतः कदाचन देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥ ३६ ॥

हे जीव ! तूने न तो ब्राह्मणों की पूजा, न गंगाजी का आश्रय लिया, न सत्पुरुषों की सेवा की, न कभी परोपकार ही किया इसलिए जैसा तूने किया है वैसा फल भोग ।। ३६ ।। निर्जल देश में मनुष्य और पक्षियों के लिए तूने तालाब आदि जलाशय नहीं बनवाया तथा ब्राह्मण और गौओं के लिए भी कुछ जीविका नहीं दी

इसलिए हे जीव ! जैसा तूने किया है वैसा फल भोग ॥ ३७ ॥ न तो अन्न आदि नित्यदान किया, न गौओं के लिए तृण आदि ही दिया; न वेद और शास्त्र के वचनों का प्रमाण ही माना, न पुराण सुने और न विद्वान् की पूजा ही की इसलिए हे जीव ! जैसा तूने किया है वैसा फल भोग ॥ ३८ ॥ न तो अपने स्वामी के हितकारक

जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे। गो विप्रवृत्त्यर्थमकारि नाण्वपि देहिन् कचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥ ३७ ॥ न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेदशास्त्रार्थवचः प्रमाणितम्। श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो देहिन् कचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥ ३८ ॥ भर्तुर्मया नैव कृतं हितं वचः पतिव्रतं नैव कदापि पालितम्। ने गौरवं कापि कृतं गुरूचितं देहिन् कचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥ ३९ ॥ न धर्मबुद्ध्या पतिरेव सेवितो

वचनों का पालन किया और न स्वामी के व्रत का ही पालन किया। न गुरु के योग्य उनका गौरव ही किया इसलिए हे जीव ! जैसा तूने किया है वैसा फल भोग ॥ ३९ ॥ न तो धर्मबुद्धि से पति की सेवा की, न पति के मरने पर उनके साथ अग्नि में सती ही हुई और न विधवा होकर तप ही किया इसलिए हे जीव !

जैसा तूने किया है वैसा फल भोग ॥ ४० ॥ महीने-महीने के व्रतों से तथा चान्द्रायण व्रत के विस्तारसहित नियमों से मैंने शरीर को नहीं सुखाया। अतः पूर्वजन्म के कुकर्मों से मुझे यह दुःखदायक स्त्री का शरीर मिला है ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बहुत-सा विलापकर पूर्वजन्म का स्मरण करता हुआ यह कहता जाता है कि मेरा मनुष्यपना

वह्निप्रवेशो न कृतो मृते पतौ। वैधव्यमासाद्य तपो न सेवितं देहिन् क्व चिन्नि-स्तर यत्त्वया कृतम् ॥ ४० ॥ मासोपवासैर्न विशोषितं मया चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः। नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः ॥ ४१ ॥ एवं विलप्य बहुशः संस्मरन्पूर्वदैहिकम्। मानुषत्वं मल कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति ॥ ४२ ॥ दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति। अष्टादशे दिने तार्क्ष्य प्रेतः सौम्यपुरं व्रजेत् ॥ ४३ ॥ तस्मिन्पुरवरे रम्ये

कहाँ गया ॥ ४२ ॥ वह अकेला सत्रह दिन तक वायु के वेग से चलकर हे गरुड़ ! अठारहवें दिन सौम्यपुर में पहुँचता है ॥ ४३ ॥ उस पुर में बहुत से प्रेत रहते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नदी और प्रियदर्शी बरगद का वृक्ष

है ॥ ४४ ॥ यमदूतों के द्वारा उसको वहाँ विश्राम कराया जाता है। वह दुःखित हो वहाँ स्त्री और पुत्र आदि के सुख का स्मरण करता है ॥ ४५ ॥ और धन तथा नौकर आदि सबको सोचता है तब वहाँ के यमदूत कहते हैं कि तेरा धन, पुत्र, स्त्री, मित्र और कुटुम्बी भाई कहाँ हैं। हे मूढ़! अपने किये कर्मों का फल भोगते हुए

प्रेतानां च गणो महान्। पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥४४॥ पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः। दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः ॥ ४५ ॥ धनानि भृत्यमात्राणि सर्वं शोचति वै यदा। तदा प्रेतांस्तु तत्रत्याः किंकराश्चेदमब्रुवन् ॥ ४६ ॥ क्व धनं क्व सुता जाया क्व सुहृत्क्व च बान्धवाः। स्वकर्मोपार्जितं भोक्ता मूढ याहि चिरं पथि ॥ ४७ ॥ जानासि सम्बलबलं बलमध्वगानां नो सम्बलाय यतसे परलोकपान्थ। गन्तव्य-

बहुत दिन तक इसी मार्ग में चल ॥ ४६-४७ ॥ हे परलोक के बटोही! तू राहगीरों के पाथेय (रास्ते में काम आनेवाले पदार्थ) के बल को नहीं जानता है जिसके बल से रास्ता कटता है और उसी पाथेय के लिए यत्न करता है? अथवा तू यम का बल और साथ में चलनेवाले हमारे बल को नहीं जानता है और विना

यातना के यमराज के पास चलने का यत्न करता है ? जहाँ तुम जाओगे वहाँ का मार्ग तुम्हारे लिए निश्चित ही है उसमें उलट-फेर नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ हे मनुष्य ! उस विख्यात मार्ग को तूने नहीं सुना जिसको बालक-वृद्ध सब ही जानते हैं । क्या ब्राह्मणों से तुमने पुराणों के वचन नहीं सुने हैं ? ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर

मस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण यत्र भवतः क्रयविक्रयौ हि ॥ ४८ ॥
आबालख्यातमार्गोऽयं नैव मर्त्य श्रुतस्त्वया । पुराणसंभवं वाक्यं किं द्विजेभ्योऽपि न श्रुतम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्तस्ततो दूतैस्ताड्यमानश्च मुद्गरैः । निपतन्नुत्पतन्धावन् पाशैराकृष्यते बलात् ॥ ५० ॥ अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाथवा । मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ तत्र नाम्नास्ति राजा वै जंगमः कालरूपधृक् । तं दृष्ट्वा भयभीतोऽसौ विश्रामे

यमदूत उसे मोंगरों से मारते हैं तथा गिरते-पड़ते और भागते हुए उस प्राणी को रस्सियों से बाँधकर खींचते हैं ॥ ५० ॥ यहाँ पुत्र या पौत्रों में स्नेहपूर्वक या कृपापूर्वक दिये हुए मासिक पिण्ड को खाकर फिर सौरिपुर को जाता है ॥ ५१ ॥ वहाँ काल का रूप धारण करनेवाला जंगम नाम का राजा है । उसको देखकर डरा

हुआ वह विश्राम करना चाहता है ॥ ५२ ॥ यहाँ त्रिपाक्षिक दिये हुए पिण्ड और जल को खा-पीकर आगे चलता है ॥ ५३ ॥ फिर शीघ्र ही नगेन्द्रभवन नामक पुर में जाता है जहाँ भयानक वनों को देखकर दुःखित हो रोता है ॥ ५४ ॥ तथा निर्दयी यमदूतों से खींचा हुआ वह बार-बार रोता है । दो महीने बीतने पर द्वितीय

कुरुते मतिम् ॥ ५२ ॥ उदकं चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तत्र पुरे गतः । त्रैपाक्षिके वै यद्दत्तं स तत्पुरमतिक्रमेत् ॥ ५३ ॥ ततो नगेन्द्रभवनं प्रेतो याति त्वरान्वितः । वनानि तत्र रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति दुःखितः ॥ ५४ ॥ निर्घृणैः कृष्यमाणस्तु रुदते च पुनः पुनः । मासद्वयावसाने तु तत्परं व्यथितो व्रजेत् ॥ ५५ ॥ भुक्त्वा पिण्डं जलं वस्त्रं दत्तं यद्बान्धवैरिह । कृष्यमाणः पुनः पाशैर्नीयतेऽग्रे च किङ्करैः ॥ ५६ ॥ मासे तृतीये सम्प्राप्ते प्राप्य गन्धर्वपत्तनम् ।

मास के पुत्रादिदत्त जल-पिण्ड को खाकर यमदूतों से खींचा हुआ दुःख से आगे चलता है ॥ ५५-५६ ॥ तीसरे महीने में गन्धर्वपुर में पहुँचता है । वहाँ तृतीय मासिक पिण्ड को खाकर आगे चलता

है ॥ ५७ ॥ चौथे महीने में शैलागमपुर में पहुँचता है जहाँ प्रेत के ऊपर बहुत से पत्थर बरसते हैं ॥ ५८ ॥ वहाँ चौथे महीने के पिंड को खाकर कुछ सुखी होता है। फिर पाँचवें महीने में क्रौञ्चपुर को जाता है ॥ ५९ ॥ वहाँ

तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ॥ ५७ ॥ शैलागमं चतुर्थे च मासि प्राप्नोति वै पुरम्। पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि भूरिशः ॥ ५८ ॥ चतुर्थमासिकं पिण्डं भुक्त्वा किंचित्सुखी भवेत्। ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासेऽथ पञ्चमे ॥ ५९ ॥ हस्तदत्तं तदा भुङ्क्ते प्रेतः क्रौञ्चपुरे स्थितः। यत्पञ्चमासिकं पिण्डं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत् ॥ ६० ॥ सार्धैकैः पञ्चभिर्मासैन्यूनषाणमासिकं व्रजेत्। तत्र दत्तेन पिण्डेन घटेनाप्यायितः

पुत्रादि के हाथ से दिये हुए पाँचवें महीने के पिण्ड को खाकर क्रूरपुर को जाता है ॥ ६० ॥ वहाँ साढ़े पाँच महीने में दिये हुए न्यून षाण्मासिक पिण्ड को खाकर और आधे मुहूर्त तक विश्राम कर काँपता हुआ दुःख से

उस पुर को छोड़कर यमदूतों से सताया हुआ ॥ ६१-६२ ॥ चित्रभवन नामक पुर में जाता है जहाँ यम का छोटा भाई विचित्र नामक राजा राज्य करता है ॥ ६३ ॥ उस भीमकाय राजा को देखकर जब डर से भागता है तब उसके सामने मल्लाह आकर यह कहते हैं कि ॥ ६४ ॥ हम लोग तुमको महानदी वैतरणी से पार उतारने के

स्थितः ॥ ६१ ॥ मुहूर्तार्धन्तुविश्रम्य कम्पमानः सुदुःखितः । तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिंकरैः ॥ ६२ ॥ प्रयाति चित्रभवनं विचित्रो नाम पार्थिवः । यमस्यैवानुजो भ्राता यत्र राज्यं प्रशास्ति हि ॥ ६३ ॥ तं विलोक्य महाकायं यदा भीतः पलायते । तदा संमुख आगत्य कैवर्ता इदमब्रुवन् ॥ ६४ ॥ वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम् । नावमादाय सम्प्राप्ता यदि ते पुण्यमीदृशम् ॥ ६५ ॥ दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । इयं सा तीर्यते यस्मात्तस्माद्वैतरणी स्मृता ॥ ६६ ॥ यदि त्वया प्रदत्ता गौस्तदा

लिए नाव लेकर यहाँ आये हैं, यदि इस लायक तुम्हारा पुण्य है तो (आओ इस पर बैठ लो) ॥ ६५ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने दान को वितरण कहा है उसी से यह तरी जाती है इसलिए इसका नाम वैतरणी है ॥६६॥ यदि तुमने

गोदान दिया है तो यह नाव तुम्हारे समीप आवेगी अन्यथा नहीं। ऐसा मल्लाहों का वचन सुनकर पापी हा दैव! ऐसा कहता है ॥ ६७ ॥ उस पापी को देखकर नदी उबलती है जिसे देखकर वह चिल्लाता है और दान न देने के कारण वह पापी उसमें डूब जाता है ॥ ६८ ॥ तब आकाश में स्थित यमदूत उसके मुंह में काँटा (कटिया)

नौरुपसर्पति। नान्यथेति वचस्तेषां श्रुत्वा हा दैव भाषते ॥ ६७ ॥ तं दृष्ट्वा क्वथते सा तु तां दृष्ट्वा सोतिक्रन्दते। अदत्तदानः पापात्मा तस्यामेव निमज्जति ॥ ६८ ॥ तन्मुखे कण्टकं दत्त्वा दूतैराकाशसंस्थितैः। बडिशेन यथा मत्स्यस्तथा पारं प्रणीयते ॥ ६९ ॥ षाण्मासिकं च यत्पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति। मार्गे स विलपन् याति बुभुक्षापीडितो ह्यलम् ॥ ७० ॥ सप्तमे मासि संप्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत्। तत्र भुंक्ते प्रदत्तं यत्सप्तमे मासि पुत्रकैः ॥ ७१ ॥

देकर उस नदी के पार ऐसे खींच लेते हैं जैसे बंसी में फँसी मछली को खींचते हैं ॥ ६९ ॥ वहाँ नदी के पार छठे महीने के पिण्ड को खाकर रोता हुआ भूख से पीड़ित हो आगे चलता है ॥ ७० ॥ सातवें महीने में बह्वापदपुर में पहुँचता है और वहाँ पुत्रादि का दिया हुआ सप्तम मासिक पिण्ड खाकर ॥ ७१ ॥ उस पुर को

छोड़कर आकाशमार्ग में चलता हुआ वह दुःखदपुर में जाता है। हे पक्षिराज गरुड़! वहाँ वह बहुत दुःख पाता है ॥ ७२ ॥ आठवें महीने का दिया हुआ पिण्ड खाकर चलता हुआ वह प्रेत नवें महीने के अन्त में नानाक्रन्दपुर को जाता है ॥ ७३ ॥ वहाँ अनेक प्रकार के आक्रन्दगणों को रोते-चिल्लाते देखकर स्वयं भी

तत्पुरं तु व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमृच्छति। महद्दुःखमवाप्नोति खे गच्छन् खेचरेश्वर ॥ ७२ ॥ मास्यष्टमे प्रदत्तं यत्पिण्डं भुक्त्वा प्रसर्पति। नवमे मासि सम्पूर्णे नानाक्रन्दपुरं व्रजेत् ॥ ७३ ॥ नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान्। स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः ॥ ७४ ॥ विहाय तत्पुरं प्रेतस्तर्जितो यमकिङ्करैः। सुतप्तभवनं गच्छेद्दशमे मासि कृच्छ्रतः ॥ ७५ ॥ पिण्डदानं जलं तत्र भुक्त्वापि न सुखी भवेत्। मासि

शून्यहृदय हो दुःख से रोने लगता है ॥ ७४ ॥ (वहाँ भी नवम मासिक पिण्ड खाकर) यमदूतों से ताड़ित हुआ उस पुर को छोड़कर बड़े कष्ट से दशवें महीने में सुतप्तभवन को जाता है ॥ ७५ ॥ वहाँ पुत्रादि से दिया हुआ जल पीकर और पिण्ड खाकर भी सुखी नहीं होता है और ग्यारहवें महीने के अन्त में रौद्रपुर को

जाता है ।। ७६ ।। वहाँ ग्यारहवें महीने का पुत्रादि से दिया हुआ पिण्ड खाकर साढ़े ग्यारह महीने में पयोवर्षणपुर को जाता है ।। ७७ ।। जहाँ कि प्रेतों को दुःखित करने के लिए मेह बरसा करता है । वहाँ पुत्रादि से दिये हुए न्यूनाब्दिक पिण्ड को दुःखित हो खाता है ।। ७८ ।। वहाँ से चलकर पूरा वर्ष होने पर शीताढ्य नगर में

चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति ॥ ७६ ॥ दशैकमासिकं तत्र भुंक्ते दत्तं सुतादिभिः । सार्द्धं चैकादशे मासि पयोवर्षणमृच्छति ॥ ७७ ॥ मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः । न्यूनाब्दिकं च यच्छ्राद्धं तत्र भुंक्ते स दुःखितः ॥ ७८ ॥ सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत् । हिमाच्छतगुणं तत्र महाशीतं पतत्यपि ॥ ७९ ॥ शीतार्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश । तिष्ठते बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति ॥ ८० ॥ किङ्करास्ते

पहुँचता है जहाँ कि हिमालय से भी सौगुनी ठंडक पड़ती है ।। ७९ ।। शीत से दुःखी, भूखों मरता हुआ वह दशों दिशाओं में देखता है कि यहाँ मेरा कोई बन्धु भी है कि जो मेरा दुःख दूर करे ।। ८० ।। तब यमदूत

कहते हैं कि तेरा ऐसा पुण्य कहाँ है जो दुःख दूर करे। वहाँ वार्षिक पिण्ड खाकर उसे कुछ धैर्य होता है ॥ ८१ ॥ फिर वर्ष के अन्त में यमलोक के पास बहुभीतिपुर में जाकर हस्तमात्र शरीर को छोड़ देता है ॥ ८२ ॥ और कर्म भोगने के लिए वायुरूप वह आकाशचारी अंगुष्ठमात्र यातना के शरीर को पाकर यमदूतों

वदन्त्यत्र किं ते पुण्यं हि तादृशम्। भुक्त्वा च वार्षिकं पिण्डं धैर्यमालम्बते पुनः ॥ ८१ ॥ ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये। बहुभीतिपुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥ ८२ ॥ अंगुष्ठमात्रो वायुश्च कर्मभोगाय खेचरः। यातनादेहमासाद्य सह याम्यैः प्रयाति च ॥ ८३ ॥ और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप। एवं कष्टेन ते यान्ति गृहीता दृढबन्धनैः ॥ ८४ ॥ धर्मराजपुरे सन्ति चतुर्द्वाराणि खेचर। यत्रायं दक्षिणद्वारमार्गस्ते

के साथ जाता है ॥ ८३ ॥ हे गरुड़! जिसने अन्त समय में और्ध्वदैहिक दान नहीं दिया है वही इस प्रकार दृढ़ बन्धनों से बँधा हुआ कष्ट से जाता है (और जिसने अन्त समय में और्ध्वदैहिक दान दिया है वह सुखपूर्वक जाता है) ॥ ८४ ॥ हे खेचर गरुड़! धर्मराजपुर के चार दरवाजे हैं। उनमें से दक्षिण द्वार का मार्ग

तुमसे कहा गया है ॥ ८५ ॥ इस महाभयानक मार्ग में भूख, प्यास और श्रम से पीड़ित हो जैसे प्राणी जाते हैं वह तुमसे कह दिया, फिर और क्या पूछना चाहते हो ॥ ८६ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

परिकीर्तितः ॥ ८५ ॥ अस्मिन्पथि महाघोरे क्षुत्तृषाश्रमपीडिताः । यथा यान्ति तथा प्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८६ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यममार्गनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

गरुड उवाच ॥ यममार्गमतिक्रम्य गत्वा पापी यमालये। कीदृशीं यातनां भुंक्ते तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आद्यन्तं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व विनतात्मज । कथ्यमानेऽपि नरके त्वं भविष्यसि

गरुड़जी कहते हैं कि हे भगवन् ! यम के मार्ग को लाँघकर पापी यमलोक में जाकर कैसी-कैसी यातनाएँ भोगता है वह मुझसे कहिए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे विनता के पुत्र ! इन यमयातनाओं का आदि से

अन्त तक का वृत्तान्त कहता हूँ सुनिए। नरक के वर्णनमात्र से तुम कम्पित हो जाओगें ॥ २ ॥ हे कश्यप के पुत्र ! बहुभीतिपुर के आगें चवालीस योजन लम्बा-चौड़ा बड़ा भारी धर्मराज का पुर है ॥ ३ ॥ वहाँ हर समय हाहाकार मचा रहता है जिसे देख पापी चिल्लाने लगता है। उसका रुदन सुनकर यमपुर में रहनेवाले वे सब लोग

कम्पितः ॥ २ ॥ चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि काश्यप। बहुभीतिपुरादग्रे धर्मराजपुरं महत् ॥ ३ ॥ हाहाकारसमायुक्तं दृष्ट्वा क्रन्दति पातकी। तत्क्रन्दितं समाकर्ण्य यमस्य पुरचारिणः ॥ ४ ॥ गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजः प्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥ ५ ॥ स गत्वा चित्रगुप्ताय ब्रूते तस्य शुभाशुभम्। ततस्तं चित्रगुप्तोऽपि धर्मराजं निवेदयेत् ॥ ६ ॥ नास्तिका ये नरास्तार्क्ष्य महापापरताः सदा। तांश्च सर्वान् यथायोग्यं

जाकर द्वारपाल से कहते हैं। वहाँ धर्मध्वज नामक द्वारपाल सदा रहता है ॥ ४-५ ॥ वह चित्रगुप्त के पास जाकर उस प्रेत के सब शुभाशुभ कह देता है। तदनन्तर चित्रगुप्त धर्मराज से उसे निवेदन कर देता है ॥ ६ ॥ हे गरुड़ !

जो मनुष्य नास्तिक और पापी हैं उन सबको धर्मराज भली भाँति जानते हैं ॥ ७ ॥ तो भी चित्रगुप्त से उसके पापों को पूछते हैं। सब कुछ जानते हुए भी चित्रगुप्त श्रवणों से पूछते हैं ॥ ८ ॥ श्रवण ब्रह्मा के पुत्र हैं। वे स्वर्ग, पृथ्वीलोक और पाताल तक घूमा करते हैं। उनको दूर ही से सुनने का

सम्यग्जानाति धर्मराट् ॥ ७ ॥ तथापि चित्रगुप्ताय तेषां पापं स पृच्छति। चित्रगुप्तोपि सर्वज्ञः श्रवणान् परिपृच्छति ॥ ८ ॥ श्रवणा ब्रह्मणः पुत्राः स्वर्भूपातालचारिणः। दूरश्रवणविज्ञाना दूरदर्शनचक्षुषः ॥ ९ ॥ तेषां पत्न्यस्तथाभूताः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः। स्त्रीणां विचेष्टितं सर्वं ता विजानन्ति तत्त्वतः ॥ १० ॥ नरैः प्रच्छन्नप्रत्यक्षं यत्प्रोक्तं च कृतं च यत्। सर्वमावेदयन्त्येव चित्रगुप्ताय ते च ताः ॥ ११ ॥ चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां

ज्ञान है और दूर से ही देखनेवाले उनके नेत्र हैं ॥ ९ ॥ उन श्रवणों की स्त्रियाँ भी उन्हीं के समान हैं। वे अलग-अलग नाम की श्रवणी हैं। वे सब स्त्रियों की चेष्टाओं को जानती हैं ॥ १० ॥ वे पुरुष और स्त्रियाँ स्त्री-पुरुषों के प्रकट और गुप्त किये हुए कर्म और वाक्यों को चित्रगुप्त से बता देते हैं ॥ ११ ॥ वे

धर्मराज के दूत मनुष्यों के वाणी, मन और शरीर से किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों को यथार्थ रूप से कह देते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्य और देवताओं के अधिकारी उन सत्यवादी श्रवणों में ऐसी शक्ति है कि वे मनुष्यों के सब कर्म कह देते हैं ॥ १३ ॥ व्रत, दान और सत्यवाणी से जो मनुष्य उनको संतुष्ट करता है, उसके लिए वे सौम्य

शुभाशुभम्। मनोवाक्कायजं कर्म सर्वं जल्पन्ति तत्त्वतः ॥ १२ ॥ एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्यामर्त्याधिकारिणाम्। कथयन्ति नृणां कर्म श्रवणाः सत्यवादिनः ॥ १३ ॥ व्रतैर्दानैश्च सत्योक्त्या यस्तोषयति तान्नरः। भवन्ति तस्य ते सौम्याः स्वर्गमोक्षप्रदायिनः ॥ १४ ॥ पापिनां पापकर्माणि ज्ञात्वा ते सत्यवादिनः। धर्मराजपुरःप्रोक्ता जायन्ते दुःखदायिनः ॥ १५ ॥ आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च

पुरुष स्वर्ग और मोक्ष के देनेवाले होते हैं ॥ १४ ॥ वे सत्यवादी श्रवण पापियों के कर्मों को जानकर धर्मराज के सामने कह देने से दुःखदायी हो जाते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य, चन्द्रमा, पवन, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय,

यम, दिन, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ और धर्म ये सब मनुष्य के वृत्तान्त को जानते हैं ॥ १६ ॥ तथा धर्मराज, चित्रगुप्त, श्रवण और सूर्य आदिक शरीर में टिके हुए सब पाप और पुण्य को जानते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार यमराज पापियों के पाप का अच्छे प्रकार निश्चय करके उनको बुलाकर अपना भयंकर रूप दिखाते हैं ॥ १८ ॥

उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ १६ ॥ धर्मराजश्चित्रगुप्तः श्रवणा भास्करादयः । कायस्थं तत्र पश्यन्ति पापं पुण्यं च सर्वशः ॥ १७ ॥ एवं सुनिश्चयं कृत्वा पापिनां पातकं यमः । आहूय तान्निजं रूपं दर्शयत्यतिभीषणम् ॥ १८ ॥ पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयंकरम् । दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरि संस्थितम् ॥ १९ ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं कज्जलाचलसन्निभम् । विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम् ॥ २० ॥ योजनत्रय-

वे पापी लोग दण्ड हाथ में लिये, बड़ी कायवाले और भैंसे पर चढ़े हुए यमराज के भयंकर रूप को देखते हैं ॥ १९ ॥ तथा वे प्रलय के मेघों के समान गर्जनेवाले, काले पहाड़ के समान बड़े शरीरवाले, बिजली की सी कान्तिवाले, भयंकर और बत्तीस भुजावाले हैं ॥ २० ॥ तीन योजन (१२ कोस) लम्बा-चौड़ा उनका

शरीर है तथा बावड़ी (बावली) के समान नेत्र हैं, मुख में भयंकर दाढ़ हैं, लाल आँखें हैं और लम्बी उनकी नाक है ॥ २१ ॥ तथा चित्रगुप्त भी मृत्यु और ज्वर आदि से युक्त बड़ा भयंकर है, उसके पास यम के तुल्य सब दूत गर्जा करते हैं ॥ २२ ॥ उसको देखकर डरा हुआ पापी हाहाकार करता है तथा दान न देने से वह

विस्तारं वापीतुल्यविलोचनम् । दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम् ॥ २१ ॥ मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः । सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते खलः । अदत्तदानः पापात्मा कम्पते क्रन्दते पुनः ॥ २३ ॥ ततो वदन्ति तान्सर्वान् क्रन्दमानाश्च पापिनः । शोचन्तः स्वानिकर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया ॥ २४ ॥ भो भोः पापा दुराचारा अहंकारप्रदूषिताः । किमर्थमर्जितं पापं

पापात्मा बार-बार काँपता और रोता है ॥ २३ ॥ तदनन्तर अपने कर्मों को सोचते हुए तथा रोते-चिल्लाते हुए उन पापियों को चित्रगुप्त यम की आज्ञा सुनाते हैं ॥ २४ ॥ कि हे दुराचारियो; पापियो ! तुमने अहंकार

से दूषित हो विना विचारे किसलिए यह पापकर्म संचित किया है ? ॥ २५ ॥ हे मूढ़ मनुष्यों ! काम-क्रोध से और पापियों की संगति से उत्पन्न, दुःखदायक पाप को किसलिए संचित किया है ? ॥ २६ ॥ तुमने हर्षित होकर जैसे पहले पाप किये हैं वैसे ही यातना भी भोगो । इस समय मुंह क्यों मोड़ते हो ॥ २७ ॥ तुम लोगों

युष्माभिरविवेकिभिः ॥ २५ ॥ कामक्रोधाद्यदुत्पन्नं संगमेन च पापिनाम् । तत्पापं दुःखदं मूढाः किमर्थं चरितं जनाः ॥ २६ ॥ कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यन्तहर्षिताः । तथैव यातना भोग्याः किमिदानीं पराङ्मुखाः ॥ २७ ॥ कृतानि यानि पापानि युष्माभिः सुबहून्यपि । तानि पापानि दुःखस्य कारणं न च वञ्चना ॥ २८ ॥ मूर्खेऽपि पण्डिते वापि दरिद्रे वा श्रियान्विते । सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृतः ॥ २९ ॥ चित्रगुप्त-

ने जो बहुत से पाप किये हैं वे ही पाप दुःख के कारण हैं । यह छल नहीं है ॥ २८ ॥ यमराजजी मूर्ख-पण्डित, दरिद्री-धनवान् और निर्बल-सबल सबसे सम बर्ताव करते हैं ॥ २९ ॥ चित्रगुप्त की ये बातें सुनकर पापी

लोग अपने कर्मों का विचारकर चुप हो निश्चल बैठ जाते हैं ॥ ३० ॥ चोर के समान निश्चल बैठे हुए उन पापियों को देखकर धर्मराज उनके पापों की शान्ति के लिए उचित आज्ञा देते हैं (अर्थात् पाप की शान्ति के लिए जैसा उनको दंड मिलना चाहिए वह आज्ञा देते हैं)॥ ३१ ॥ इसके बाद वे निर्दयी यमदूत उनको धमकाकर

स्येति वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ ३० ॥ धर्मराजोऽपि तान्दृष्ट्वा चोरवन्निश्चलान् स्थितान् । आज्ञापयति पापानां शान्तिं चैव यथोचिताम् ॥ ३१ ॥ ततस्ते निर्दया दूतास्ताडयित्वा वदन्ति च । गच्छ पापिन् महाघोरान्नरकानतिभीषणान् ॥ ३२ ॥ यमाज्ञाकारिणो दूताः प्रचण्डचण्डकादयः । एकपाशेन तान्बद्ध्वा नयन्ति नरकान्प्रति ॥ ३३ ॥ तत्र वृक्षो महानेको ज्वलदग्निसम-

कहते हैं कि हे पापियो ! अत्यन्त भयंकर महाघोर नरकों को जाओ ॥ ३२ ॥ यम की आज्ञा का पालन करनेवाले प्रचण्ड और चण्डक आदि यमदूत उन पापियों को एक रस्सी में बाँधकर नरकों में ले जाते हैं ॥ ३३ ॥ वहाँ जलती हुई अग्नि के समान कान्तिवाला एक बड़ा भारी वृक्ष है । वह पांच योजन चौड़ा और

एक योजन ऊँचा है ॥ ३४ ॥ पापियों को उस वृक्ष में साँकलों से अधोमुख बाँधकर वे दूत मारते हैं। वृक्ष की अग्नि से जलते हुए वे रोते हैं परन्तु वहाँ उनकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है ॥ ३५ ॥ भूख-प्यास से थके और यमदूतों से ताड़ित उस शाल्मली वृक्ष में अनेक पापी लटकते हैं ॥ ३६ ॥ आश्रयरहित वे पापी उन

प्रभः। पञ्चयोजनविस्तीर्ण एकयोजनमुच्छ्रितः ॥ ३४ ॥ तद्वृक्षे शृङ्खलैर्बद्ध्वाऽधोमुखं ताडयन्ति ते। रुदन्ति ज्वलितास्तत्र तेषां त्राता न विद्यते ॥ ३५ ॥ तस्मिन्वै शाल्मलीवृक्षे लम्बन्तेऽनेकपापिनः। क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता यमदूतैश्च ताडिताः ॥ ३६ ॥ क्षमध्वं भोऽपराधं मे कृताञ्जलिपुटा इति। विज्ञापयन्ति तान्दूतान्पापिष्ठास्ते निराश्रयाः ॥ ३७ ॥ पुनः पुनश्च ते दूतैर्हन्यन्ते लोहयष्टिभिः। मुद्गरैस्तोमरैः कुन्तैर्गदाभिर्मुसलैर्भृशम् ॥ ३८॥

दूतों के आगे हाथ जोड़कर कहते हैं कि हमारा अपराध क्षमा करो ॥ ३७ ॥ किन्तु वे यमदूत बार-बार उनको लोह की लाठी, मुद्गर, तोमर, कुन्त, गदा और मुसलों से मारते हैं ॥ ३८ ॥ उस मार से वे मूर्च्छित तथा

चेष्टारहित हो जाते हैं। उन चेष्टारहित पापियों को देखकर यमदूत कहते हैं कि ॥ ३९ ॥ हे दुराचारी पापियों ! तुम किसलिए यह खराब चेष्टा करते हो, तुमने जल आदि अन्य सुलभ वस्तु भी कभी किसी को नहीं दी ॥ ४० ॥ तुमने आधा ग्रास भी कभी किसी को नहीं दिया। न कुत्ता और कौआ को ही बलि दी।

ताडनाच्चैव निश्चेष्टा मूर्च्छिताश्च भवन्ति ते। तथा निश्चेष्टितान् दृष्ट्वा किंकरास्ते वदन्ति हि ॥ ३८ ॥ भो भोः पापा दुराचाराः किमर्थं दुष्टचेष्टितम्। सुलभानि न दत्तानि जलान्यन्यान्यपि क्वचित् ॥ ४० ॥ ग्रासार्द्धमपि नो दत्तं न श्ववायसयोर्बलिम्। नमस्कृता नातिथयो न कृतं पितृतर्पणम् ॥ ४१ ॥ यमस्य चित्रगुप्तस्य न कृतं ध्यानमुत्तमम। न जप्तश्चतयोर्मन्त्रो न भवेद्येन यातना ॥ ४२ ॥ नापि किञ्चित्कृतं तीर्थं पूजिता नैव देवताः।

न अतिथियों को नमस्कार ही किया और न पितरों का तर्पण ही किया ॥ ४१ ॥ यमराज और चित्रगुप्त का भी उत्तम ध्यान तुमने नहीं किया। न उन दोनों के मंत्रों को ही जपा जिससे यातना न होती ॥ ४२ ॥ न तो कोई तीर्थयात्रा की, न देवताओं की पूजा की और न गृहस्थाश्रम में रहते हुए हंतकार (अतिथि के लिए भोजन

ही निकाली ॥ ४३ ॥ न साधु-सन्तों की सेवा ही की, अतः अपने पापों का फल भोगो। तुम धर्म से हीन हो इसलिए बुरी तरह पीटे जाते हो ॥ ४४ ॥ हरि भगवान् ही समर्थ हैं जो अपराधों को क्षमा करते हैं। हम तो उनकी आज्ञा से अपराधियों को दंड ही देते हैं ॥ ४५ ॥ ऐसा कहकर वे दूत निर्दयता से उन पापियों को पीटते

गृहाश्रमस्थितेनापि हन्तकारोपि नोद्धृतः ॥ ४३ ॥ शुश्रूषिताश्च नो सन्तो भुंक्ष्व पापफलं स्वकम्। यतस्त्वं धर्महीनोऽसि ततः संताड्यसेऽशुभम् ॥ ४४ ॥ क्षमापराधं कुरुते भगवान् हरिरीश्वरः। वयं तु सापराधानां दण्डदा हि तदाज्ञया ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वा च ते दूता निर्दयं ताडयन्ति तान्। ज्वलदङ्गारसदृशाः पतितास्ताडनादधः ॥ ४६ ॥ पतनात्तस्य पत्रस्य गात्रच्छेदो भवेत्ततः। तानधः पतिताञ्छ्वानो भक्षयन्ति रुदन्ति ते ॥४७॥ रुदन्त-

हैं। मारने से वे पापी जलते अंगारों की तरह नीचे गिर जाते हैं ॥ ४६ ॥ गिरते समय शाल्मली के पत्तों से उनके शरीर कट जाते हैं। नीचे पड़े हुए उन पापियों को कुत्ते खाते हैं तब वे रोते हैं ॥ ४७ ॥ उनको रोते

हुए देखकर यमदूत उनके मुँह को बालू से भर देते हैं। कोई उनको अनेक प्रकार के पाशों से बाँधकर मुद्गरों से मारते हैं ॥ ४८ ॥ कोई-कोई पापी तो लकड़ी की तरह आरों से चीरे जाते हैं, कोई-कोई धरती पर कुठारों (कुल्हाड़ों) से काटे जाते हैं ॥ ४९ ॥ किसी-किसी को गढ़े में आधा गाड़कर उसके माथे को बाणों से बींधते

स्ते ततो दूतैर्मुखमापूर्य रेणुभिः। निबद्ध्य विविधैः पाशैर्हन्यन्ते केऽपि मुद्गरैः ॥ ४८ ॥ पापिनः केऽपि भिद्यन्ते क्रकचैः काष्ठवद् द्विधा। क्षिप्त्वा चान्ये धरापृष्ठे कुठारैः खण्डशः कृताः ॥ ४९ ॥ अर्धं खात्वा वटे केचि-च्छिद्यन्ते मूर्ध्नि सायकैः। अपरे यन्त्रमध्यस्थाः पीड्यन्ते चेक्षुदण्डवत् ॥ ५० ॥ केचित्प्रज्वलमानैस्तु साङ्गारैः परितो भृशम्। उल्मुकैर्वेष्टयित्वा च ध्मायन्ते लोहपिण्डवत् ॥ ५१ ॥ केचिद्घृतमये पाके तैलपाके तथापरे।

हैं। तथा किसी-किसी को कोल्हू में डालकर ईख की तरह पेरते हैं ॥ ५० ॥ किसी-किसी को जलते हुए अंगारे और जलती लकड़ियों में चारों ओर से घेरकर लोहपिण्ड की तरह धौंकते हैं ॥ ५१ ॥ किसी को घी के कराह

में और किसी को तेल के कराह में डालकर बड़ों के समान इधर-उधर चलाते हैं ॥ ५२ ॥ किसी को रास्ते में मत्त हाथी के सामने फेंक देते हैं और किसी को हाथ-पैर बाँधकर, नीचे को मुँह करके लटका दिया जाता है ॥ ५३ ॥ किसी को कुएँ में डाल दिया जाता है और किसी को पहाड़ पर से गिराया जाता है । कोई कीड़ों

कटाहक्षिप्तवटवत्प्रक्षिष्यन्ते यतस्ततः ॥ ५२ ॥ केचिन्मत्तगजेन्द्राणां क्षिप्य न्ते पुरतः पथि । बद्ध्वा हस्तौ च पादौ च क्रियन्ते केऽप्यधोमुखाः ॥ ५३ ॥ क्षिप्यन्ते केऽपि कूपेषु पात्यन्ते केऽपि पर्वतात् । निमग्नाः कृमिकुण्डेषु तुद्यन्ते कृमिभिः परे ॥ ५४ ॥ वज्रतुण्डैर्महाकाकैर्गृध्रैरामिषगृध्नुभिः । निष्कुष्यन्ते शिरोदेशे नेत्रे वास्ये च चञ्चुभिः ॥ ५५ ॥ ऋणं वै प्रार्थ-

से भरे हुए कुण्ड में डुबाया जाता है जिससे कीड़े उसे बहुत व्यथित करते हैं ॥५४॥ वज्र के समान चोंचवाले बड़े-बड़े कौओं और मांस के लोभी गीधों से उन पापियों के शिर नोचे जाते हैं तथा चोंचों से उनकी आँखें और मुख नोचे जाते हैं ॥ ५५ ॥ कोई अपने ऋण (कर्ज) के लिए प्रार्थना करता है कि मेरा धन दे दे,

तूने मेरा धन खा लिया है। मैंने तुझे अब यमलोक में देखा है ॥ ५६ ॥ नरक में इस प्रकार झगड़ा करते हुए उन पापियों के मांस को सँड़सियों से काटकर यमदूत उनको देते हैं ॥ ५७ ॥ इस प्रकार यम की आज्ञा से उन पापियों को ताड़ना देकर तामिस्रादि घोर नरकों में खीचकर डाल देते हैं ॥ ५८ ॥ यद्यपि नरकों में दुःख बहुत

यन्त्यन्ये देहि देहि धनं मम । यमलोके मया दृष्टो धनं मे भक्षितं त्वया ॥ ५६ ॥ एवं विवदमानानां पापिनां नरकालये । छित्त्वा संदंशकैर्दूता मांस-खण्डान् ददन्ति च ॥ ५७ ॥ एवं संताड्य तान् दूताः संकृष्य यमशासनात् । तामिस्रादिषु घोरेषु क्षिप्यन्ते नरकेषु च ॥ ५८ ॥ नरका दुःखबहुलास्तत्र वृक्षसमीपतः । तेष्वस्ति यन्महद्दुःखं तद्वाचामप्यगोचरम् ॥ ५९ ॥ चतुरशीतिलक्षाणि नरकाः सन्ति खेचर । तेषां मध्ये घोरतमा धौरेयास्त्वेक-

है तथापि उस शाल्मली वृक्ष के पास उन पापियों को जो बड़ा भारी दुःख होता है वह वचन से भी नहीं कहा जा सकता है ॥ ५९ ॥ हे आकाशचारी गरुड़ ! चौरासी लाख नरक हैं। उनमें सबसे कठिन धौरेय नामक

इक्कीस महाघोर नरक हैं ॥ ६० ॥ उनके नाम ये हैं—१ तामिस्र, २ लोहशंकु, ३ महारौरव, ४ शाल्मली, ५ रौरव, ६ कुड्मल, ७ कालसूत्रक, ८ पूतिमृत्तिक, ९ संघात, १० लोहितोद, ११ सविष, १२ संप्रतापन, १३ महानिरय, १४ काकोल, १५ संजीवन, १६ महापथ, १७ अवीचि, १८ अन्धतामिस्र, १९ कुम्भीपाक,

विंशतिः ॥ ६० ॥ तामिस्रो लोहशंकुश्च महारौरवशाल्मली । रौरवः कुड्मलः कालसूत्रकः पूतिमृत्तिकः ॥ ६१ ॥ संघातो लोहितोदश्च सविषः संप्रतापनः । महानिरयकाकोलौ संजीवनमहापथौ ॥ ६२ ॥ अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च । संप्रतापननामैकस्तपनस्त्वेकविंशतिः ॥ ६३ ॥ नानापीडामयाः सर्वे नानाभेदैः प्रकल्पिताः । नानापापविपाकाश्च किङ्करौघैरधिष्ठिताः ॥ ६४ ॥ एतेषु पतिता मूढाः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः ।

२० संप्रतापन और २१ तपन ये इक्कीस नरक हैं ॥ ६१–६३ ॥ इन सबमें अनेक प्रकार की पीड़ाएँ होती हैं । ये अनेक भेदों से रचे गये हैं । इनमें अनेक पापों का फल भोगाया जाता है तथा वहाँ दूतों के समूह रहते हैं ॥ ६४ ॥ इन नरकों में धर्महीन, मूढ़ और पापी ही पड़ते हैं । वहाँ पड़े हुए एक कल्प तक यातनाएँ

भोगते हैं ॥ ६५ ॥ जो तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरव आदि की यातनाएँ हैं उनको स्त्री और पुरुष साथ ही साथ भोगते हैं ॥ ६६ ॥ इस प्रकार अपने कुटुम्ब के पालन करनेवाले और अपना पेट भरनेवाले ये दोनों ही इस लोक को छोड़कर यमलोक में जाकर ऐसा फल भोगते हैं ॥ ६७ ॥ जिसने प्राणियों से वैर करके अधर्म

तत्र भुञ्जन्ति कल्पान्ते तास्ता नरकयातनाः ॥ ६५ ॥ यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः । भुंक्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः ॥ ६६ ॥ एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा । विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ६७ ॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वं कलेवरम् । कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम् ॥ ६८ ॥ दैवेनासादितं तस्य शाल्मले निरये पुमान् । भुंक्ते कुटुम्बपोषस्य हृतद्रव्य इवातुरः ॥ ६९ ॥

से जो रास्ते के लिए खर्च इकट्ठा किया है वह अपने इस शरीर को छोड़कर अकेला ही अन्धतामिस्र नरक में जाता है ॥ ६८ ॥ जो अधर्म से कुटुम्ब का पालन करनेवाले हैं वे अपने कर्म से प्राप्त शालमली नरक में जाकर इस प्रकार उसका फल भोगते हैं जैसे किसी का धन चोरी हो गया हो और वह दुःखी होता है ॥ ६९ ॥ जो केवल

अधर्म ही से कुटुम्ब का पालन करने में उद्यत है वह आखिरी तमसाछन्न अन्धतामिस्र नरक में जाता है ॥ ७० ॥ नरलोक से नीचे जितनी यातनाएँ हैं उन सबको क्रम से भोगकर शुद्ध हो फिर इस मृत्युलोक में आ जाता है ॥ ७१ ॥ गरुड़ पुराण का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः। याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥ ७० ॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः। क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्रावव्रजेच्छुचिः ॥ ७१ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यमयातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

गरुड उवाच ॥ कैर्गच्छन्ति महामार्गे वैतरण्यां पतन्ति कैः। कैः पापैर्नरके यान्ति तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सदैवाकर्म-

गरुड़जी पूछते हैं कि हे भगवन् ! किन कर्मों से प्राणी महामार्ग में जाते हैं, किन कर्मों से वैतरणी नदी में गिरते हैं और किन पापों से नरक में जाते हैं सो मुझसे कहिए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! जो

सदा अशुभ कर्म करते हैं और शुभ कर्म से मुँह मोड़े रहते हैं वे ही एक नरक से दूसरे नरक को, दुःख से दुःख को तथा भय से भय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ धार्मिक लोग पूर्व, पश्चिम और उत्तर इन तीन मार्गों से धर्मराज के पुर में जाते हैं और पापी लोग केवल दक्षिण मार्ग से वहाँ जाते हैं ॥ ३ ॥ इसी दुःखप्रद दक्षिण

निरताः शुभकर्मपरांमुखाः । नरकान्नरकं यान्ति दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम् ॥ २ ॥ धर्मराजपुरे यान्ति त्रिभिर्द्वारैस्तु धार्मिकाः । पापास्तु दक्षिणद्वारमार्गेणैव व्रजन्ति तत् ॥ ३ ॥ अस्मिन्नेव महादुःखे मार्गे वैतरणी नदी । तत्र ये पापिनो यान्ति तानहं कथयामि ते ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च गोघ्ना वा बालघातकाः । स्त्रीघाती गर्भपाती च ये च प्रच्छन्नपापिनः ॥ ५ ॥ ये हरन्ति गुरोर्द्रव्यं देवद्रव्यं द्विजस्य वा । स्त्रीद्रव्यहारिणो ये च बाल-

महामार्ग में वैतरणी नदी है, उसमें जो पापी जाते हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण को मारनेवाले, मदिरा पीनेवाले, गौ को मारनेवाले, बालक को मारनेवाले, स्त्रियों को मारनेवाले, गर्भ को गिरानेवाले तथा

छिपकर पाप करनेवाले हैं वे और गुरु, देवता, ब्राह्मण, स्त्री और बालकों के धन को चुरानेवाले ॥ ५-६ ॥ तथा जो कर्ज लेकर नहीं देते हैं और धरोहर रखकर फिर नहीं देते हैं तथा विश्वासघात करते हैं वे लोग जो अन्न में जहर देकर मारनेवाले हैं ॥ ७ ॥ इसी प्रकार जो केवल दोष को ग्रहण करनेवाले हैं और गुणों की तारीफ

द्रव्यहराश्च ये ॥ ६ ॥ ये ऋणं न प्रयच्छन्ति ये वै न्यासापहारकाः । विश्वासघातका ये च सविषान्नेन मारकाः ॥ ७ ॥ दोषग्राही गुणाश्लाघी गुणवत्सु समत्सराः । नीचानुरागिणो मूढाः सत्संगतिपरांमुखाः ॥ ८ ॥ तीर्थसज्जनसत्कर्मगुरुदेवविनिन्दकाः । पुराणवेदमीमांसान्यायवेदान्त-दूषकाः ॥ ९ ॥ हर्षिता दुःखितं दृष्ट्वा हर्षिते दुःखदायकाः । दुष्टवाक्यस्य

नहीं करनेवाले, गुणियों से ईर्ष्या करनेवाले, नीचों में अनुराग करनेवाले, मूढ़, सत्संगति से रहित ॥ ८ ॥ तीर्थ, सज्जन, अच्छे कर्म और गुरु-देवताओं की निन्दा करनेवाले तथा पुराण, वेद, मीमांसा, न्याय और वेदान्त की बुराई करनेवाले ॥ ९ ॥ किसी को दुःखित देखकर प्रसन्न होनेवाले और हर्षित देखकर दुःख देनेवाले, खोटे

वचन बोलनेवाले, सदा दुष्टचित्त रहनेवाले ॥ १० ॥ तथा हितकारक वचन और शास्त्र की बात को कभी भी न सुननेवाले एवं अपने को बहुत बड़ा समझकर मूढ़ होकर भी अपने को पण्डित माननेवाले ॥ ११ ॥ ऐसे लोग तथा अन्य बहुत से धर्म से रहित पापी दिन रात रोते हुए यममार्ग में जाते हैं ॥ १२ ॥ तथा यमदूतों से

वक्तारो दुष्टचित्ताश्च ये सदा ॥ १० ॥ न शृण्वन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवार्तां कदापि न । आत्मसंभाविताः स्तब्धा मूढाः पण्डितमानिनः ॥ ११ ॥ एते चान्ये च बहवः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः । गच्छन्ति यममार्गें हि रोदमाना दिवानिशम् ॥ १२ ॥ यमदूतैस्ताड्यमाना यान्ति वैतरणीं प्रति । तस्यां पतन्ति ये पापास्तानहं कथयामि ते ॥ १३ ॥ मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च । आचार्यं चापि पूज्यञ्च तस्यां मज्जन्ति ते नराः ॥ १४ ॥ पति-

ताड़ित होकर वैतरणी नदी में जाकर जो पापी लोग उसमें गिरते हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १३ ॥ माता, पिता, गुरु, आचार्य और पूज्य का जो अपमान करते हैं वे उस वैतरणी नदी में डूबते हैं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य

पतिव्रता, शीलवती, अच्छे कुलवाली और नम्र स्वभाववाली स्त्री को वैर से त्याग देते हैं वे वैतरणी नदी में पड़ते हैं ॥ १५ ॥ सज्जनों के हजारों गुणों में जो दोष लगाते हैं और उनका अपमान करते हैं वे वैतरणी में पड़ते हैं ॥ १६ ॥ ब्राह्मणों को देना कहके फिर यथार्थरूप से नहीं देते हैं और जो उनको बुलाकर इनकार

व्रतां साधुशीलां कुलीनां विनयान्विताम्। स्त्रियं त्यजन्ति ये द्वेषाद्वैतरण्यां पतन्ति ते ॥ १५ ॥ सतां गुणसहस्रेषु दोषानारोपयन्ति ये। तेष्ववज्ञां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति सः। आहूय नास्ति यो ब्रूयात्तयोर्वासश्च संततम् ॥ १७ ॥ स्वयं दत्तापहर्ता च दानं दत्त्वानुतापकः। परवृत्तिहरश्चैव दाने दत्ते निवारकः ॥ १८ ॥ यज्ञविध्वंसकश्चैव कथाभङ्गकरश्च यः। क्षेत्रसीमाहरश्चैव यश्च गोचर-

कर देते हैं वे दोनों वैतरणी में सदा निवास करते हैं ॥ १७ ॥ जो दान देकर छीन लेता है या दान देकर पश्चात्ताप करता है अथवा दूसरों की आजीविका छीन लेता है या दान देते को रोकता है वह भी वैतरणी में पड़ता है ॥ १८ ॥ जो यज्ञ को नाश करता है तथा कथा में भंग करता है और जो खेत की सीमा को हरता है

तथा गौ चरने की भूमि को जोतता है ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मण होकर गुड़, खाँड, तेल, नमक, घी, दूध आदि रसों को बेचता है और जो पाँच प्रकार की वृषली स्त्री का पति होता है तथा वेदोक्त यज्ञ से अन्यत्र अपने लिए पशुओं को मारता है वह वैतरणी नदी में पड़ता है ॥ २० ॥ जो ब्राह्मणों के कर्म को त्यागकर मांस खाता

कर्षकः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणो रसविक्रेता यदि स्याद्वृषलीपतिः । वेदोक्तयज्ञादन्यत्र स्वात्मार्थं पशुमारकः ॥ २० ॥ ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टो मांसभोक्ता च मद्यपः । उच्छृङ्खलस्वभावो यः शास्त्राध्ययनवर्जितः ॥ २१ ॥ वेदाक्षरं पठेच्छूद्रः कापिलं यः पयः पिबेत् । धारयेद्ब्रह्मसूत्रं च भवेद्वा ब्राह्मणीपितः ॥ २२ ॥ राजभार्याभिलाषी च परदारापहारकः । कन्यायां कामुकश्चैव

और मदिरा पीता है तथा जो उच्छृंखल (जिसमें बन्धन न हो) स्वभाव का हो और शास्त्र का अध्ययन न करता हो वह वैतरणी में पड़ता है ॥ २१ ॥ जो शूद्र होकर वेद के अक्षरों को पढ़ता है, कपिला गौ का दूध पीता है, यज्ञोपवीत धारण करता है और ब्राह्मणी का पति होता है वह वैतरणी में पड़ता है ॥ २२ ॥ जो

राजा की स्त्री (रानी) की अभिलाषा करता है, जो दूसरे की स्त्री को हरता है, जो कन्या में काम की वासना करता है और जो सती स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करता है ॥ २३ ॥ ये लोग तथा अन्य बहुत से निषिद्ध आचरण करनेवाले और कर्तव्य कर्म को त्यागनेवाले मूढ़ वैतरणी नदी में पड़ते हैं ॥ २४ ॥ संपूर्ण मार्ग का

सतीनां दूषकश्च यः ॥ २३ ॥ एते चान्ये च बहवो निषिद्धाचरणोत्सुकाः । विहितत्यागिनो मूढा वैतरण्यां पतन्ति ते ॥२४॥ सर्वं मार्गमतिक्रम्य यान्ति पापा यमालये । पुनर्यमाज्ञयागत्य दूतास्तस्यां क्षिपन्ति तान् ॥ २५ ॥ या वै धुरन्धरा सर्वधौरेयाणां खगाधिप । अतस्तस्यां प्रक्षिपन्ति वैतरण्यां च पापिनः ॥ २६ ॥ कृष्णा गौर्यदि नो दत्ता नौर्ध्वदेहक्रियाः कृताः । तस्यां

उल्लंघन करके पापी लोग यमलोक में जाते हैं और फिर यम की आज्ञा पाकर यमदूत उनको वैतरणी में पटक देते हैं ॥ २५ ॥ हे गरुड़ ! सब नरकों में मुख्य नरक वैतरणी ही है इसलिए पापियों को उसमें ही पटकते है ॥ २६ ॥ जिसने काली गौ नहीं दी है और जिसकी और्ध्वदेहिक (मरने के बाद की पिण्डदानादि) क्रिया नहीं

की गई है वे उसमें बड़ा भारी दुःख भोगकर उसके किनारे के वृक्ष पर जाते हैं ।। २७ ।। जो झूठी गवाही देते हैं और झूठे धर्म में तत्पर रहते हैं अथवा छल से या चोरी से धनसंचय कर जीवन-निर्वाह करते हैं ।। २८ ।। और जो बहुत से वृक्षों को काटते हैं या वन और बगीचे को नष्ट करते हैं तथा तीर्थ-व्रत को छोड़कर विधवा के

भुक्त्वा महद्दुःखं यान्ति वृक्षं तटोद्भवम् ॥ २७ ॥ कूटसाक्ष्यप्रदातारः कूटधर्मपरायणाः । छलेनार्जनसंसक्ताश्चौर्यवृत्त्या च जीविनः ॥ २८ ॥ छेदयन्त्यतिवृक्षांश्च वनारामविभञ्जकाः । व्रतं तीर्थं परित्यज्य विधवाशील-नाशकाः ॥ २९ ॥ भर्तारं दूषयेन्नारी परं मनसि धारयेत् । इत्याद्याः शाल्मलीवृक्षे भुञ्जते बहुताडनम् ॥ ३० ॥ ताडनात्पतितान् दूताः क्षिपन्ति नरकेषु तान् । पतन्ति तेषु ये पापास्तानहं कथयामि ते ॥ ३१ ॥ नास्तिका

धर्म को नष्ट करते हैं ।। २९ ।। और जो स्त्री अपने पति को दोष लगाकर परपुरुष को मन में धारण करती है ये सब शाल्मली वृक्ष में बहुत दुःख भोगते हैं ।। ३० ।। ताड़न करने से जो पापी वृक्ष से गिर पड़ते हैं उनको यमदूत नरक में छोड़ देते हैं । नरकों में जैसे पापी गिरते हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ ।। ३१ ।। जो नास्तिक

(जो ईश्वर को नहीं मानते), मर्यादा भंग करनेवाले, कायर, विषयलोलुप, पाखण्डी और कृतघ्न (किये उपकारों को नहीं माननेवाले) हैं वे ही नरक में जाते हैं ॥ ३२ ॥ कुएँ, तालाब, बावड़ी, देवालय और प्रजा के घरों को तोड़नेवाले नरक में जाते हैं ॥ ३३ ॥ स्त्री, बालक, नौकर और गुरुओं को भूखा छोड़कर जो स्वयं

भिन्नमर्यादाः कदर्या विषयात्मकाः । दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै नरकगामिनः ॥ ३२ ॥ कूपानां च तडागानां वापीनां देवसद्मनाम् । प्रजागृहाणां भेत्तारस्ते वै नरकगामिनः ॥ ३३ ॥ विसृज्याश्नन्ति ये दाराञ्छिशून् भृत्यांस्तथा गुरून् । उत्सृज्य पितृदेवेज्यां ते वै नरकगामिनः ॥ ३४ ॥ शंकुभिः सेतुभिः काष्ठैः पाषाणैः कण्टकैस्तथा । ये मार्गमुपरुन्धन्ति ते वै नरकगामिनः ॥ ३५ ॥ शिवं शिवां हरिं सूर्यं गणेशं सद्गुरुं बुधम् । न पूजयन्ति

खाते हैं तथा देव और पितरों की पूजा छोड़ देते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ३४ ॥ कील, बाँध, काठ, पत्थर और काँटों से जो रास्ते को रोक देते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ३५ ॥ शिव, पार्वती, भगवान्, सूर्य, गणेश,

अच्छे गुरु और विद्वान् की जो मन्दभागी पूजा नहीं करते वे नरक में जाते हैं ॥ ३६ ॥ जो ब्राह्मण अपनी सेज पर दासी को सुलाता है वह अधोगति को प्राप्त होता है तथा जो शूद्रा स्त्री से संतान उत्पन्न करता है वह ब्राह्मणत्व से हीन हो जाता है ॥ ३७ ॥ वह अधम ब्राह्मण कभी भी नमस्कार करने के योग्य नहीं होता है।

ये मन्दास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३६ ॥ आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छे-दधोगतिम् । प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ३७ ॥ न नमस्कारयोग्यो हि स कदापि द्विजाधमः । न पूजयन्ति ये मूढास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणानां च कलहं गोयुद्धं कलहप्रियाः । न वर्जन्त्य-नुमोदन्ते ते वै नरकगामिनः ॥ ३९ ॥ अनन्यशरणस्त्रीणामृतुकालव्यति-

जो मूढ़ देवताओं की पूजा नहीं करते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणों के कलह और गौओं के युद्ध में जो प्रीति करते हैं और उनको युद्ध से नहीं बर्जते हैं बल्कि उनकी तारीफ करते हैं वे पापी नरक में जाते हैं ॥ ३९ ॥ जिनके पति के सिवा अन्य शरण नहीं है, ऋतुकाल में उन स्त्रियों से जो वैर से संगम नहीं करते वे

नरक में जाते हैं ॥ ४० ॥ जो काम से अन्धे पुरुष रजस्वला स्त्री से संगम करते हैं, तथा पर्व में, जल में, दिन में और श्राद्ध के दिन संगम करते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४१ ॥ जो शरीर के मल (मूत्र-विष्ठा)

क्रमम् । ये प्रकुर्वन्ति विद्वेषात्ते वै नरकगामिनः ॥ ४० ॥ येऽपि गच्छन्ति कामान्धा नरनारीं रजस्वलाम् । पर्वस्वप्सु दिवा श्राद्धे ते वै नरकगामिनः ॥ ४१ ॥ ये शारीरं मलंवह्नौ प्रक्षिपन्ति जलेऽपि च । आरामे प्रतिगोष्ठे वा ते वै नरकगामिनः ॥ ४२ ॥ शास्त्राणां ये च कर्तारः शराणां धनुषां तथा । विक्रेतारश्च ये तेषां ते वै नरकगामिनः ॥ ४३ ॥ चर्मविक्रयिणो वैश्याः केशविक्रयकाः स्त्रियः । विषविक्रयिणः सर्वे ते वै नरक-

को अग्नि, जल, बगीचे या गोष्ठ (गौओं के स्थान) में छोड़ते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४२ ॥ हथियार, बाण और धनुष के बनाने वाले और बेचनेवाले नरक में जाते हैं ॥ ४३ ॥ चमड़ा बेचनेवाले वैश्य और

केश (भग) बेचनेवाली (व्यभिचारिणी) स्त्री तथा जहर बेचनेवाले ये सब नरक में जाते हैं ॥ ४४ ॥ जो अनाथ पर दया नहीं करते हैं और सज्जनों से वैर रखते हैं तथा बिना अपराध के जो दण्ड देते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४५ ॥ आशा करके आये हुए ब्राह्मण और अतिथियों को, रसोई तैयार होने पर भी, जो भोजन

गामिनः ॥ ४४ ॥ अनाथं नानुकम्पन्ति ये सतां द्वेषकारकाः । विनापराधं दण्डयन्ति ते वै नरकगामिनः ॥ ४५ ॥ आशया समनुप्राप्तान् ब्राह्मणानर्थिनो गृहे । न भोजयन्ति पाकेऽपि ते वै नरकगामिनः ॥ ४६ ॥ सर्वभूतेष्वविश्वस्तास्तथा तेषु विनिर्दयाः । सर्वभूतेषु जिह्मा ये ते वै नरकगामिनः ॥ ४७ ॥ नियमान्समुपादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः । विग्लापयन्ति तान् भूयस्ते वै नरकगामिनः ॥ ४८ ॥ अध्यात्मविद्यादातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम् ।

नहीं कराते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४६ ॥ जो सब जीवों में विश्वास और दया नहीं करते हैं और सब प्राणियों से कुटिलता रखते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४७ ॥ जो पहले नियमों को धारण करके फिर इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकते और उन नियमों को छोड़ देते हैं वे नरक में जाते हैं ॥ ४८ ॥ अध्यात्मविद्या के

देनेवाले गुरु को और पुराण बाँचनेवाले को जो नहीं मानते हैं वे नरक में जाते हैं ।। ४९ ।। मित्र से वैर करनेवाले, प्रीति का त्याग करनेवाले और आशा भंग करनेवाले ये सब नरक में जाते हैं ।। ५० ।। विवाह, देवयात्रा और तीर्थ में साथ जानेवालों को जो लूटता है वह घोर नरक में जाकर बसता है। वहाँ से फिर नहीं लौटता है ।। ५१ ।।

तथा पुराणवक्तारं ते वै नरकगामिनः ॥ ४९ ॥ मित्रद्रोहकरा ये च प्रीतिच्छेदकराश्च ये। आशाच्छेदकरा ये च ते वै नरकगामिनः ॥ ५० ॥ विवाहं देवयात्रां च तीर्थे सार्थान् विलुम्पति। स वसेन्नरके घोरे तस्मान्नावर्तनं पुनः ॥ ५१ ॥ अग्निं दद्यान्महापापी गृहे ग्रामे तथा वने। स नीतो यमदूतैश्च वह्निकुण्डेषु पच्यते ॥ ५२ ॥ अग्निना दग्धगात्रोऽसौ यदा च्छायां प्रयाचते। नीयते च तदा दूतैरसिपत्रवनान्तरे ॥ ५३ ॥ खड्गतीक्ष्णैश्च

जो महापापी घर; गाँव या वन में आग लगाता है उसको ले जाकर यमदूत अग्निकुंड में पकाते हैं ।। ५२ ।। अग्नि से जलते शरीरवाला वह जब छाया की चाह करता है तब यमदूत उसे असिपत्र वन में ले जाते हैं ।। ५३ ।।

वहाँ तलवार के से पैने पत्रों से जब उसका शरीर कटता है तब यमदूत कहते हैं कि हे पापी ! सुख से शीतल छाया में सोवो ॥ ५४ ॥ प्यास लगने पर जब वह जल माँगता है तब उसे यमदूत बहुत गर्म तैल पीने को देते हैं ॥ ५५ ॥ और कहते हैं कि जल पीवो और अन्न खाओ । फिर उसके पीते ही आँतें जल जाती हैं

तत्पत्रैर्गात्रच्छेदो यदा भवेत् । तदोचुः शीतलच्छाये सुखनिद्रां कुरुष्व भोः । ५४ ॥ पानीयं पातुमिच्छन् वै तृषार्तो यदि याचते । पानार्थं तैलमत्युष्णं तदा दूतैः प्रदीयते ॥ ५५ ॥ पीयतां भुज्यतां पानमन्नमूचुस्तदेति ते । पीतमात्रेण तेनैव दग्धान्त्रा निपतन्ति ते ॥ ५६ ॥ कथञ्चित्पुनरुत्थाय प्रलपन्ति सुदीनवत् । विवशा उच्छ्वसन्तश्च ते वक्तुमपि नाशकन् ॥ ५७ ॥ इत्येवं बहुशस्तार्क्ष्य यातनाः पापिनां स्मृताः । किमेतैर्विस्तरात्प्रोक्तैः

और वे गिर पड़ते हैं ॥ ५६ ॥ फिर किसी प्रकार उठकर अनाथ की तरह रोते हैं और विवश हो लम्बी साँस लेते हैं पर बोल नहीं सकते हैं ॥ ५७ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार पापियों की बहुत-सी यातनाएँ कही हैं, उनको

विस्तारपूर्वक कहने से क्या है । वे तो सब शास्त्रों में कही गई हैं ॥ ५८ ॥ इस प्रकार हजारों स्त्री-पुरुष प्रलय-
काल तक घोर नरक में पचाये जाते हैं ॥ ५९ ॥ फिर उस पाप का अक्षय फल भोगकर वहीं नरक में पैदा
होते हैं अथवा यमराज की आज्ञा से पृथ्वी पर आकर स्थावर आदि की योनि में उत्पन्न होते हैं ॥ ६० ॥ वृक्ष,

सर्वशास्त्रेषु भाषितैः ॥ ५८ ॥ एवं वै क्लिश्यमानास्ते नरा नार्यः सहस्रशः ।
पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५९ ॥ तस्याक्षयं फलं भुक्त्वा
तत्रैवोत्पद्यते पुनः । यमाज्ञया महीं प्राप्य भवन्ति स्थावरादयः ॥ ६० ॥
वृक्षगुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणानि च । स्थावरा इति विख्याता महामोह
समावृताः ॥ ६१ ॥ कीटाश्च पशवश्चैव पक्षिणश्च जलेचराः । चतुरशी-
तिलक्षेषु कथिता देवयोनयः ॥ ६२ ॥ एताः सर्वाः परिभ्रम्य ततो यान्ति

गुल्म, लता, बेल, पर्वत और तृण इनको स्थावर कहते हैं ये सब मोह से घिरे रहते हैं ॥ ६१ ॥ कीड़े, पशु,
पक्षी, जलचर और देवता ये सब चौरासी योनियों में कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ इन सब योनियों में घूमकर फिर

मनुष्ययोनि में जाते हैं। नरक से आये हुए प्राणी मनुष्यों में भी चाण्डाल की योनि में जन्म लेते हैं। वहाँ भी पाप के चिह्नों से वे बहुत दुःखी होते हैं ॥ ६३ ॥ गलित कोढ़, जन्मान्ध और बड़े-बड़े रोगों से युक्त स्त्री-पुरुषों को जाना जाता है कि ये पाप भोगकर आते हैं ॥ ६४ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

मनुष्यताम्। मानुषेऽपि श्वपाकेषु जायन्ते नरकागताः। तत्रापि पापचिन्हैस्ते भवन्ति बहुदुःखिताः ॥ ६३ ॥ गलत्कुष्ठाश्च जन्मान्धा महारोगसमाकुलाः। भवन्त्येवं नरा नार्यः पापचिह्नोपलक्षिताः ॥ ६४ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे नरकप्रदपापचिह्ननिरूपणो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गरुड उवाच ॥ येन येन च पापेन यद्यच्चिन्हं प्रजायते। यां यां योनिं च गच्छन्ति तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यैः पापैर्यान्ति यां

(जीवों की पूर्वोक्त यन्त्रणाओं को सुनकर भयभीत हो) गरुड़जी पूछते हैं कि हे केशव! जिस-जिस पाप से जो-जो चिह्न मनुष्यों में होते हैं और जिस-जिस योनि में वे जन्मते हैं वह मुझसे कहिए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़! नरक से आये हुए जिन पापों से जिस योनि में जाते हैं और जिस पाप से

शरीर में जो चिह्न होता है वह मुझसे सुनिये ।। २ ।। ब्राह्मण को मारनेवाला क्षयरोगी, गौ को मारनेवाला कुबड़ा तथा जड़ और कन्या का मारनेवाला कोढ़ी होता है । ये तीनों चाण्डाल योनि में जन्म लेते हैं ।। ३ ।। स्त्री को मारनेवाला और गर्भ गिरानेवाला रोगयुक्त पुलिन्द (म्लेच्छ) जाति में उत्पन्न होता है । अगम्य

योनिं पापिनो नरकागताः । येन पापेन यच्चिन्हं जायते मम तच्छृणु ।। २ ॥ ब्रह्महा क्षयरोगी स्याद्गोघ्नः स्यात् कुब्जको जड़ः । कन्याघाती भवेत्कुष्ठी त्रयश्चाण्डालयोनिषु ॥ ३ ॥ स्त्रीघाती गर्भपाती च पुलिन्दो रोगवान् भवेत् । अगम्यागमनात्षण्ढो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ ४ ॥ मांस-भोक्ताऽतिरक्ताङ्गः श्यावदन्तस्तु मद्यपः । अभक्ष्यभक्षको लौल्याब्राह्मणः स्यान्महोदरः ॥ ५ ॥ अदत्त्वा मिष्टमश्नाति स भवेद्गलगण्डवान् । श्राद्धेऽन्नः

स्त्री से गमन करनेवाला नपुंसक और गुरुओं की स्त्रियों से भोग करनेवाला कुष्ठादि चर्मरोगवाला होता है ।। ४ ।। मांसभक्षी लालवर्ण और मदिरा पीनेवाला कृष्णदन्त होता है । चंचलता से जो ब्राह्मण अभक्ष्य भक्षण करता है वह बड़े पेटवाला (तुन्दिल) होता है ।। ५ ।। दूसरों को दिये विना जो अकेला मिठाई खाता है

वह गलगण्ड रोगवाला है। जो श्राद्ध में अपवित्र अन्न देता है वह सफेद कोढ़वाला होता है॥ ६॥ गर्व से गुरु का अपमान करने से मिरगी रोगवाला होता है और जो वेद-शास्त्र की निन्दा करता है वह पाण्डुरोगी (पीलिया या कामला का रोगी) होता है॥ ७॥ झूठी गवाही देनेवाला गूंगा, पंक्तिभेद करनेवाला काना,

मशुचिं दत्त्वा श्वित्रकुष्ठी प्रजायते॥ ६॥ गुरोर्गर्वेणावमानादपस्मारी भवेन्नरः। निन्दको वेदशास्त्राणां पाण्डुरोगी भवेद्ध्रुवम्॥ ७॥ कूटसाक्षी भवेन्मूकः काणः स्यात्पंक्तिभेदकः। अनोष्ठः स्याद्विवाहघ्नो जन्मान्धः पुस्तकं हरेत्॥ ८॥ गोब्राह्मणपदाघातात्खञ्जः पंगुश्च जायते। गद्गदोऽनृत-वादी स्यात्तच्छ्रोता बधिरो भवेत्॥ ९॥ गरदः स्याज्जडोन्मत्तः खल्वाटो-

विवाह में विघ्न करनेवाला ओष्ठरहित और पुस्तक चुरानेवाला जन्मान्ध होता है॥ ८॥ गौ और ब्राह्मण के लात मारनेवाला कुबड़ा और पंगुला होता है। झूठ बोलनेवाला गद्गद (अस्पष्ट) बोलनेवाला और झूठी बात सुननेवाला बहरा होता है॥ ९॥ जहर देनेवाला जड़ और मदवाला (उन्मत्त) तथा अग्नि लगानेवाला

गंजा, मांस बेचनेवाला कुशरीर और पराये मांस का खानेवाला रोगी होता है ।। १० ।। रत्नों को चुरानेवाला नीच जाति में पैदा होता है, सोना चुरानेवाला काले खराब नखवाला और धातुमात्र (चाँदी आदि सब धातुओं) का चुरानेवाला निर्धन होता है ।। ११ ।। अन्न चुरानेवाला मूषक (चूहा), धान्य (भूसीसमेत अन्न)

ऽग्निप्रदायकः । दुर्भगः पलविक्रेता रोगवान् परमांसभुक् ॥ १० ॥ हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः । कुनखी स्वर्णहर्ता स्याद्धातुमात्रहरोऽधनः ॥ ११ ॥ अन्नहर्ता भवेदाखुः शलभो धान्यहारकः । चातको जलहर्त्ता स्याद्विषहर्ता च वृश्चिकः ॥ १२ ॥ शाकं पत्रं शिखा हृत्वा गन्धाञ्छुच्छुन्दरी शुभान् । मधु दंशः पलं गृध्रो लवणं च पिपीलिका ॥ १३ ॥ ताम्बूलफल-

चुरानेवाला टीड़ी, जल चुरानेवाला चातक और जहरीली चीज चुरानेवाला बिच्छू होता है ।। १२ ।। सागपत्तों का चुरानेवाला मोर, अच्छी गन्धों को चुरानेवाला छछूंदर, शहद चुरानेवाला मच्छर, मांस चुरानेवाला गीध और नमक चुरानेवाला चींटी की योनि को पाता है ।। १३ ।। पान, फल और फूल आदि का चुरानेवाला

वन का बन्दर, जूता, घास तथा कपास का चुरानेवाला मेढ़ा होता है ॥ १४ ॥ हिंसा आदि रौद्र कर्मों से जो जीविका करता है और रास्ते में साथियों को लूटता है तथा जो शिकार खेलने का व्यसनी है वह कसाई के घर में बकरा होता है ॥ १५ ॥ जहर खाकर मरने वाला पहाड़ में काला साँप और निरंकुश स्वभाववाला

पुष्पादिहर्ता स्याद्वानरो वने । उपानत्तृणकार्पासहर्ता स्यान्मेषयोनिषु ॥ ॥ १४ ॥ यश्च रौद्रोपजीवी च मार्गे सार्थान् विलुम्पति । मृगयाव्यसने यस्तु छागः स्याद्वधिकगृहे ॥ १५ ॥ यो मृतो विषपानेन कृष्णसर्पो भवेद्गिरौ । निरंकुशस्वभावः स्यात्कुञ्जरो निर्जने वने ॥ १६ ॥ वैश्वदेवमकर्तारः सर्वभक्षाश्च ये द्विजाः । अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर्निर्जने वने ॥ १७ ॥ गायत्रीं न स्मरेद्यस्तु यो न संध्यामुपासते । अन्तर्दुष्टो बहिः साधुः स भवे-

निर्जन वन में हाथी होता है ॥ १६ ॥ तथा विश्वेदेवों की बलि नहीं करनेवाला, सर्वभक्षी और बिना परीक्षा किये खानेवाला निर्जन वन में व्याघ्र होता है ॥ १७ ॥ जो गायत्री का स्मरण (जप) और संध्या नहीं करता

द्ब्राह्मणो बकः ॥ १८ ॥ अयाज्ययाजको विप्रः स भवेद्ग्रामसूकरः । खरो वै बहुयाजित्वात् काको निर्मन्त्रभोजनात् ॥ १९ ॥ पात्रे विद्यामदाता च बलीवर्दो भवेद्द्विजः । गुरुसेवामकर्ता च शिष्यः स्याद्गोखरः पशुः ॥ २० ॥ गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः । अरण्ये निर्जले देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ २१ ॥ प्रतिश्रुतं द्विजे दानेमदत्त्वा जम्बुको भवेत् । सताम-

है तथा भीतर से दुष्ट और बाहर से सज्जन बना रहता है वह ब्राह्मण बगुला होता है ॥ १८ ॥ अयाज्य (शूद्र आदि) को जो ब्राह्मण यज्ञ कराता है वह गांव का सूअर होता है । बहुतों को यज्ञ-पूजन करानेवाला गधा और विना निमन्त्रण भोजन करनेवाला कौआ होता है ॥ १९ ॥ जो सुपात्र को विद्या नहीं देता है वह ब्राह्मण बैल होता है । जो शिष्य होकर गुरु की सेवा नहीं करता है वह गोखर पशु होता है ॥ २० ॥ जो गुरु से हूँ, तूँ करके बोलता है तथा वाद-विवाद में ब्राह्मण को जीतता है वह निर्जल वन में ब्रह्मराक्षस होता है ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण को देना कहकर फिर नहीं देता है वह सियार होता है और जो सज्जनों का सत्कार नहीं करता

है वह मुख से अग्नि उगलनेवाली पयोकरी (सियारी) होता है ॥ २२ ॥ मित्रद्रोही पहाड़ का गीध, खरीदने में छल करनेवाला उल्लू और वर्णाश्रम की निन्दा करनेवाला वन में कबूतर होता है ॥ २३ ॥ जो आशा भङ्ग करता और स्नेह को तोड़ता है तथा वैर से स्त्री को त्याग देता है वह बहुत समय तक चकवा होता है ॥ २४ ॥ जो

सत्कारकरः फेत्कारोऽग्निमुखो भवेत् ॥ २२ ॥ मित्रध्रुग्गिरिगृध्रः स्याद्दुलूकः व्र यवञ्चनात् । वर्णाश्रमपरीवादात्कपोतो जायते वने ॥ २३ ॥ आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः । यो द्वेषात् स्त्रीपरित्यागी चक्रवाकश्चिरं भवेत् ॥ २४ ॥ मातृपितृगुरुद्वेषी भगिनीभ्रातृवैरकृत् । गर्भे योनौ विनष्टः स्याद्यावद्योनिसहस्रशः ॥ २५ ॥ श्वश्र्वोगालिप्रदा नारी

माता, पिता, गुरु, बहिन और भाई से वैर करता है वह हजार योनि तक गर्भ में ही नष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥ जो स्त्री सास-श्वशुर को गाली देती है और हमेशा कलह रखती है वह जोंक होती है तथा जो पति को

धमकाती है वह जू होती है ॥ २६ ॥ जो अपने पति को छोड़कर पर-पुरुषों के साथ रहती है वह चमगीदड़ी, छिपकली अथवा दो मुँह की साँपिन होती है ॥ २७ ॥ जो अपने गोत्र की स्त्री से संग करके अपने गोत्र को नष्ट करता है वह मरकर तरक्षु (कुत्ते की आकृति का काली धारीवाला मृगविशेष) और सल्लकी (स्याही)

नित्यं कलहकारिणी । सा जलौका च यूका स्याद्भर्तारं भर्त्संते च या ॥ २६ ॥ स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनी । वल्गुनी गृहगोधा स्याद्द्विमुखी वाथ सर्पिणी ॥ २७ ॥ यः स्वगोत्रोपघाती च स्वगोत्रस्त्रीनिषेवणात् । तरक्षुः शल्लको भूत्वा ऋक्षयोनिषु जायते ॥ २८ ॥ तामसीगमनात्कामी भवेन्मरुपिशाचकः । अप्राप्तयौवनासंगाद्भवेदजगरो वने ॥ २९ ॥ गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः । राज्ञीं गत्वा भवेद्दुष्टो मित्रपत्नीं

होकर रीछ की योनि में पैदा होता है ॥ २८ ॥ जो कामी तामस स्वभाववाली स्त्री से गमन करता है वह मरुदेश में पिशाच होता है । यौवनरहित स्त्री से भोग करके वन में अजगर होता है ॥ २९ ॥ गुरु की स्त्री से भोग करने की इच्छावाला गिरगिट होता है । राजा की स्त्री से भोग करनेवाला दुष्ट और मित्र की स्त्री से

गमन करनेवाला गधा होता है ॥ ३० ॥ गुदा में गमन करनेवाला विष्ठाभक्षी सूअर और वृषली से भोग करनेवाला बैल होता है। बहुत कामी मनुष्य काम में लम्पट घोड़ा होता है ॥ ३१ ॥ जो मरे के दिन का भोजन करता है वह कुत्ता होता है तथा देवलक ब्राह्मण मुर्गा होता है ॥ ३२ ॥ धन के लिए जो देवता की

च गर्दभः ॥ ३० ॥ गुदगो विड्वराहः स्याद्वृषः स्याद्वृषलीपतिः। महा-
कामी भवेद्यस्तु स्यादश्वः कामलम्पटः ॥ ३१ ॥ मृतस्यैकादशाहं तु
भुञ्जानः श्वा विजायते। लभेद्देवलको विप्रो योनिं कुक्कुटसंज्ञकाम्
॥ ३२ ॥ द्रव्यार्थं देवतापूजां यः करोति द्विजाधमः। स वै देवलको नाम
हव्यकव्येषु गर्हितः ॥ ३३ ॥ महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य दारुणान्
कर्मक्षये प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ॥ ३४ ॥ खरोष्ट्रमहिषीणां हि ब्रह्महा

पूजा करता है वह नीच ब्राह्मण देवलक कहलाता है। यह देवकर्म और पितृकर्म के योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ महापापों से बड़े कठिन घोर नरकों में प्राप्त होकर कर्मों के नाश होने पर महापातकी फिर इस लोक में पैदा होता है ॥ ३४ ॥ ब्रह्महत्या करनेवाला गधा, ऊंट और भैंसे की योनि में उत्पन्न होता है तथा मदिरा पीनेवाला

भेड़िया, कुत्ता और सियार की योनि में पैदा होता है ॥ ३५ ॥ सोना चुरानेवाला कीड़ा, कीट और पतंग होता है और गुरु की सेज पर सोनेवाला क्रम से तृण, गुल्म (पेड़) और लता होता है ॥ ३६ ॥ दूसरे की स्त्री और धरोहर चुराने से तथा ब्राह्मण का धन हरने से ब्रह्मराक्षस होता है ॥ ३७ ॥ कपट के स्नेह से खाया

योनिमृच्छति । वृकश्वानश्रृगालानां सुरापा यान्ति योनिषु ॥ ३५ ॥ कृमि-
कीटपतंगत्वं स्वर्णस्तेयी समाप्नुयात् । तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो
गुरुतल्पगः ॥ ३६ ॥ परस्य योषितं हृत्वा न्यासापहरणेन च । ब्रह्मस्वहरणा-
च्चैव जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।
बलात्कारेण चौर्येण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥ ३८ ॥ लोहच्चूर्णाश्मचूर्णे च विषं

हुआ ब्राह्मण का धन सात कुल तक को नष्ट करता है और बल से तथा चोरी से खाया हुआ ब्राह्मण का धन जब तक चन्द्र-तारा हैं तब तक कुल को नष्ट करता है ॥ ३८ ॥ लोह और पत्थर के चूरे को तथा विष को

खाकर मनुष्य हजम कर सकता है परन्तु तीनों लोकों में ब्राह्मण के द्रव्य को कोई हजम नहीं कर सकता है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण के धन से पले हुए वाहन और सेना युद्ध में ऐसे बिखर जाते हैं जैसे पानी में बालू के बांध ॥ ४० ॥ देवता का द्रव्य खाने से और ब्राह्मण का धन हरने से और ब्राह्मण के अतिक्रम से कुलीन

च जरयेन्नरः। ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ३८ ॥ ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च। युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा ॥ ४० ॥ देवद्रव्योपभोगेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ४१ ॥ स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम्। अन्येभ्यो दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणातिक्रमो

अकुलीन हो जाता है ॥ ४१ ॥ अपने आश्रित वेदशास्त्र पढ़ हुए ब्राह्मण को छोड़कर जो अन्य को दान दिया जाता है वह अतिक्रम कहलाता है ॥ ४२ ॥ वेद से रहित ब्राह्मण में ब्राह्मणातिक्रम नहीं है। जलती हुई अग्नि

को छोड़कर राख में होम नहीं किया जाता है ॥ ४३ ॥ हे गरुड़ ! अतिक्रम करके क्रम से नरकों को भोगकर जन्मान्ध और दरिद्री होता है किन्तु अन्नदाता नहीं, माँगनेवाला होता है ॥ ४४ ॥ अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई जमीन को जो छीनता है वह साठ हजार बरस तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥ ४५ ॥ जो आप

नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ॥ ४३ ॥ अतिक्रमे कृते तार्क्ष्य भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्। जन्मान्धः सन् दरिद्रः स्यान्न दाता किंतु याचकः ॥ ४४ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥४५॥ स्वयमेव च यो दत्त्वा स्वयमेवापकर्षति। स पापी नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४६ ॥ दत्त्वा वृत्तिं भूमिदानं यत्नतः परिपालयेत्। न रक्षति हरेद्यस्तु स पंगुः

ही देकर आप ही छीन लेता है वह पापी प्रलयकाल तक नरक में वास करता है ॥ ४६ ॥ जो ब्राह्मण को आजीविका देकर उसका यत्न से पालन नहीं करता है और उसकी रक्षा भी नहीं करता है वह पँगुला कुत्ता

होता है ।। ४७ ।। ब्राह्मण की आजीविका लगाने से लाख गोदान का फल होता है और ब्राह्मण की आजीविका हरने से कुत्ता या बन्दर होता है ।। ४८ ।। हे पक्षिराज ! कर्मानुसार लोक में इस प्रकार के चिह्न और योनियाँ प्राणियों की देखने में आती है ।। ४९ ।। इसी प्रकार खोटे कर्म करनेवाले नरक की यातना भोगकर

श्वाऽभिजायते ॥ ४७ ॥ विप्रस्य वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलं भवेत् । विप्रस्य वृत्तिहरणान्मर्कटः श्वा कपिर्भवेत् ॥ ४८ ॥ एवमादीनि चिह्नानि योनयश्च खगेश्वर । स्वकर्मविहिता लोके दृश्यन्तेऽत्र शरीरिणाम् ॥ ४९ ॥ एवं दुष्कर्मकर्तारो भुक्त्वा निरययातनाम् । जायन्ते पापशेषेण प्रोक्तास्वेतासु योनिषु ॥ ५० ॥ ततो जन्मसहस्रेषु प्राप्य तिर्यक्छरीरिताम् । दुःखानि भारवहनोद्भवादीनि लभन्ति ते ॥ ५१ ॥ पक्षिदुःखं ततो भुक्त्वा वृष्टिशीता-

शेष बचे हुए पाप से फिर कही हुई योनियों में उत्पन्न होते हैं ।। ५० ।। तदनन्तर हजारों जन्म तक तिर्यक (पशु-पक्षी आदि) योनियाँ भोगकर बोझा ढोनेवाले ऊँट-गधा आदि की दुःखदायक योनियों में जन्म लेता है ।। ५१ ।। इसके बाद पक्षियोनि में वर्षा, सरदी और घाम से उत्पन्न दुःख भोगकर जब पाप-पुण्य बराबर

हो जाते हैं तब मनुष्य की देह पाता है ॥ ५२ ॥ तथा स्त्री-पुरुषों के प्रसंग से गर्भ में जाकर गर्भ से ले मरणपर्यन्त दुःख भोगकर फिर मर जाता है ॥ ५३ ॥ सब प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश इसी प्रकार होता रहता है। चार प्रकार के (अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज) प्राणियों में यह चक्र घूमता ही रहता है ॥ ५४ ॥

तपोद्भवम् । मानुषं लभते पश्चात्समीभूते शुभाशुभे ॥ ५२ ॥ स्त्रीपुंसोस्तु प्रसङ्गेन भूत्वा गर्भे क्रमादसौ। गर्भादि मरणान्तं च प्राप्य दुःखं म्रियेत्पुनः॥ ५३ ॥ समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते सर्वदेहिनाम् । एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे ॥ ५४ ॥ घटीयन्त्रं यथा मर्त्या भ्रमन्ति मम मायया । भूमौ कदाचिन्नरकं कर्मपाशसमावृतः ॥ ५५ ॥ अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्र-भावाच्च करोति पापम् । पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव

कर्मपाश में बँधे हुए मनुष्य मेरी माया से घटीयंत्र के समान कभी पृथ्वी में और कभी नरक में घूमा ही करते हैं ॥ ५५ ॥ दान न देने से दरिद्री होता है और दरिद्री होने से पाप करता है तथा पाप के प्रभाव से

नरक में जाता है अतः फिर दरिद्री और फिर पापी होता है ॥ ५६ ॥ किया हुआ शुभ और अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है । बिना भोगें करोड़ों कल्प तक भी कर्म क्षीण नहीं होते हैं ॥ ५७ ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

पापी ॥ ५६ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥ इति श्रीगरुड पुराणे सारोद्धारे पापचिह्न-निरूपणो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

गरुड उवाच ॥ कथमुत्पद्यते मातुर्जठरे नरकागतः । गर्भादिदुःखं यद्भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ स्त्रीपुंसोस्तु प्रसंगेन निरुद्धे शुक्रशोणिते । यथायं जायते मर्त्यस्तथा वक्ष्याम्यहं तव ॥ २ ॥

गरुड़जी पूछते हैं कि हे भगवन् ! नरक से आया हुआ माता के पेट में कैसे उत्पन्न होता है और कैसे गर्भादि का दुःख भोगता है वह मुझसे कहिए ॥ १ ॥ श्रीविष्णु भगवान् कहते हैं कि स्त्री और पुरुष के प्रसंग से वीर्य और रज के गर्भ में ठहर जाने से जैसे मनुष्य उत्पन्न होता है वह तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥ जिस ऋतु-

काल में तीन दिन इन्द्र की ब्रह्महत्या रहती है उन्हीं तीन दिनों में पापियों के देह की उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥ ऋतुदर्शन के पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिन संज्ञा होती है। ये ही नरक से आये हुए की माता होती हैं ॥ ४ ॥ देव (ईश्वर) दृष्ट अपने पूर्व कर्म से शरीर की उत्पत्ति के लिए

ऋतुमध्ये हि पापानां देहोत्पत्तिः प्रजायते । इन्द्रस्य ब्रह्महत्यास्ति यस्मिं-स्तस्मिन्दिनत्रये ॥ ३ ॥ प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी ह्येता नरकागतमातरः ॥ ४ ॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये । स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ ५ ॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण

प्राणी पुरुष के वीर्यकण के आधार से स्त्री के उदर में प्रवेश करता है। (यहाँ यह विशेष है कि वीर्याधिक्य से पुरुष, रज की अधिकता से स्त्री और दोनों के समान होने से नपुंसक होता है तथा वीर्य-रज के विभाग से दो तीन आदि संतानें होती हैं) ॥ ५ ॥ एक रात्रि में कलल, पाँच रात्रि में बुद्बुद (बुलबुला के समान गोल),

दश दिन में कर्कन्धू (बेर के फल) के समान और इसके बाद मांसपेशी अथवा पक्षी आदि में अंडे के रूप का होता है ॥ ६ ॥ एक महीने में शिर और दो महीनों में बाहु आदि अंगों से युक्त होता है तथा तीसरे महीने में नख, बाल, हड्डी, खाल और लिंगादि के छिद्र होते हैं ॥ ७ ॥ चौथे महीने में सातों धातुएँ और पांचवें

बुद्बुदम् । दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥ ६ ॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्गाद्यंगविग्रहः । नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ७ ॥ चतुर्भिर्धातवस्सप्त पंचभिः क्षुत्तृडुद्भवः । षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ८ ॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यै रेधद्धातुरसंमते । शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे ॥ ९ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकु-

महीने में भूख और प्यास उत्पन्न होती है । छठे महीने में जरायु की झिल्ली में लिपटा हुआ दाहिनी कोख में घूमने लगता है ॥ ८ ॥ माता के खाये हुए अन्न-पान से बढ़ता हुआ वह जीव विष्ठा और मूत्र के दुर्गन्धित उस गड्ढ़े में सोता है जिसमें कि जीवों की उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ उस गर्भ में रहनेवाले भूखे कीड़ों के काटने

से उसके शरीर में घाव हो जाते हैं। सुकुमारता के कारण वह बहुत दुःख पाता है और मूर्च्छित हो जाता है ॥ १० ॥ माता के खाये हुए कड़ुए, तेज, गर्म, नमकीन, रूखे और खट्टे आदि दुःखद पदार्थों के स्पर्श से उसके शरीर में कष्ट होता है। वहाँ वह जरायु में लिपटा और बाहर आँतों से घिरा हुआ कोख में शिर

मार्यात्प्रतिक्षणम्। मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ १० ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः। मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः। उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ॥ ११ ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः। अकल्पः स्वांगचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ॥ १२ ॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्। स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥ १३ ॥ नाथमान ऋषिभींतः सप्तवध्रिः

करके पीठ और गर्दन झुकाये हुए पिंजरे में फँसे हुए पक्षी की तरह अपने अंगों को हिलाने-डुलाने में असमर्थ होता है ॥ ११-१२ ॥ वहाँ भाग्यवश पूर्वजन्म का स्मरण हो आता है जिससे सैकड़ों जन्मों के किये हुए कर्मों का स्मरण कर लम्बी श्वास लेता हुआ सुख नहीं पाता है अर्थात् बहुत दुःखी होता है ॥ १३ ॥ सप्त धातुरूप

बन्धन से बँधा हुआ ऋषि (आत्मदर्शी) जीव डर का मारा हाथ जोड़कर विकल वाणी से उस भगवान्
की स्तुति करता है जिसने कि उदर में स्थापित किया है ।। १४ ।। सातवें महीने के प्रारंभ से ही ज्ञान पाकर
डरा हुआ वह प्राणी प्रसूति की वायु से एक जगह नहीं रहने पाता है जैसे पेट में विष्ठा का कीड़ा ।। १५ ।।
जीव कहता है कि मैं लक्ष्मीपति, जगत् के आधार, अशुभों (पापों) के नाश करनेवाले, शरण में आये हुए

**कृताञ्जलिः । स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ १४ ॥ आरभ्य
सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः । नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव
सोदरः ॥ १५ ॥ जीव उवाच ॥ श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम् ।
व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम् ॥ १६ ॥ त्वन्मायामोहितो देहे
तथा पुत्रकलत्रके । अहं ममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम् ॥ १७ ॥ कृतं**

की पालना करनेवाले, विष्णु भगवान् की शरण में आया हूँ ।। १६ ।। हे नाथ ! तुम्हारी माया से मोहित
हुआ शरीर में और स्त्री-पुत्रों में मैं और मेरे अभिमान से (अर्थात् यह मेरा शरीर है, यह मेरे पुत्र हैं, यह
मेरी स्त्री है) संसार में प्राप्त हुआ हूँ ।। १७ ।। जिन कुटुम्बियों के वास्ते मैंने शुभ और अशुभ कर्म किये थे

उससे मैं अकेला ही जल रहा हूँ वे फल भोगनेवाले तो चले गये ॥ १८ ॥ यदि मैं इस योनि से छूट जाऊँगा तो आपके चरणों का स्मरण करूँगा। फिर ऐसा उपाय करूँगा जिससे मैं मुक्त हो जाऊँगा ॥ १९ ॥ विष्ठा और मूत्र के कुएँ में पड़ा और जठराग्नि से जलता हुआ मैं यहाँ से निकलना चाहता हूँ। हे भगवन् ! इससे

परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दग्धोऽहंगतास्ते फलभागिनः ॥ १८ ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्स्मरिष्ये पदं तव। तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥ १९ ॥ विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना। इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः ॥ २० ॥ येनेदृशं मे विज्ञानं दत्तं दीनदयालुना। तमेव शरणं यामि पुनर्मे माऽस्तु संसृतिः ॥ २१ ॥ न च निर्गन्तुमिच्छामि बहिर्गर्भात्कदाचन। यत्र यातस्य

बाहर कब निकालोगे ॥ २० ॥ जिन दीनदयालु ने मुझे ऐसा ज्ञान दिया है मैं उन्हीं की शरण में प्राप्त हूँ। फिर मेरा संसार में आवागमन न हो ॥ २१ ॥ मैं गर्भ से बाहर कभी नहीं जाना चाहता हूँ क्योंकि वहाँ

जाने पर पापकर्मों से दुर्गति हो जायगी ॥ २२ ॥ इसलिए बड़े दुःख में पड़ा हुआ भी मैं क्लेशरहित हूँ। आपके चरणों का सहारा लेकर संसार से अपना उद्धार करूँगा ॥ २३ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़! इस प्रकार की मतिवाला दश महीने का जीव गर्भ में स्तुति करता हुआ नीचे को मुख किये हुए प्रसूति की

मे पापकर्मणा दुर्गतिर्भवेत् ॥ २२ ॥ तस्मादत्र महद्दुःखे स्थितोऽपि विगतक्लमः। उद्धरिष्यामि संसारादात्मानं ते पदाश्रय ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवंकृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषि । सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूते सूतिमारुतः ॥ २४ ॥ तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक्छिर आतुरः। विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २५ ॥ पतितो भुवि विण्मूत्रे विष्ठा-

वायु से पैदा होने के लिए प्रेरित किया जाता है ॥ २४ ॥ उस वायु से एकाएकी फेंका हुआ वह दुःखी प्राणी नीचे को शिर किये हुए बड़े कष्ट से बाहर निकलता है जिससे श्वास लेना भूल जाता है और स्मृति नष्ट हो जाती है ॥ २५ ॥ पृथ्वी में पड़ा हुआ वह विष्ठा-मूत्र में पड़े हुए विष्ठा के कीड़े की तरह चेष्टा करता है।

विपरीत गति को प्राप्त हुआ वह पूर्व का ज्ञान लुप्त हो जाने से रोने लगता है ।। २६ ।। गर्भ में, रोग में, श्मशान में और पुराण सुनने में जो मति होती है यदि वैसी ही मति स्थिर रहे तो बन्धन से कौन न छूट जाय ।। २७ ।। कर्म भोग के बाद जब गर्भ के बाहर आ जाता है तभी विष्णुजी की माया उस पुरुष को

भूरिव चेष्टते। रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २६ ॥ गर्भे व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत्। सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्येत बन्धनात् ॥ २७ ॥ यदा गर्भाद्बहिर्याति कर्मभोगादनन्तरम्। तदैव वैष्णवी माया मोहयत्येव पूरुषम् ॥ २८ ॥ स तदा मायया स्पृष्टो न किंचिद्वदते-ऽवशः। शैशवादिभवं दुःखं पराधीनतयाश्नुते ॥ २९ ॥ परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः। अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ ३० ॥

मोहित कर लेती है ।। २८ ।। तब माया से मोहित वह विवश हो कुछ बोल नहीं सकता है । पराधीन होने से बालकपने के दुःख को भोगता है ।। २९ ।। बालक के अभिप्राय को न जाननेवाले माता-पितादि से पालन किया हुआ वह बालक अपना दुःख कहने के लिए असमर्थ होता है ।। ३० ।। स्वेदज, जूँ और खटमल आदि

जीवों से दूषित अशुद्ध खाट पर सुलाया हुआ बालक अङ्ग खुजलाने और वहाँ से उठने की चेष्टा करने में भी असमर्थ होता है ॥ ३१ ॥ जैसे कृमिवाले को कृमि काटते हैं उसी प्रकार उसको डाँस, मच्छर और खटमल आदि जीव जब कोमल खाल में काटते हैं तब वह ज्ञानरहित होने से रोता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बालकपने

शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते । नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥ ३१ ॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः । रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ ३२ ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च । ततो यौवनमासाद्य याति संपदमासुरीम् ॥ ३३ ॥ तदा दुर्व्यसनासक्तो नीचसंगपरायणः । शास्त्रसत्पुरुषाणां च द्वेष्टा स्यात्कामलम्पटः ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः । प्रलोभितः

के दुःख को भोगकर फिर पौगण्डे अवस्था का दुःख पाता है तदनन्तर यौवनावस्था में आकर आसुरी सम्पदा (दम्भ, दर्प, अभिमानादि) को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ तब खोटे व्यसनों में फँसा हुआ नीचों की संगति करता है तथा वह महाकामी लंपट शास्त्र और सज्जनों से वैर रखता है ॥ ३४ ॥ देवमायारूप स्त्री को

देखकर उसके हाव-भाव-कटाक्षादि से लोभित वह अजितेन्द्रिय (इन्द्रियों के वश हो) अग्नि में पतङ्ग के समान अन्धतम में गिरता है ३५ ॥ जब हरिण, हाथी, पतंग (पाँखी), भ्रमर और मछली ये पाँचों एक-एक इन्द्रिय के विषय में ही फँसकर मर जाते हैं तब यह एक प्रमादी जो पाँचों इन्द्रियों से पाँचों विषयों का सेवन

पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ३५ ॥ कुरंगमातंगपतंगभृंगमीनाहताः पञ्च-भिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥ ३६ ॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः । सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ ३७ ॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः । बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ ३८ ॥ एवं यो विषयासक्त्या नरत्वमति-

करता है, कैसे न मारा जाय ? ॥ ३६ ॥ इच्छित वस्तु के न मिलने पर अज्ञान से क्रोध बढ़ जाता है तथा देह के साथ बढ़ते हुए शोक, अभिमान और क्रोध से वह कामी अपने नाश के लिए कामियों से लड़ाई करता है । तथा अधिक बलवालों से वह मारा जाता है जैसे हाथी अन्य हाथियों से मारा जाता है ॥ ३७-३८ ॥

इस प्रकार वह मूढ़ प्राणी विषयों में आसक्त होकर अत्यन्त दुर्लभ नरदेह को वृथा ही नाश कर देता है अतः इससे बढ़कर कौन पापी होगा ? ।। ३९ ।। पशु आदि सैकड़ों जातियों में से पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म पाना दुर्लभ है और मनुष्यों में भी ब्राह्मण होना बड़ा दुर्लभ है । उस ब्राह्मण शरीर को पाकर भी जो यम-नियम

दुर्लभम् । वृथा नाशयते मूढस्तस्मात्पापतरो हि कः ॥ ३८ ॥ जातीशतेषु लभते भुवि मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम् । यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्या मृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥ ४० ॥ ततस्तां वृद्धतां प्राप्य महाव्याधिसमाकुलः । मृत्युं प्राप्य महद्दुःखं नरकं याति पूर्ववत् ॥ ४१ ॥ एवं गतागतैः कर्मपाशैर्बद्धाश्च पापिनः । कदापि न

ध्यान-धारणा आदि धर्मों का पालन नहीं करता है और इन्द्रियों का सेवन करता है उसने मानो आलस्य से हाथ में रक्खे हुए अमृत को गिरा दिया है ।। ४० ।। तरुणता के पश्चात् बुढ़ापा पाकर बड़ी-बड़ी व्याधियों से घिरकर मर जाता है और पहले के समान अत्यन्त दुःखदायक नरक को जाता है ।। ४१ ।। इस प्रकार आवा-

गमनरूप कर्मफांसों में बंधे हुए पापी मेरी माया से मोहित हो कभी भी बैराग्य को नहीं पाते हैं ॥ ४२ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार अन्त्येष्टि कर्म से हीन पापियों की नारकीय गति तुमसे कही फिर और क्या सुनना चाहते हो ॥ ४३ ॥ छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

विरज्यन्ते मम मायाविमोहिताः ॥ ४२ ॥ इति ते कथिता तार्क्ष्य पापिनां नारकी गतिः । अन्त्येष्टिकर्महीनानां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु गरुडः कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् । जनानामुपकारार्थं पुनः पप्रच्छ केशवम् ॥ १ ॥ गरुड उवाच ॥ कृत्वा पापानि मनुजाः प्रमादाद्बुद्धितोऽपि वा । न यान्ति यातना याम्याः केनोपायेन

सूतजी कहते हैं कि इस प्रकार भगवान् से पापियों की गति सुनकर गरुड़जी पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगे और फिर मनुष्यों के उपकार के लिए भगवान् से पूछने लगे ॥ १ ॥ गरुड़जी पूछते हैं कि हे भगवन् ! मनुष्य को विना जाने अथवा जानकर पाप करके भी किस उपाय से यम की यातना नहीं भोगनी पड़ती वह उपाय

वर्णन कीजिये ।। २ ।। संसाररूपी सागर में मग्न, दीनचित्त, पाप से नष्टबुद्धि और विषयों से नष्ट आत्मावाले पुरुषों के उद्धार के लिए हे स्वामिन् ! पुराणों के अर्थों का निश्चय कहिए। हे माधव ! किस उपाय के करने में मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ।। ३-४ ।। श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! मनुष्यों के हित के लिए

कथ्यताम् ॥ २ ॥ संसारार्णवमग्नानां नराणां दीनचेतसाम् । पापोपहत-बुद्धीनां विषयोपहतात्मनाम् ॥ ३ ॥ उद्धारार्थं वद स्वामिन्पुराणार्थविनिश्चयम् । उपायं येन मनुजाः सद्गतिं यान्ति माधव ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै । शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वं ते कथयाम्यहम् ॥ ५ ॥ दुर्गतिः कथिता पूर्वमपुत्राणां च पापिनाम् । पुत्रिणां धार्मिकाणां तु न कदाचित् खगेश्वर ॥ ६ ॥ पुत्रजन्मनिरोधः स्याद्यदि

तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब सावधान होकर सुनो, तुमसे सब वृत्तान्त कहता हूँ ।। ५ ।। हे गरुड़ ! पुत्ररहित पापियों की दुर्गति पहले कह चुका हूँ। पुत्रवाले और धर्मात्माओं की दुर्गति कभी नहीं होती है ।। ६ ।। यदि किसी पापकर्म से पुत्र का जन्म न हो तो किसी उपाय से पुत्र पैदा होने के लिए यत्न करना

चाहिए ॥ ७ ॥ हरिवंशपुराण सुनकर और शतचण्डी के विधान से दुर्गापाठ कराकर तथा शिवजी का भक्ति से आराधन करके बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न करे। पूर्वोक्त उपाय से पुत्र होते हैं ॥ ८ ॥ पुत्र पुन्नाम नरक से पिता की रक्षा करता है इसलिए ब्रह्माजी ने आप ही इसे पुत्र कहा है ॥ ९ ॥ एक भी धर्मात्मा पुत्र संपूर्ण

केनापि कर्मणा। तदा कश्चिदुपायेन पुत्रोत्पत्तिं प्रसाधयेत् ॥ ७ ॥ हरिवंश-कथां श्रुत्वा शतचण्डीविधानतः। भक्त्या श्रीशिवमाराध्य पुत्रमुत्पादये-त्सुधीः ॥ ८ ॥ पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ ९ ॥ एकोऽपि पुत्रो धर्मात्मा सर्वं तारयते कुलम्। पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १० ॥ इति वेदैरपि प्रोक्तं पुत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात् ॥ ११ ॥

कुल को तार देता है। "पुत्र से लोकों को जीत लेता है" यह सनातन श्रुति का मत है ॥ १० ॥ वेदों ने भी इसी प्रकार पुत्र का माहात्म्य कहा है। कारण यह है कि पुत्र का मुख देखकर मनुष्य पितरों के ऋण से छूट जाता है ॥ ११ ॥ और पौत्र का स्पर्श करके मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है तथा पुत्र पौत्र और प्रपौत्रों-

से मनुष्य यमलोकादि का उल्लंघन कर स्वर्गलोक को जाता है ॥ १२ ॥ ब्रह्मविधि से ब्याही स्त्री से उत्पन्न पुत्र स्वर्गादि ऊपर के लोकों में पहुँचाता है और संगृहीत (विना ब्याहे लाई हुई) स्त्री से उत्पन्न पुत्र अधोगति (नरक) को पहुँचाता है। हे गरुड़ ! ऐसा समझकर हीनजाति के पुत्रों का त्याग करे ॥ १३ ॥

पौत्रस्य स्पर्शनान्मर्त्यो मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥ १२ ॥ ब्राह्मोढापुत्रोन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत् । एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतांस्त्यजेत् ॥ १३ ॥ सवर्णेभ्यः सवर्णासु ये पुत्रा औरसाः खग । त एव श्राद्धदानेन पितॄणां स्वर्गहेतवः ॥ १४ ॥ श्राद्धेन पुत्रदत्तेन स्वयातीति किमुच्यते । प्रेतोऽपि परदत्तेन गतः स्वर्गमथो शृणु ॥ १५ ॥ अत्रैवोदाहरिष्यहमितिहासं पुरातनम् । और्ध्वदेहिकदानस्य

सवर्ण स्त्री में सवर्ण पुरुष से उत्पन्न हुआ पुत्र औरस होता है। हे गरुड़ ! वही पुत्र श्राद्धदान से पितरों को स्वर्ग में पहुँचाने का कारण होता है ॥ १४ ॥ पुत्र के दिये हुए श्राद्ध से पिता स्वर्ग में जाता है यही क्या कहा है किन्तु दूसरे के दिये हुए श्राद्ध से प्रेत भी स्वर्ग में चला गया यह सुनो ॥ १५ ॥ इसी प्रसंग में मैं पुरातन

इतिहास को कहता हूँ जो और्ध्वदेहिक दान के बड़े माहात्म्य को सूचित करता है ॥ १६ ॥ हे गरुड़ ! पहले त्रेतायुग में बभ्रुवाहन नाम का राजा हुआ था । वह बड़ा बलवान् और धर्मिष्ठ था । तथा रमणीक महोदयपुर में रहता था ॥ १७ ॥ वह यज्ञ करनेवाला, दान देनेवाला, लक्ष्मीवाला, ब्रह्मण्य, साधुवत्सल, शील, आचार

परं माहात्म्यसूचकम् ॥ १६ ॥ पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजासीद् बभ्रुवाहनः । महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥ १७ ॥ यज्वा दानपतिः श्रीमान्ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः । शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥ १८ ॥ पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान्दण्डयन्नृपः ॥ १९ ॥ स कदाचिन्महाबाहुः ससैन्यो मृगयां गतः । वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम् ॥ २० ॥ नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षि-

और गुणों से तथा दया और चतुराई से युक्त था ॥ १८ ॥ वह राजा अपने पुत्रों के समान धर्म से प्रजा का पालन करता था तथा नित्य क्षत्रियधर्म में तत्पर हो दण्ड के योग्यों को दण्ड देता था ॥ १९ ॥ वह महाबाहु राजा किसी समय सेना लेकर शिकार खेलने के लिए अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त गहन वन में गया ॥ २० ॥

वह वन अनेक प्रकार के मृग-समूहों से भरा था उसमें बहुत प्रकार के पक्षी बोल रहे थे। उस वन में राजा ने दूर से एक मृग को देखा ॥ २१ ॥ उस राजा ने बड़े दृढ़ बाण से उस मृग को बींध दिया। वह उस बाण को लेकर वन में छिप गया ॥ २२ ॥ राजा भी रुधिर से गीले मार्ग से उस मृग के पीछे-पीछे गया। और

निनादितम्। वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत ॥ २१ ॥ तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च। बाणमादाय तं तस्य वनेऽदर्शनमेयिवान् ॥ २२ ॥ कक्षेण रुधिरार्द्रेण स राजाऽनुजगाम तम्। ततो मृगप्रसंगेन वनमन्यद्विवेश सः ॥ २३ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसंतापमूर्च्छितः। जलाशयं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत ॥ २४ ॥ पपौ तदुदकं शीतं पद्मगन्धादिवासितम्। ततोऽवतीर्य सलिलाद्विश्रमो बभ्रुवाहनः ॥ २५ ॥ ददर्श

मृग के प्रसंग से उस वन से दूसरे वन में चला गया ॥ २३ ॥ भूख से दुर्बल कण्ठ और श्रम के संताप से मूर्च्छित राजा ने तालाब को पाकर घोड़े सहित उसमें स्नान किया ॥ २४ ॥ कमल आदि फूलों की सुगन्ध से वासित उस शीतल जल को पीकर बभ्रुवाहन राजा श्रम से रहित हो जल से बाहर निकला ॥ २५ ॥ वहाँ

उसने शीतल छायावाले सुन्दर वटवृक्ष को देखा। उसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ दूर तक फैल रही थीं। उस पर पक्षियों का समूह कोलाहल मचा रहा था ॥ २६ ॥ वह वृक्ष क्या था मानो उस संपूर्ण वन की ध्वजा थी। उसी की जड़ के सहारे जाकर राजा बैठ गया ॥ २७ ॥ इसके बाद राजा ने भूख-प्यास से व्याकुल प्रेत को

न्यग्रोधतरुं शीतच्छायंमनोहरम्। महाविटपविस्तीर्णं पक्षिसङ्घनिनादितम् ॥ २६ ॥ वनस्य तस्य सर्वस्य महाकेतुमिव स्थितम्। मूलं तस्य समासाद्य निषसाद महीपतिः ॥ २७ ॥ अथ प्रेतं ददर्शासौ क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलेन्द्रियम्। उत्कचं मलिनं कुब्जं निर्मांसं भीमदर्शनम् ॥ २८ ॥ तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः। प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तं घोरामटवीमागतं नृपम् ॥ २९ ॥ समुत्सुकमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागतः। अब्रवीत्स तदा

देखा। उसके ऊँचे उठे बाल थे, मलिन वेष था, वह कुबड़ा, मांसरहित देह और देखने में भयंकर था ॥ २८ ॥ बभ्रुवाहन राजा उस घोर विकराल प्रेत को देखकर बड़ा विस्मित हुआ। प्रेत भी घोर वन में आये हुए राजा को देखकर विस्मित हुआ ॥ २९ ॥ हे गरुड़ ! वह प्रेतराज उत्कंठित मन हो उस राजा के पास जाकर यह कहने

लगा ॥ ३० ॥ हे महाबाहो ! तुम्हारे संयोग से मेरा प्रेतत्व छूट गया और मैं उत्तम गति को पाकर धन्य हो गया हूँ ॥ ३१ ॥ राजा बोले—हे काले रूपवाले और कराल मुखवाले ! तुमने किस कर्म के फल से अमंगलरूप, देखने में भयंकर प्रतत्व को पाया है ? ॥ ३२ ॥ हे तात ! अपने प्रेतत्व के संपूर्ण कारण को कहो कि तुम

ताक्ष्यं प्रेतराजो नृपं वचः ॥ ३० ॥ प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् । त्वत्संयोगान्महाबाहो जातो धन्यतरोऽस्म्यहम् ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णवर्णकरालास्य प्रेतत्वं घोरदर्शनम् । केन कर्मविपाकेन प्राप्तं ते बह्व-मंगलम् ॥ ३२ ॥ प्रेतत्वकारणं तात ब्रूहि सर्वमशेषतः । कोऽसि त्वं केन दानेन प्रेतत्वं ते विनश्यति ॥ ३३ ॥ प्रेत उवाच ॥ कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्व-मेवादितस्तव । प्रेतत्वकारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ३४ ॥ वैदेशं नाम

कौन हो और तुम्हारा यह प्रेतत्व किस दान से नाश होगा ॥ ३३ ॥ प्रेत बोला—हे राजाओं में श्रेष्ठ ! आदि से लेकर संपूर्ण कारण आपसे कहता हूँ । मेरे प्रेतपने के कारण को सुनकर आपको मुझ पर दया करनी चाहिए ॥ ३४ ॥ सब प्रकार की सम्पत्ति से युक्त वैदेश नाम नगर है । वह अनेक प्रकार के जनों से और

अनेक रत्नों से भरा हुआ है ॥ ३५ ॥ तथा हवेली और महलों की शोभा से युक्त है । जहाँ अनेक धर्म होते रहते हैं वहीं हे राजन् ! मैं बसता था और सदा देवताओं का पूजन किया करता था ॥ ३६ ॥ आपको मालूम रहे कि मैं जाति का बनिया था और सुदेव मेरा नाम था । मैंने हव्य से देवताओं को और कव्य से पितरों

नगरं सर्वसंपत्समन्वितम् । नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥ ३५ ॥ हर्म्यप्रासादशोभाढ्यं नानाधर्मसमन्वितम् । तत्राहं न्यवसन्तात देवार्चनरतः सदा ॥ ३६ ॥ वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते । हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस्तथा ॥ ३७ ॥ विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पिता मया । दीनान्धकृपणेभ्यश्च दत्तमन्नमनेकधा ॥ ३८ ॥ तत्सर्वं निष्फलं

को तृप्त किया था ॥ ३७ ॥ मैंने अनेक प्रकार के दान आदि से ब्राह्मणों को तृप्त किया था और अनेक बार दीन, अन्धे और गरीबों को दान दिया था ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! यह सब मेरे भाग्य से निष्फल हो गया ।

जिस कारण से मेरा सुकृत निष्फल हो गया वह आपसे कहता हूँ ॥ ३९ ॥ मेरे न तो संतान थी और न प्यारे भाई-बन्धु ही थे। ऐसा कोई मेरा मित्र भी नहीं था जो और्ध्वदेहिक (पारलौकिकी) क्रिया करता ॥ ४० ॥ हे महाराज ! जिसके मासिक सोलह श्राद्ध नहीं होते हैं उसका सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी प्रेतत्व नहीं छूटता

राजन् मम दैवादुपागतम्। यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद्वदामि ते ॥३८॥ ममैव संततिर्नास्ति न सुहृन्न च बान्धवः। न च मित्रं हि मे तादृग्यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम ॥ ४० ॥ यस्य न स्यान्महाराज श्राद्धं मासिकषोडशम्। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ ४१ ॥ त्वमौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मामुद्धर महीपते। वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते ॥ ४२ ॥ तन्मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते। यथा मे सद्गतिर्भूयात्प्रेतयोनिश्च

है। वह प्रेत बना रहता है ॥ ४१ ॥ हे पृथ्वीपते ! आप और्ध्वदेहिक करके मेरा उद्धार कीजिए। क्योंकि इस लोक में सब वर्णों का बन्धु राजा ही कहा जाता है ॥ ४२ ॥ इसलिए हे राजेन्द्र ! मेरा उद्धार कीजिए। मैं

आपको उत्तम मणि देता हूँ। हे वीर! जिससे मेरी उत्तम गति हो और प्रेतयोनि छूट जाय वही उपाय तुमको करना चाहिए यदि मेरा प्रिय करना चाहते हो तो। भूख और प्यास आदि दुःखों से मुझे यह प्रेतत्व दुस्सह है ॥ ४३-४४ ॥ इस वन में सुंदर शीतल जल और स्वादिष्ट फल हैं परन्तु भूख और प्यास से व्याकुल

गच्छति ॥ ४३ ॥ तथा कार्यं त्वया वीर मम चेदिच्छसि प्रियम्। क्षुधातृषादिभिर्दुःखैः प्रेतत्वं दुःसहं मम ॥ ४४ ॥ स्वादूदकं फलं चास्ति वनेऽस्मिञ्छीतलं शिवम्। न प्राप्नोमि क्षुधार्तोऽहं तृषार्तो न जलं क्वचित् ॥ ४५ ॥ यदि मे हि भवेद्राजन्विधिर्नारायणो महान्। तदग्रे वेदमन्त्रैश्च क्रिया सर्वौर्ध्वदेहिकी ॥ ४६ ॥ तदा नश्यति मे नूनं प्रेतत्वं नात्र संशयः। वेदा मन्त्रा-

मुझको न फल ही मिलते हैं और न कहीं जल ही मिलता है ॥ ४५ ॥ हे राजन्! यदि मेरे लिए विधिपूर्वक नारायणबलि हो और उसी के आगे वेदमंत्रों से औध्र्वदेहिक क्रिया हो ॥ ४६ ॥ तो निश्चय ही मैं प्रेतत्व से छूट जाऊँ। इसमें संशय नहीं है। वेद के मन्त्र, तप, दान, सब प्राणियों पर दया, अच्छे शास्त्रों का सुनना,

भगवान् की पूजा और सज्जनों की संगति ये सब प्रेतयोनि को नष्ट करनेवाले हैं। ऐसा मैंने सुना है ॥ ४७-४८ ॥ इसलिए प्रेतत्व का नाश करनेवाली विष्णुजी की पूजा (नारायणबलि की विधि) को तुमसे कहता हूँ। हे राजन् ! न्याय से संचित किया हुआ दो मासा सोना लाकर उससे भगवान् की एक मूर्ति

स्तपो दानं दया सर्वेषु जन्तुषु ॥ ४७ ॥ सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसंगतिः। प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम् ॥ ४८ ॥ अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम्। सुवर्णद्वयमानीय सुवर्णं न्यायसंचितम्। तस्य नारायणस्यैकां प्रतिमां भूप कल्पयेत् ॥ ४९ ॥ पीतवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वाभरणभूषिताम्। स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य यजेत्ततः ॥ ५० ॥ पूर्वे तु श्रीधरं तस्या दक्षिणे मधुसूदनम्। पश्चिमे वामनं

बनवावे ॥ ४९ ॥ फिर उसको पंचामृत-गंगाजल आदि से स्नान कराकर पीले रेशमी दो वस्त्रों से आच्छादित करे और सब प्रकार के आभूषणों से भूषित कर सिंहासन पर बैठावे फिर उसका पूजन करे ॥ ५० ॥ फिर पूर्व में श्रीधर, दक्षिण में मधुसूदन, पश्चिम में वामन, उत्तर में गदाधर तथा मध्य में ब्रह्मा और शिवजी को

स्थापन कर विधिपूर्वक गन्धपुष्प आदि से अलग-अलग सबकी पूजा करे ॥ ५१-५२ ॥ फिर प्रदक्षिणा करके अग्नि में देवताओं को तृप्त करे (अर्थात् होम करे) फिर घी, दही और दूध से विश्वेदेवों का तर्पण

देवमुत्तरे च गदाधरम् ॥ ५१ ॥ मध्ये पितामहं चैव तथा देवं महेश्वरम् । पूजयेच्च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक् ॥ ५२ ॥ ततः प्रदक्षिणी कृत्य वह्नौ संतर्प्य देवताः । घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवांश्च तर्पयेत् ॥ ५३ ॥ ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः । नारायणाग्रे विधिवत्स्वां क्रिया-मौर्ध्वदेहिकीम् ॥ ५४ ॥ आरभेत यथाशास्त्रं क्रोधलोभविवर्जितः । कुर्या-च्छ्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥ ५५ ॥ ततः पदानि विप्रेभ्यो

करे ॥ ५३ ॥ इसके बाद सावधानी से यजमान विनम्र हो भगवान् के आगें अपनी और्ध्वदेहिक क्रिया ॥ ५४ ॥ शास्त्रानुसार प्रारंभ करे । क्रोध और लोभ को त्यागकर फिर संपूर्ण श्राद्ध और बृषोत्सर्ग करे ॥ ५५ ॥ तत्प-

श्चात् ब्राह्मणों को तेरह पद देवे। फिर शय्यादान देकर घटदान करे ॥ ५६ ॥ राजा पूछते हैं कि हे प्रेत ! घटदान किस विधि से करना चाहिए और किसको देना चाहिए। सब पर दया कर प्रेत की मुक्ति के लिए घटविधान को कहिए ॥ ५७ ॥ प्रेत कहने लगा कि हे महाराज ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। जिस

दद्याच्चैव त्रयोदश। शय्यादानं प्रदत्त्वा च घटं प्रेतस्य निर्वपेत् ॥ ५६ ॥ राजोवाच ॥ कथं प्रेतघटं कुर्याद्दद्यात्केन विधानतः। ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम् ॥ ५७ ॥ प्रेत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज कथयामि निबोध ते। प्रेतत्वं न भवेद्येन दानेन सुदृढेन च ॥ ५८ ॥ दानं प्रेतघटं नाम सर्वाशुभविनाशनम्। दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम् ॥ ५९ ॥ संतप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः। क्षीराज्य-

दान से प्रेतयोनि छूट जाती है वह तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ ५८ ॥ प्रेतघट का दान सब अशुभों का नाशक है तथा सब लोगों की दुर्गति का क्षय करनेवाला और दुर्लभ है ॥ ५९ ॥ अच्छे प्रकार तपाये हुए सोने का

कलश बनाकर उस पर लोकपालों के सहित ब्रह्मा, शिव और भगवान् की मूर्ति स्थापन करे और उसको दूध और घी से भरकर भक्ति के साथ प्रणाम कर ब्राह्मण को देवे तो अन्य सैंकड़ों दानों से क्या है ? ॥ ६० ॥ उस घट के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु और कल्याणकारक शंकर अविनाशी को स्थापित करे तथा उसके गले पर पूर्वादि दिशाओं में क्रम से दश दिक्पालों को स्थापित करे ॥ ६१ ॥ फिर हे राजन् ! विधिपूर्वक फूल, चन्दन

पूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ॥ ६० ॥ ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शङ्करः शङ्करोऽव्ययः । प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे लोकपालान् क्रमेण तु ॥ ६१ ॥ संपूज्य विधिवद्राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः । ततो दुग्धाज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम् ॥ ६२ ॥ सर्वदानाधिकं चैतन्महापातकनाशनम् । कर्तव्यं श्रद्धया राजन् प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥ ६३ ॥

और धूप आदि से उसका पूजन कर दूध-घी से भरे उस सोने के घट का दान करे ॥ ६२ ॥ यह घटदान सब दानों से अधिक और महापातक नाश करनेवाला है। हे राजन् ! प्रेतत्व छुड़ाने के लिए श्रद्धा से घटदान करना चाहिए ॥ ६३ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! इस प्रकार प्रेत के साथ राजा वार्तालाप कर ही

रहे थे कि इतने में हाथी, घोड़ा और रथों से युक्त उसकी सेना भी आ गई ॥ ६४ ॥ सेना के आ जाने पर वह प्रेत राजा को महामणि देकर और फिर प्रार्थना तथा नमस्कार करके छिप गया ॥ ६५ ॥ राजा भी उस वन से निकलकर अपने नगर को चला गया और नगर में आकर उस राजा ने प्रेत की कही हुई सम्पूर्ण

श्रीभगवानुवाच ॥ एवं संजल्पतस्तस्य प्रेतेन सह काश्यप । सेनाजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला ॥ ६४ ॥ ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम् । नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमेयिवान् ॥ ६५ ॥ तस्माद्वनाद्विनिष्क्रम्य राजापि स्वपुरं ययौ । स्वपुरं च समासाद्य तत्सर्वं प्रेतभाषितम् ॥ ६६ ॥ चकार विधिवत्पक्षिन्नौर्ध्वदेहिकजं विधिम् । तस्य पुण्य प्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ ॥ ६७ ॥ श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम् । किं पुनः

और्ध्वदेहिक विधि को विधानपूर्वक किया । हे गरुड़ ! उस पुण्यदान से वह प्रेत मुक्त होकर स्वर्ग में चला गया ॥ ६६-६७ ॥ दूसरे के दिये हुए श्राद्ध से प्रेत भी उत्तम गति को पा गया फिर पुत्र के दिये हुए श्राद्ध-

दान से पिता की उत्तम गति हो जाना कौन-सी न आश्चर्य की बात है ॥ ६८ ॥ इस पुण्यदायक इतिहास को जो कोई सुनता है और जो कोई सुनाता है वे दोनों पापी होकर भी प्रेत नहीं होते हैं अर्थात् इसके पढ़ने और सुनने से पापी भी प्रेतत्व से छूट जाता है ॥ ६९ ॥ गरुड़पुराण का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

पुत्रदत्तेन पिता यातीति चाद्भुतम् ॥ ६८ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः। न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि ॥ ६९ ॥ इति श्रीगरुड-पुराणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

गरुड उवाच ॥ आमुष्मिकीं सुकृतिनां क्रियां सर्वां वदस्व मे। कर्तव्या सा यथा पुत्रैस्तथा च कथय प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया

गरुड़जी कहते हैं कि हे प्रभो ! सुकृतियों के इस लोक की संपूर्ण क्रिया को मुझसे कहिए ; जिस प्रकार पुत्रों द्वारा करनी चाहिए वह विधि कहिए ॥ १ ॥ भगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! आपने मनुष्यों के हित

के लिए बहुत अच्छा प्रश्न किया। धर्मात्मा लोगों के लिए जो यहाँ कर्तव्य है वह सब तुमसे कहता हूँ ॥ २ ॥ सुकृती लोगों को चाहिए कि वृद्धावस्था में अपने शरीर को रोगों से ग्रसित देखकर तथा ग्रहों को अपने प्रतिकूल समझकर और प्राण के शब्द को न सुनकर (अर्थात् कान बन्द करने पर जो शब्द सुनाई देता है

तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। धार्मिकार्हं च यत्कृत्यं तत्सर्वं कथयामि ते ॥ २ ॥ सुकृती वार्धके दृष्ट्वा शरीरं व्याधिसंयुतम्। प्रतिकूलान् ग्रहांश्चैव प्राणघोषस्य चाश्रुतिम् ॥ ३ ॥ तदा स्वमरणं ज्ञात्वा निर्भयः स्यादतन्द्रितः। अज्ञातज्ञातपापानां प्रायश्चितं समाचरेत् ॥ ४ ॥ यदा स्यादातुरः कालस्तदा स्नानं समारभेत्। पूजनं कारयेद्विष्णोः शालग्रामस्वरूपिणः ॥ ५ ॥ अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च कुंकुमैस्तुलसीदलैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बहुभिर्मोदका-

वह न सुनाई देने पर) पर जान ले कि अवश्य मरूँगा तब निर्भय होकर जानकारी में और विना जानकारी में किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करे ॥ ३-४ ॥ जब मरने का आतुरकाल आवे तब स्नान करके शालग्रामरूपी विष्णुजी का पूजन करावे ॥ ५ ॥ गन्ध, पुष्प, कुंकुम, तुलसीदल, धूप, दीप और बहुत से लड्डुओं की नैवेद्य

से पूजन करे ॥ ६ ॥ नैवेद्य से ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा दे और अष्टाक्षर मन्त्र का या द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करे ॥ ७ ॥ तथा विष्णु और शिवजी के नाम को जपे तथा श्रवण करे। क्योंकि भगवान् का नाम कानों में सुनाई देने से पापों को नष्ट करता है ॥ ८ ॥ भाई-बन्धुओं को चाहिए कि मरने के समय

दिभिः ॥ ६ ॥ दत्त्वा च दक्षिणां विप्रान्नैवेद्यादेव भोजयेत्। अष्टाक्षरं जपेन्मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च ॥ ७ ॥ संस्मरेच्छृणुयाच्चैव विष्णोर्नाम शिवस्य च। हरेर्नाम हरेत्पापं नृणां श्रवणगोचरम् ॥ ८ ॥ रोगिणोऽन्तिकमासाद्य शोचनीयं न बान्धवैः। स्मरणीयं पवित्रं मे नामधेयं मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव

उसके पास जाकर सोच न करें तथा मेरे (भगवान् के) पवित्र नाम को बार-बार स्मरण करें ॥ ९ ॥ मत्स्य, कूर्म (कच्छपावतार), वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्की इन दश नामों

को बुद्धिमान् सदा स्मरण करे। वे ही बन्धु कहे जाते हैं जो रोगी के पास जाकर इन नामों का उच्चारण करते हैं ॥१०-११॥ जिसकी वाणी में कृष्ण का मंगलमय नाम रहता है उसके करोड़ों महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥ मरते समय पुत्र को बुलाने के लिए भगवान् का नाम लेता हुआ अजामिल भी वैकुण्ठ-

च ॥ १० ॥ एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः। समीपे रोगिणो ब्रूयुर्बान्धवास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥ कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। तस्य भस्मीभवन्त्याशु महापातककोटयः ॥ १२ ॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पत्रोपचारितम्। अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ १३ ॥ हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥ १४ ॥ हरेर्नाम्नश्च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज।

धाम में चला गया तो जो श्रद्धा से भगवान् का नाम लेते हैं उनका क्या कहना है ॥ १३ ॥ जैसे विना इच्छा के अकस्मात् छुआ हुआ अग्नि जला देता है इसी प्रकार दुष्टचित्त पापियों से स्मरण किया हुआ भगवान् का नाम पापों को जला देता है ॥ १४ ॥ हे पक्षिराज गरुड़ ! हरि भगवान् के नाम में पाप नष्ट करने की

जितनी शक्ति है पापी मनुष्य उतने पाप करने को समर्थ नहीं है ।। १५ ।। दूतों से यमराज कहा करते हैं कि नास्तिक मनुष्य को यहाँ लाया करो परन्तु भगवान् के नाम स्मरण करनेवाले को भूलकर भी न लाया करो ।। १६ ।। क्योंकि मैं अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव,

तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः ॥ १५ ॥ किङ्करेभ्यो यमः प्राहा-
नयध्वं नास्तिकं जनम् । नैवानयत भो दूता हरिनामस्मरं नरम् ॥ १६ ॥
अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् । श्रीधरं माधवं
गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ १७ ॥ कमलनयन वासुदेव
विष्णो धरणिधराच्युत शंखचक्रपाणे । भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज
भट दूरतरेण तानपापान् ॥ १८ ॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादा-

गोपीवल्लभ और जानकीनायक श्रीरामचन्द्र को भजता हूँ ।। १७ ।। हे दूतो ! जो कमलनयन, वासुदेव, विष्णु, धरणीधर, अच्युत, शंखचक्रपाणि और भवशरण ऐसा उच्चारण करते हैं उन पापरहित मनुष्यों को दूर ही से त्याग दो अर्थात् उन हरिभक्त धर्मात्माओं के पास भूलकर भी मत जाओ ।। १८ ।। अकिञ्चन और

भगवद्भक्तिरस के जाननेवाले परमहंसकुलों से सदा सेवित श्रीभगवान् के चरणकमल के परागरस से विमुख तथा नरक के मार्ग में तृष्णा रखनेवाले असज्जनों को यहाँ लाना ॥ १९ ॥ जिसकी जीभ भगवान् के नाम और गुणों को नहीं कहती है और जिसका चित्त भगवान् के चरणारविन्दों का स्मरण नहीं करता तथा

रविन्दमकरन्दरसादजस्रम् । निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे
निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥ १९ ॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् । कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥ २० ॥ तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जग-
न्मंगलमंहसाम् । महतामपि पक्षीन्द्र विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥ २१ ॥
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपरांमुखम् । न निष्पुनन्ति दुर्बुद्धिं

जिसका शिर भगवान् के लिए कभी नहीं झुकता उन भगवत्सेवा से विमुख असज्जनों को यहाँ लाओ ॥ २० ॥ हे पक्षिराज गरुड़ ! इस कारण से जगत् में मंगलरूप भगवान् का कीर्तन बड़े भारी पापों का एक ही प्रायश्चित्त है ॥ २१ ॥ भगवान् से विमुख दुष्टबुद्धिवाले को किये हुए प्रायश्चित्त भी पवित्र नहीं कर सकते

हैं जैसे मदिरा के घड़े को गंगा आदि नदी पवित्र नहीं करती हैं ॥ २२ ॥ कृष्ण भगवान् के नाम लेने से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं वे नरक, यमराज और यम के दूतों को कभी स्वप्न में भी नहीं देखते हैं ॥ २३ ॥ जो अन्त समय में ब्राह्मण को गोदान करता है वह मांस, हड्डी और रक्त से पूरित वैतरणी में नहीं पड़ता है। इसी प्रकार अन्त समय में जो दाँतों से नन्दनन्दन यह वाणी कहता है अर्थात् कृष्ण का नाम उच्चारण करता है

सुराकुम्भमिवापगाः ॥ २२ ॥ कृष्णनाम्ना न नरकं पश्यन्ति गतकिल्बिषाः। यमं च तद्भटांश्चैव स्वप्नेऽपि न कदाचन ॥ २३ ॥ मांसास्थिरक्तवत्काये वैतरण्यां पतेन्न सः। योऽन्ते दद्याद् द्विजेभ्यश्च नन्दनन्दनगामिति ॥ २४ ॥ अतः स्मरेन्महाविष्णोर्नाम पापौघनाशनम्। गीता सहस्रनामानि पठेद्वा शृणुयादपि ॥ २५ ॥ एकादशीव्रतं गीता गंगाम्बु तुलसीदलम्। विष्णोः

वह मांस, हड्डी और रक्त से पूरित काया (शरीर) रूपी वैतरणी में नहीं गिरता है अर्थात् वह फिर शरीर नहीं धारण करता किन्तु मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ इसलिए पापसमूह के नाशक विष्णुजी के नामों का स्मरण करे और भगवद्गीता तथा विष्णुसहस्रनाम का पाठ करे अथवा श्रवण करे ॥ २५ ॥

एकादशी का व्रत, गीता, गंगाजल, तुलसीदल, भगवान् का चरणामृत और भगवान् के नाम ये मरणसमय में मुक्ति के दाता हैं ॥ २६ ॥ तदनन्तर घृत और सुवर्ण के साथ अन्न का संकल्प करे और वेदपाठी ब्राह्मण के लिए बछड़ासहित गौ का दान करे ॥ २७ ॥ अन्त समय में जो मनुष्य थोड़ा या बहुत जो कुछ दान देता है

पादाम्बुनामानि मरणे मुक्तिदानिच ॥ २६ ॥ ततः संकल्पयेदन्नं सघृतं च सकाञ्चनम् । सवत्सा धेनवो देयाः श्रोत्रियाय द्विजातये ॥ २७ ॥ अन्ते जनो यद्ददाति स्वल्पं वा यदि वा बहु । तदक्षयं भवेत्तार्क्ष्य यत्पुत्रश्चानुमोदते ॥ २८ ॥ अन्तकाले तु सत्पुत्रः सर्वदानानि दापयेत् । यत्तदर्थं सुतो लोके प्रार्थ्यंते धर्मकोविदैः ॥ २९ ॥ भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा अर्धोन्मीलित-

हे गरुड़ ! वह अक्षय हो जाता है और जो पुत्र पिता के लिए दान देता है वह भी अक्षय होता है ॥ २८ ॥ अन्त समय में सत्पुत्र को चाहिए कि पिता से सब दान दिलवावे। इसी समय के लिए धर्मज्ञ संसार में पुत्र की चाहना करते हैं ॥ २९ ॥ आधी आँख मीचे भूमि में पड़े हुए पिता को देखकर पुत्र को पिता के पूर्वसंचित

धन में तृष्णा न करनी चाहिए ॥ ३० ॥ जो सत्पुत्र पिता के लिए श्राद्धादि दान करता है उससे जब तक वह जीता है तब तक परलोक में जानेवाला प्राणी पूर्वोक्त मार्ग का दुःख नहीं पाता है ॥ ३१ ॥ आतुरसमय (मरणसमय) में और ग्रहण होते समय इन दोनों समयों में जो दान दिया जाता है वह विशेष फलदायक

लोचनम् । पुत्रैरतृष्णा न कर्तव्या तद्धने पूर्वसंचिते ॥ ३० ॥ स तद्ददाति सत्पुत्रो यावज्जीवत्यसौ चिरम् । अतिवाहस्तु तान्मार्गे दुःखं न लभते यतः ॥ ३१ ॥ आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशिष्यते । अतोऽवश्यं प्रदातव्यमष्टदानं तिलादिकम् ॥ ३२ ॥ तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासो लवणं तथा । सप्तधान्यं क्षितिर्गावो ह्येकैकं पावनं स्मृतम् ॥ ३३ ॥ एतदष्ट महा-

होता है इसलिए तिलादि अष्टदान अवश्य देना चाहिए ॥ ३२ ॥ वे अष्टदान ये हैं—१ तिल, २ लोह, ३ सोना, ४ कपास (रुई), ५ नमक, ६ सतनजा, ७ भूमि और ८ गौ । इनमें एक से एक पवित्र है ॥ ३३ ॥

महापापों के नाश करनेवाले ये आठ महादान अन्तकाल में देना चाहिए। इनका जो फल है उसे सुनिए ॥ ३४॥ मेरे पसीने से उत्पन्न तीन प्रकार के तिल पवित्र होते हैं। इन तिलों के दान से असुर, दानव और दैत्य तृप्त होते हैं ॥ ३५ ॥ तिल सफेद, काले और कपिल (भूरे) रंग के होते हैं। दान करने से ये तिल वचन, मन

दानं महापातकनाशनम्। अन्तकाले प्रदातव्यं शृणु तस्य च यत्फलम् ॥ ३४ ॥ मम स्वेदसमुद्भूताः पवित्रास्त्रिविधास्तिलाः। असुरा दानवा दैत्यास्तृप्यन्ति तिलदानतः ॥ ३५ ॥ तिलाः श्वेतास्तथा कृष्णा दानेन कपिलास्तिलाः। संहरन्ति त्रिधा पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥ ३६ ॥ लोहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना। यमसीमां न चाप्नोति न गच्छेत्तस्य वर्त्मनि ॥ ३७ ॥ कुठारो मुशलो दण्डः खड्गश्च छुरिका तथा। शस्त्राणि

और शरीर से संचित तीन प्रकार के पापों को नष्ट करते हैं ॥ ३६ ॥ धरती में हाथ लगाकर लोह का दान करने से प्राणी यम की सीमा में और यम के मार्ग में नहीं जाता है ॥ ३७ ॥ पापी मनुष्यों को दंड देने के

लिए यमराज के हाथ में कुठार (फरसा), मूसल, दंड, तलवार और छुरी ये शस्त्र रहते हैं ।। ३८ ।। इन्हीं यमराज के हथियारों की प्रसन्नता के लिए यह दान कहा है । इसी कारण से यमलोक में लोह का दान सुख देनेवाला है ।। ३९ ।। ऊरण, श्यामसूत्र, शुंडामर्क, उदुम्बर और शेषबल, ये महाबलवान् यमदूत लोहदान से

यमहस्ते च निग्रहे पापकर्मणाम् ॥ ३८ ॥ यमायुधानां संतुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम् । तस्माद्दद्याल्लोहदानं यमलोके सुखावहम् ॥ ३९ ॥ ऊरणः श्यामसूत्रश्च शुण्डामर्कोप्युदुम्बरः । शेषंबलो महाद्भुता लोहदानात्सुखप्रदाः ॥ ४० ॥ श्रृणु तार्क्ष्य परं गुह्यं दानानां दानमुत्तमम् । दत्तेन तेन तुष्यन्ति भूर्भुवःस्वर्गवासिनः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माद्या ऋषयो देवा धर्मराजसभासदः । स्वर्णदानेन सन्तुष्टा भवन्ति वरदायकाः ॥ ४२ ॥ तस्माद्देयं स्वर्ण-

सुख देनेवाले होते हैं ।। ४० ।। हे गरुड़ ! परमगुप्त सब दानों में उत्तम दान को सुनिए । दान के देने से भूमिलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक के निवासी सन्तुष्ट होते हैं ।। ४२ ।। ब्रह्मा आदि देवता, ऋषिलोग और धर्मराज की सभा के सभासद् ये सब सोना के दान से प्रसन्न और वरदायक होते हैं ।। ४२ ।। इससे प्रेत की

मुक्ति के लिए सोना का दान देना चाहिये । हे तात ! सोना के दान से यमलोक में न जाकर स्वर्गलोक में जाता है ॥ ४३ ॥ और बहुत दिन तक सत्यलोक में बसकर फिर इस लोक में राजा होता है तथा रूपवान् धर्मात्मा, बोलने में चतुर, लक्ष्मीवान् और बड़ा पराक्रमी होता है ॥ ४४ ॥ रुई के दान से दूतों का भय नहीं

दानं प्रेतोद्धरणहेतवे। न याति यमलोकं स स्वर्गतिं तात गच्छति ॥ ४३ ॥ चिरं वसेत्सत्यलोके ततो राजा भवेदिह। रूपवान् धार्मिको वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ४४ ॥ कार्पासास्य तु दानेन दूतेभ्यो न भयं भवेत्। लवणं दीयते यच्च तेन नैव भयं यमात् ॥ ४५ ॥ अयोलवणकार्पासतिल-काञ्चनदानतः। चित्रगुप्तादयस्तुष्टा यमस्य पुरवासिनः ॥ ४६ ॥ सप्तधान्य-

होता है और जो नमक का दान करता है उसको यमराज से भय नहीं होता है ॥ ४५ ॥ लोहा, नमक, रुई, तिल और सोना के दान से यमलोक में रहनेवाले चित्रगुप्त आदि प्रसन्न होते हैं ॥ ४६ ॥ सतनजा के दान

से धर्मध्वज तथा अन्य तीनों द्वारपाल भी प्रसन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ धान, जव, गेहूँ, मूंग, उड़द, कांकुन और सातवाँ चना ये सात धान्य कहे हैं ॥ ४८ ॥ सुपात्र को विधिपूर्वक*गोचर्म के बराबर पृथ्वी का दान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से छूटकर पवित्र हो जाता हैं । यह मुनीश्वरों ने (दिव्य दृष्टि से) देखा है ॥ ४९ ॥

प्रदानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत् । तुष्टा भवन्ति येऽन्येपि त्रिषु द्वारेष्वधिष्ठिताः ॥ ४७ ॥ व्रीहयो यवगोधूमा मुद्गा माषाः प्रियंगवः । चणकाः सप्तमा ज्ञेयाः सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥ ४८ ॥ गोचर्ममात्रं वसुधा दत्ता पात्रे विधानतः । पुनाति ब्रह्महत्याया दृष्टमेतन्मुनीश्वरैः ॥ ४९ ॥ न व्रतेभ्यो न तीर्थेभ्यो नान्यदानाद्विनश्यति । राज्ये कृतं महापापं भूमिदानाद्विलीयते ॥ ५० ॥ पृथिवीं सस्यसम्पूर्णां यो ददाति द्विजातये । स प्रयातीन्द्र-

राज्य में किया हुआ पाप व्रत, तीर्थयात्रा और अन्य दानों से नष्ट नहीं होता है किन्तु भूमिदान से नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥ जो मनुष्य धान्य से भरी हुई पृथ्वी ब्राह्मण को दान करता है वह देवता और दानवों से

* बैल के सहित सौ गौ जितनी भूमि पर बैठ सकें उतनी भूमि का ।

पूजित हो इन्द्रलोक में जाता है ॥ ५१ ॥ हे गरुड़ ! अन्य दान थोड़े फल देनेवाले होते हैं किन्तु पृथ्वीदान का फल दिन-दिन बढ़ता ही रहता है ॥ ५२ ॥ जो राजा होकर ब्राह्मण को पृथ्वी का दान नहीं देता है वह दूसरे जन्म में गाँव में कुटी भी नहीं पाता है और जन्म-जन्म में दरिद्री होता है ॥ ५३ ॥ राजा होने के

भुवने पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ ५१ ॥ अत्यल्पफलदानि स्युरन्यदानानि काश्यप । पृथिवीदानजं पुण्यमहन्यहनि वर्द्धते ॥ ५२ ॥ यो भूत्वा भूमिपो भूमिं नो ददाति द्विजातये । स नाप्नोति कुटीं ग्रामे दरिद्री स्याद्भवे भवे ॥ ५३ ॥ अदानाद्भूमिदानस्य भूपतित्वाभिमानतः । निवसेन्नरके यावच्छेषो धारयते धराम् ॥ ५४ ॥ तस्माद्भूमीश्वरो भूमिदानमेव प्रदापयेत् । अन्येषां भूमिदानार्थं गोदानं कथितं मया ॥ ५५ ॥ ततोऽन्तधेनुर्दा-

अभिमान से जो भूमि का दान नहीं करता है वह तब तक नरक में बसता है जब तक शेषजी पृथ्वी को धारण किये रहते हैं ॥ ५४ ॥ इसलिए भूमिपति को भूमि का दान देना चाहिए । अन्य लोगों के लिए भूमिदान की जगह मैंने गोदान कहा है ॥ ५५ ॥ इसके पश्चात् अन्तधेनु, रुद्रधेनु, ऋणधेनु, मोक्षधेनु और वैतरणीधेनु ये

पाँच प्रकार के गोदान विशेष विधि के साथ देने चाहिए। हे गरुड़ ! गौ का दान तीन प्रकार के पापों को
नष्ट करता है ॥ ५६-५७ ॥ बाल्यावस्था में, कुमार अवस्था में, यौवनावस्था (तरुणावस्था) में, बुढ़ापे में
और जन्मान्तरों में जो-जो पाप किये हैं ॥ ५८ ॥ तथा रात्रि में, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न और दोनों

तव्या रुद्रधेनुं प्रदापयेत्। ऋणधेनुं ततो दत्त्वा मोक्षधेनुं प्रदापयेत् ॥ ५६ ॥
दद्याद्वैतरणीं धेनुं विशेषविधिना खग। तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव
पातकात् ॥ ५७ ॥ बालत्वे यच्च कौमारे यत्पापं यौवने कृतम। वयःपरिणतौ
यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि ॥ ५८ ॥ यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्ना-
पराह्नयो । संध्ययोर्यत्कृतं पापं कायेन मनसा गिरा ॥ ५९ ॥ दत्त्वा
धेनुं सकृद्वापि कपिलां क्षीरसंयुताम् । सोपस्करां सवत्सां च तपोवृत्त-

सन्धियों (उदयास्तकाल) में जो शरीर से, मन से या वाणी से, पाप किये हैं ॥ ५९ ॥ वे सब पाप तपस्वी
और वेद के जाननेवाले ब्राह्मण को सब सामग्रीसहित सवत्सा, दूधवाली कपिला गौ का एक बार दान देने से

नष्ट होते हैं। वह गौ का दान अन्तकाल में दाता को पापों से छुड़ाता है ॥ ६०-६१ ॥ स्वस्थचित्त से एक गौदान देने से जो फल होता है वही आतुरसमय में सौ गौ देने से तथा मरते समय बेहोशी की हालत में हजार गौ के देने से होता है ॥ ६२ ॥ तथा मरने के बाद विधिपूर्वक लाख गौ देने से वही फल होता है।

समन्विते ॥ ६० ॥ ब्राह्मणे वेदविदुषे सर्वपापैः प्रमुच्यते। उद्धरेदन्तकाले स दातारं पापसंचयात् ॥ ६१ ॥ एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यातुरस्य च गोशतम्। सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम् ॥ ६२ ॥ मृतस्यैतत्पुनर्लक्षं विधिपूतं च तत्समम्। तीर्थपात्रसमोपेतं दानमेकं च लक्षधा ॥ ६३ ॥ पात्रे दत्तं च यद्दानं तल्लक्षगुणितं भवेत्। दातुः फलमनन्तं स्यान्न पात्रस्य प्रतिग्रहः ॥ ६४ ॥ स्वाध्यायहोमसंयुक्तः परपात्रविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं

तीर्थ में सत्पात्र को एक गौ देने से लाख गोदान का फल होता है ॥ ६३ ॥ सुपात्र को जो दान दिया जाता है वह लाख गुना हो जाता है। सत्पात्र को दान लेने का दोष नहीं होता है और दाता को अनन्त फल होता है ॥ ६४ ॥ जो ब्राह्मण वेदपाठ और नित्य होम करनेवाला है तथा दूसरे का बनाया नहीं खाता है वह रत्नों

से भरी पृथ्वी का दान लेकर भी प्रतिग्रह के दोष से लिप्त नहीं होता है ।। ६५ ।। विष और शीत को नाश करनेवाले मन्त्र और अग्नि क्या कभी दोष के भागी होते हैं ? वही गौ अपात्र को देने से दाता को नरक में पहुँचाती है ।। ६६ ।। तथा लेनेवाले के सौ कुलों को नरक में गिराती है । अपना कल्याण चाहनेवाला विद्वान्

प्रतिगृह्य न लिप्यते ॥ ६५ ॥ विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभागिनौ । अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत् ॥ ६६ ॥ कुलैकशतसंयुक्तं ग्रहीतारं तु पातयेत् । नापात्रे विदुषा देया ह्यात्मनः श्रेय इच्छता ॥ ६७ ॥ एका ह्येकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन । सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं ह्युलम् ॥ ६८ ॥ कथिता या मया पूर्वं तव वैतरणी नदी । तस्या ह्युद्धरणोपायं गोदानं कथयामि ते ॥ ६९ ॥ कृष्णां वा पाटलां वापि धेनुं कुर्यादलं-

कुपात्र को गोदान न दे ।। ६७ ।। एक गौ एक ही को देना चाहिए, बहुतों को एक गौ कभी न दे । वह बेची हुई या बाँटी हुई गौ सात पीढ़ी तक कुल को भस्म करती है ।। ६८ ।। मैंने तुमसे पहले जो वैतरणी नदी कही थी उससे पार उतारनेवाला गोदान तुमसे कहता हूँ ।। ६९ ।। काली अथवा लाल वर्ण की गौ को सोने के

सींग, चाँदी के खुर और आभूषण आदि से सजावे तथा काँसी की दोहनी हो ॥ ७० ॥ उस गौ पर दो काले वस्त्र उढ़ावे और गले में घंटा बाँधे। फिर रुई पर वस्त्रसहित ताँबा का कलश स्थापन करे ॥ ७१ ॥ उस पर लोह के दंडसहित यमराज की सोने की मूर्ति तथा घी से भरा हुआ काँसी (फूल) का कटोरा स्थापन करे ॥७२॥

कृताम्। स्वर्णशृगीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रोपदोहिनीम् ॥ ७० ॥ कृष्णवस्त्र-युगच्छन्नां कण्ठघण्टासमन्विताम्। कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रं सचैलकम् ॥ ७१ ॥ यमं हैमं न्यसेत्तत्र लोहदण्डसमन्वितम्। कांस्यपात्रे घृतं कृत्वा सर्वं तस्योपरि न्यसेत् ॥७२॥ नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्। गर्तं विधाय सजलं कृत्वा तस्मिन्क्षिपेत्तरीम् ॥ ७३ ॥ तस्योपरि स्थितां कृत्वा सूर्यदेहसमुद्भवाम्। धेनुं संकल्पयेत्तत्र यथाशास्त्रविधानतः ॥ ७४ ॥

ईख की नाव बनाकर उस पर रेशम के तागे लपेट दे और खोदे हुए गड्ढे में जल भरकर उसमें नाव को छोड़ दे ॥ ७३ ॥ सूर्य की देह से उत्पन्न गौ को उस पर खड़ी करके शास्त्र की विधि से संकल्प करे ॥ ७४ ॥

तथा ब्राह्मण को आभूषणों सहित वस्त्रों को देवे । और फूल, रोली और अक्षत आदि से विधिपूर्वक उसकी पूजा करे ॥ ७५ ॥ हाथ से गौ की पूँछ पकड़कर और पैर को नाव में रख ब्राह्मण को सामने खड़ा करके यह मंत्र पढ़े ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! हे शरणागतवत्सल भगवन् ! संसाररूपी सागर में डूबे हुए तथा शोक और संताप की

सालंकाराणि वस्त्राणि ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत् । पूजां कुर्याद्विधानेन पुष्पगन्धाक्षतादिभिः ॥ ७५ ॥ पुच्छं संगृह्य धेनोस्तु नावमाश्रित्य पादतः । पुरस्कृत्य ततो विप्रमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ७६ ॥ भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम् । त्राता त्वं हि जगन्नाथ शरणागतवत्सल ॥ ७७ ॥ विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर । सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः ॥ ७८ ॥ यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम् । तर्तुकामो ददा-

लहरियों से दुःखित मनुष्यों के तुम ही रक्षक हो ॥ ७७ ॥ हे विष्णुरूप, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, पृथ्वी के देवता ! दक्षिणा के साथ मैंने तुम्हें वैतरणी गौ दी है नमस्कार हैं ॥ ७८ ॥ यमलोक के मार्ग से सौ योजन चौड़ी

महाभयंकर वैतरणी नदी से पार उतरने के लिए तुम्हें यह वैतरणी गौ देता हूँ। नमस्कार है ॥ ७९ ॥ हे धेनुके ! हे देवेशि ! यमराज के बड़े मार्ग में मुझे तारने के लिए मेरी राह देखना। वैतरणीरूप तुमको नमस्कार है ॥ ८० ॥ गौवें मेरे आगें हो, गौवें मेरी पीठ के पीछे हों, गौवें मेरे हृदय में वास करें और मैं

म्येतां तुभ्यं वैतरणीं नमः ॥ ७९ ॥ धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारमहापथे। उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमोस्तु ते ॥ ८० ॥ गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ ८१ ॥ या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे प्रतिष्ठिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ ८२ ॥ इति मन्त्रैश्च संप्रार्थ्य साञ्जलिर्धेनुकां यमम्। सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ८३ ॥ एवं दद्याद्विधानेन योगां वैतरणीं

गौओं के बीच में बसता रहूँ ॥ ८१ ॥ जो सब प्राणियों में और देवों में लक्ष्मीरूप होकर स्थित है वही गौरूप से मेरे पापों को दूर करे ॥ ८२ ॥ हाथ जोड़कर इन मंत्रों से गौ और यमराज की प्रार्थना और परिक्रमा करके कलश आदि सब वस्तुओं को ब्राह्मण को देवे ॥ ८३ ॥ हे गरुड़ ! इस विधान से जो वैतरणी का दान

करता है वह धर्ममार्ग से धर्मराज की सभा में जाता है ॥ ८४ ॥ यदि शरीर स्वस्थ हो तो वैतरणी का व्रत करे और उस नदी से पार होने के लिए वेदपाठी को गौ देवे ॥ ८५ ॥ हे गरुड़ ! गौ के दान से महामार्ग में वह नदी नहीं आती है इसलिए सदा पुण्यसमय में गौ का दान अवश्य करना चाहिए ॥ ८६ ॥ गंगा आदि

खग । स याति धर्ममार्गेण धर्मराजसभान्तरे ॥ ८४ ॥ स्वस्थावस्थशरीरे तु वैतरण्या व्रतं चरेत् । देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता ॥ ८५ ॥ सा नायाति महामार्गे गोदानेन नदी खग । तस्मादवश्यं दातव्यं पुण्यकालेषु सर्वदा ॥ ८६ ॥ गंगादिसर्वतीर्थेषु ब्राह्मणावसथेषु च । चन्द्रसूर्योपरागेषु संक्रान्तौ दर्शवासरे ॥ ८७ ॥ अयने विषुवे चैव व्यतीपाते युगादिषु ।

सब तीर्थों में, ब्राह्मणों की बस्तियों में, सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों में, संक्रान्ति के दिन, अमावस्या के दिन, दक्षिण-उत्तर अयनों में, ❀विषुव संक्रान्तियों में, व्यतीपात में, युगादि तिथियों में और सब पुण्य समयों में

❀ मेष, तुला, मकर और कर्क की संक्रान्तियाँ विषुव और अयनसंज्ञक हैं ।

उत्तम गोदान करना चाहिए ।। ८७-८८ ।। जब मन में श्रद्धा उत्पन्न हो और सुपात्र ब्राह्मण मिल जाय वही पुण्यकाल है । क्योंकि संपत्ति स्थिर नहीं रहती है ।। ८९ ।। शरीर भी स्थिर नहीं है, विभव भी हमेशा नहीं रहता है तथा मृत्यु भी नित्य ही पास रहती है अतः धर्म का संचय करना चाहिए ।। ९० ।। अपने वित्त के

अन्येषु पुण्यकालेषु दद्याद्गोदानमुत्तमम् ॥ ८८ ॥ यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा । स एव पुण्यकालः स्याद्यतः सम्पत्तिरस्थिरा ॥ ८९ ॥ अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः । नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंचयः ॥ ९० ॥ आत्मवित्तानुसारेण तत्र दानमनन्तकम् । देयं विप्राय विदुषे स्वात्मनः श्रेय इच्छता ॥९१ ॥ अल्पेनापि हि वित्तेन स्वहस्तेनात्मने कृतम् । तदक्षय्यं भवेद्दानं तत्कालं चोपतिष्ठति ॥९२॥ गृही-

अनुसार किया हुआ दान अनन्त होता है । अपने कल्याण की इच्छावाला विद्वान् ब्राह्मण को दान दे ।। ९१ ।। अपने हाथ से अपने लिए किया हुआ थोड़े धन का दान भी अक्षय होता है तथा तत्काल उसका फल प्राप्त होता है ।। ९२ ।। दानरूपी राह का खर्च रखनेवाला महामार्ग में (यममार्ग में) सुख से जाता है अन्यथा

राहखर्च से रहित मनुष्य मार्ग में क्लेश पाता है ।। ९३ ।। भूमि पर मनुष्य जो-जो दान करता है, यमलोक के मार्ग में वह आगे प्राप्त होता है ।। ९४ ।। बड़े पुण्य के प्रताप से मनुष्य का जन्म मिलता है। उस मनुष्य

तदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि । अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ॥ ९३ ॥ यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः । यमलोकपथे तानि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः ॥ ९४ ॥ महापुण्यप्रभावेण मानुषं जन्म लभ्यते । यस्तत्प्राप्य चरेद्धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ ९५ ॥ अविज्ञाय नरो धर्मं दुःखमायाति याति च । मनुष्यजन्मसाफल्यं केवलं धर्मसेवनम् ॥ ९६ ॥ धनपुत्रकलत्रादि शरीरमपि बान्धवाः । अनित्यं सर्वमेवेदं

शरीर को पाकर जो धर्म करता है वह परमगति को पाता है ।। ९५ ।। मनुष्य धर्म को न जानकर दुःख से संसार में आता है और जाता है। केवल धर्म के सेवन से ही मनुष्य का जन्म सफल होता है ।। ९६ ।। धन,

पुत्र, स्त्री, भाई-बन्धु और शरीर ये सब अनित्य हैं, अतः धर्म करना चाहिए ॥ ९७ ॥ तब तक ही भाई और माता-पिता हैं जब तक मनुष्य जीता है। मरने के बाद क्षणमात्र में स्नेह निवृत्त हो जाता है ॥ ९८ ॥ आत्मा ही आत्मा का बन्धु है। यह बार-बार जानना चाहिए। जीते हुए ही यह विचार करके कि मरने के बाद कौन

तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥ ९७ ॥ तावद्बन्धुः पिता तावद्यावज्जीवति मानवः। मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते ॥ ९८ ॥ आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति विद्यान्मुहुर्मुहुः। जीवन्नपीति संचिन्त्य मृतानां कः प्रदास्यति ॥ ९९ ॥ एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दीयताम्। अनित्यं जीवितं यस्मात्पश्चात्कोऽपि न दास्यति ॥ १०० ॥ मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।

देगा ॥ ९९ ॥ ऐसा जानकर अपने हाथ से ही सब दान दे। जीवन अनित्य है (सदा नहीं रहता है)। इसलिए पीछे से कोई भी नहीं देगा ॥ १०० ॥ काठ तथा कंकड़-पत्थर के समान मरे शरीर को धरती पर

छोड़कर सब भाई-बन्धु मुंह मोड़कर चले आते हैं। केवल धर्म ही साथ जाता है ॥ १०१ ॥ धन तो घर से ही साथ छोड़ देता है और भाई सब श्मशान से लौट आते हैं किन्तु किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता है ॥ १०२ ॥ शरीर तो अग्नि से जल जाता है और किया हुआ कर्म साथ रहता है। मनुष्य

विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ १०१ ॥ गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात्सर्वबान्धवा। शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति ॥ १०२ ॥ शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम्। पुण्यं वा यदि वा पापं भुंक्ते सर्वत्र मानवः ॥ १०३ ॥ न कोऽपि कस्यचिद्बन्धुः संसारे दुःखसागरे। आयाति कर्मसम्बन्धाद्याति कर्मक्षये पुनः ॥ १०४ ॥ मातृपितृसुतभ्रातृ-

जैसा शुभ और अशुभ कर्म करता है वैसा ही सर्वत्र भोगता है ॥ १०३ ॥ इस दुःख से भरे संसार-सागर में कोई किसी का भाई नहीं है। कर्म के संबंध से प्राणी संसार में आता है और कर्म का संचय होने पर चला जाता है ॥ १०४ ॥ माता, पिता, पुत्र, भाई-बन्धु और स्त्री आदि का संगम पौशाल में आने-जानेवाले जीवों

के समान तथा नदी में काष्ठ के समान चलायमान है ।। १०५ ।। किसके पुत्र, पौत्र और किसकी स्त्री अथवा धन है। संसार में कोई किसी का नहीं है इसलिए जो देना हो अपने हाथ से दे ।। १०६ ।। जब तक धन अपने आधीन है तब तक ही ब्राह्मण को दिया जा सकता है। जब धन दूसरे के आधीन हो जाय तब कुछ

बन्धुदारादिसङ्गमः। प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥ १०५ ॥ कस्य पुत्राश्च पौत्रश्च कस्य भार्या धनं च वा। संसारे नास्ति कः कस्य स्वयं तस्मात् प्रदीयताम् ॥ १०६ ॥ आत्मायत्तं धनं यावत्तावद्विप्रे समर्पयेत्। पराधीने धने जाते न किञ्चिद्वक्तुमुत्सहेत् ॥ १०७ ॥ पूर्वजन्मकृताद्दानादत्र लब्धं धनं बहु। तस्मादेवं परिज्ञाय धर्मार्थं दीयतां धनम् ॥ १०८ ॥ धर्मात्संजायतेऽर्थश्च धर्मात्कामोऽभिजायते। धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं

कहने का विचार न करे ।। १०७ ।। पूर्वजन्म के किये हुए दान से यहाँ बहुत धन मिला है इसलिए ऐसा विचारकर धर्मार्थ दान दीजिए ।। १०८ ।। धर्म से धन होता है और धर्म से कामना पूर्ण होती है और धर्म

से ही मोक्ष मिलता है इसलिए धर्म करना चाहिए ॥ १०९ ॥ श्रद्धा से ही धर्म धारण किया जाता है न कि बहुत से धनसमूह से । धनहीन भी मुनिलोग श्रद्धा से स्वर्ग को चले गये ॥ ११० ॥ जो मनुष्य पत्र, फूल, फल और जल मुझे भक्ति से देता है उसी पवित्रात्मिका भक्ति से दिया हुआ मैं भोजन करता हूँ ॥ १११ ॥ इससे

समाचरेत् ॥ १०९ ॥ श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः । निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः ॥ ११० ॥ पत्रं पुष्पं फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ १११ ॥ तस्माद-वश्यं दातव्यं तदा दानं विधानतः । अल्पं वा बहु वेतीमां गणनां नैव कार-येत् ॥ ११२ ॥ धर्मात्मा च सुपुत्रो वै दैवतैरपि पूज्यते। दापयेद्यस्तु दानानि

विधिपूर्वक अवश्य दान देना चाहिए । थोड़ा हो अथवा बहुत इस बात की गिनती न करना चाहिए ॥ ११२ ॥ जो आतुर समय में भूमि में पिता के हाथ से दान दिलवाता है उस धर्मात्मा पुत्र की देवता भी पूजा करते

हैं ॥ ११३ ॥ जो पुत्र माता-पिता के निमित्त सुपात्र को दान देता है वह पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र तक अपनी आत्मा को भी पवित्र करता है ॥ ११४ ॥ पिता को देने से सौगुणा, माता को देने से हजार गुणा, भगिनी (बहिन) को देने से दश हजार गुणा और भाई को देने से अक्षय फल होता है ॥ ११५ ॥ देनेवाले को

पितरं ह्यातुरं भुवि ॥ ११३ ॥ पित्रोर्निमित्तं यद्वित्तं पुत्रैः पात्रे समर्पितम् ।
आत्मापि पावितस्तेन पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥ ११४ ॥ पितुः शतगुणं पुण्यं
सहस्रं मातुरेव च । भगिनीदशसहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ११५ ॥ न चैवो
पद्रवा दातुर्न वा नरकयातनाः । मृत्युकाले च न भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥
११६ ॥ यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके । मृताः शोचन्ति ते सर्वं

न तो उपद्रव ही होते हैं और न नरक की यातनाएँ ही और न मरने के समय यमदूतों का भय होता है ॥ ११६ ॥ जो लाभ से आतुर समय में दान नहीं देते हैं हे गरुड़ ! वे पापी कायर मरने के पश्चात् सोच

करते हैं ॥ ११७ ॥ जो पुत्र, पौत्र, भाई, सगोत्री और मित्र आतुरकाल में दान नहीं देते हैं वे ब्रह्महत्यारे हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ११८ ॥ गरुड़पुराण का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

गरुड़जी कहते हैं कि हे प्रभो ! आपने आतुरकाल के दान का तो अच्छे प्रकार वर्णन कर दिया। अब

कदर्याः पापिनः खग ॥ ११७ ॥ पुत्राः पौत्रा सह भ्रात्रा सगोत्राः सुहृदस्तु ये । ददन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नास्ते न संशयः ॥ ११८ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे आतुरदाननिरूपणो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गरुड उवाच ॥ कथितं भवता सम्यग्दानमातुरकालिकम् । म्रियमाणस्य यत्कृत्यं तदिदानीं वद प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि देहत्यागस्य तद्विधिम् । मृता येन विधानेन सद्गतिं यान्ति

म्रियमाण (मरते समय) का जो कर्तव्य हो वह वर्णन कीजिए ॥ १ ॥ भगवान् कहते हैं हे गरुड़ ! सुनो । शरीर त्यागने के समय की उस विधि को कहता हूँ जिस विधि के करने से मरे हुए मनुष्य उत्तम गति को

प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ जब कर्मयोग से शरीरधारी अपने शरीर को छोड़ना चाहे उस समय तुलसीजी के समीप गोबर का मंडल बनावे अर्थात् गोबर का चौका लगावे ॥ ३ ॥ उस पर तिल और कुशा बिछावे। वहाँ सफेद आसन पर शालग्रामजी की मूर्ति स्थापन करे ॥ ४ ॥ जहाँ पाप और दोषों को दूर करनेवाली शालिग्रामजी

मानवाः ॥ २ ॥ कर्मयोगाद्यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः । तुलसीसन्निधौ कुर्यान्मण्डलं गोमयेन तु ॥ ३ ॥ तिलांश्चैव विकीर्याथ दर्भांश्चैव विनिक्षिपेत् । स्थापयेदासने शुभ्र शालग्रामशिलां तदा ॥ ४ ॥ शालग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा । तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता ॥ ५ ॥ तुलसीविटपच्छाया यत्रास्ति भवतापहा । तत्रैव मरणान्मुक्तिः सर्वदा दानदुर्लभा ॥ ६ ॥ तुलसीविटपस्थानं गृहे यस्यावतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थरूपं

की मूर्ति हो उसके पास मरने से जीव की अवश्य मुक्ति हो जाती है ॥ ५ ॥ संसार के तापों को दूर करनेवाली तुलसी की छाया जहाँ हो वहीं मरने से मुक्ति होती है। यह सदा दान से भी दुर्लभ है ॥ ६ ॥ जिसके घर में

तुलसी का स्थान रहता है वह घर तीर्थरूप है। वहाँ यमदूत नहीं आते हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य तुलसी की मंजरी से युक्त होकर प्राणों को छोड़ता है उसको यमराज देखने में भी समर्थ नहीं हैं चाहे उसने सैकड़ों पाप भी क्यों न किये हों ॥ ८ ॥ तुलसीदल मुख में रखकर जो तिल और कुशा के आसन पर मरता है वह पुत्रहीन

हि न यान्ति यमकिङ्कराः ॥७॥ तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति। यमस्तं नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥ ८ ॥ तस्या दलं मुखे कृत्वा तिलदर्भासने मृतः । नरो विष्णुपुरं याति पुत्रहीनोप्यसंशयः ॥ ९ ॥ तिलाः पवित्रास्त्रिविधा दर्भाश्च तुलसी तथा। नरं निवारयन्त्येते दुर्गतिं यान्त-मातुरम् ॥ १० ॥ मम स्वेदसमुद्भूता यतस्ते पावनास्तिलाः। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्ततः ॥ ११ ॥ दर्भा विभूतिर्मे तार्क्ष्य मम

भी मनुष्य निस्सन्देह वैकुण्ठ को जाता है ॥ ९ ॥ तीनों प्रकार के तिल, कुशा और तुलसी ये आतुर समय में मनुष्य को दुर्गति से बचा लेते हैं ॥ १० ॥ भगवान् कहते हैं कि मेरे पसीने से तिल उत्पन्न हुए हैं अतः पवित्र हैं। यही कारण है कि तिलों को देखकर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं ॥ ११ ॥ हे गरुड़ ! मेरे रोमों

से उत्पन्न हुई कुशा मेरी ही विभूति है इसलिए उसके छूने से ही मनुष्य स्वर्ग को चले जाते हैं ॥ १२ ॥ कुशा की जड़ में ब्रह्माजी, कुशा के मध्य में विष्णुजी और कुशा के अग्रभाग में शिवशंकरजी स्थित है । इस प्रकार कुशा में तीनों देवताओं का वास है ॥ १३ ॥ इसलिए कुशा, अग्नि, मन्त्र, तुलसी, ब्राह्मण और गौ ये बार-

रोमसमुद्भवाः । अतस्तत्स्पर्शनादेव स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ॥ १२ ॥ कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः । कुशाग्रे शङ्करो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥ १३ ॥ अतः कुशा वह्निमन्त्रतुलसीविप्रधेनवः । नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः ॥ १४ ॥ दर्भाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने । मन्त्रा गौस्तुलसी नीचे चितायां च हुताशनः ॥ १५ ॥ गोमये नोपलिप्ते तु दर्भास्तरणसंस्कृते । भूतले ह्यातुरं कुर्यादन्तरिक्षं

बार काम में लाने पर भी अशुद्ध नहीं होते हैं ॥ १४ ॥ कुशाएँ पिण्डों में और ब्राह्मण प्रेत का भोजन करने से निर्माल्य (अशुद्ध) होते हैं तथा मन्त्र, गौ और तुलसी नीच के पास जाकर और अग्नि चिता में जाकर अपवित्र होती है ॥ १५ ॥ गोबर से लिपी हुई भूमि पर कुशा बिछाकर आतुर मनुष्य को लिटावे । अन्तरिक्ष

विवर्जयेत् ॥ १६ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे देवा हुताशनः । मण्डलोपरि तिष्ठन्ति तस्मान्कुर्वीत मण्डलम् ॥ १७ ॥ सर्वत्र वसुधा पूता लेपो यत्र न विद्यते । यत्र लेपः कृतस्तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति ॥ १८ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताः प्रेता यमानुगाः । अलिप्तदेशे खट्वायामन्तरिक्षे विशन्ति च ॥ १९ ॥ अतोऽग्निहोत्रं श्राद्धं च ब्रह्मभोज्यं सुरार्चनम् । मण्डलेन विना भूम्यामातुरं नैव कारयेत् ॥ २० ॥ लिप्तभूम्यामतः कृत्वा स्वर्णं रत्नं मुखे

(खटिया आदि) पर न रक्खे ॥ १६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सब देवता तथा अग्नि ये सब मंडल पर ही बैठते हैं इसलिए मंडल करना (चौका लगाना) चाहिए ॥ १७ ॥ जहाँ कभी चौका नहीं लगता है वह भूमि सर्वत्र पवित्र है । जहाँ लिपी हुई है वहाँ विना लिपे शुद्ध नहीं होती है ॥ १८ ॥ राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत और यमदूत ये विना लिपे स्थान में और खटिया आदि अन्तरिक्ष में ही प्रवेश पाते हैं ॥ १९ ॥ इसलिए होम, श्राद्ध, ब्रह्मभोज, देवताओं का पूजन और आतुर कर्म विना मंडल के न करावे ॥ २० ॥ लिपी हुई भूमि में

लिटाकर मुख में सोना और रत्न छोड़े तथा शालग्रामजी का चरणामृत पिलावे ॥ २१ ॥ जो शालग्रामजी का चरणामृत एक बूंद भी पीता है वह सब पापों से छूटकर वैकुण्ठ को जाता है ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् महा-पातकों को नाश करनेवाला गंगाजल पिलावे । सब तीर्थों में स्नान और दान करने से जो फल होता है वही

क्षिपेत् । विष्णोः पादोदकं दद्याच्छालग्रामस्वरूपिणः ॥ २१ ॥ शालग्राम-शिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुमात्रकम् । स सर्वपापनिर्मुक्तो वैकुण्ठभुवनं व्रजेत् ॥ २२ ॥ ततो गङ्गाजलं दद्यान्महापातकनाशनम् । सर्वतीर्थकृत-स्नानदानपुण्यफलप्रदम् ॥ २३ ॥ चान्द्रायणं चरेद्यस्तु सहस्रं कायशो-धनम् । पिबेद्यश्चैव गङ्गाम्भः समौ स्यातामुभावपि ॥ २४ ॥ अग्निं प्राप्य यथा तार्क्ष्य तूलराशिर्विनश्यति । तथा गङ्गाम्बुपानेन पातकं

गंगाजल पीने से होता है ॥ २३ ॥ शरीर शुद्धि के लिए जो हजार चान्द्रायण व्रत करता है और जो गंगाजल पीता है ये दोनों समान ही है ॥ २४ ॥ हे गरुड़ ! जैसे अग्नि को पाकर रुई का ढेर नष्ट हो जाता है उसी

प्रकार गंगाजल पीने से पाप भस्म हो जाते हैं ।। २५ ।। जो मनुष्य सूर्य की किरणों से तपे हुए गंगाजल को पीता है वह सब योनियों से छूटकर भगवान् के स्थान (वैकुंठ) को जाता है ।। २६ ।। और नदियाँ तो स्नान करने से मनुष्यों को पवित्र करती हैं किन्तु गंगाजी तो दर्शन, स्पर्श, पान और गंगा-गंगा कहने से ही

भस्मसाद्भवेत् ॥ २५ ॥ यस्तु सूर्यांशुसन्तप्तं गङ्गायाः सलिलं पिबेत् । स सर्वयोनिनिर्मुक्तः प्रयाति सदनं हरेः ॥ २६ ॥ नद्यो जलावगाहेन पावयन्तीतराङ्जनान् । दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथागङ्गेति कीर्तनात् ॥ २७ ॥ पुनात्यपुण्यान्पुरुषाञ्छतशोथसहस्रशः । गङ्गा तस्मात् पिबेत्तस्या जलं संसारतारकम् ॥ २८ ॥ गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥ २९ ॥ उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः पुरुषः श्रद्धया-

सैकड़ों-हजारों अपवित्र पुरुषों को पवित्र कर देती है इसलिए संसार से उद्धार करनेवाले गंगाजल का पान करे ।। २७-२८ ।। जो कण्ठ में प्राण आ जाने पर भी (मरते समय) गंगा-गंगा ऐसा उच्चारण करता है वह मरकर वैकुण्ठ को जाता है और फिर भूमि में उत्पन्न नहीं होता है ।। २९ ।। जो मनुष्य प्राण निकलते

समय श्रद्धापूर्वक गंगाजी का स्मरण करता है वह भी परमगति को पाता है ।। ३० ।। इसलिए गंगाजी का ध्यान करे, प्रणाम करे और स्मरण करे तथा जल पीवे फिर कुछ मोक्षदायक भागवत पुराण का पाठ सुने ।। ३१ ।। जो अन्त में भागवत का एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी पढ़ता है उसका ब्रह्मलोक से फिर कभी

न्वितः । चिन्तयेन्मनसा गङ्गां सोऽपि याति परां गतिम् ॥ ३० ॥ अतो ध्यायेन्नमेद्गङ्गां संस्मरेत्तज्जलं पिबेत् । ततो भागवतं किंचिच्छृणुयान्मोक्षदायकम् ॥ ३१ ॥ श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽन्ते भागवतं पठेत् । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ॥ ३२ ॥ वेदोपनिषदां पाठाच्छिवविष्णुस्तवादपि । ब्राह्मणक्षत्रियविशां मरणं मुक्तिदायकम् ॥ ३३ ॥ प्राणप्रयाणसमये कुर्यादनशनं खग । दद्यादातुरसंन्यासं विरक्तस्य द्विजन्मनः ॥ ३४ ॥ संन्य-

आगमन नहीं होता है ।। ३२ ।। वेद और उपनिषदों का तथा शिव और विष्णु के स्तोत्रों का पाठ करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की मृत्यु मुक्तिदायक होती है ।। ३३ ।। हे गरुड़ ! प्राण निकलने के समय अनशन व्रत करना चाहिए तथा विरक्त मन हो तो ब्राह्मण को आतुर संन्यास देना चाहिए ।। ३४ ।। जो मरते समय

मैंने संन्यास ले लिया है, ऐसा कहता है, वह मरकर वैकुण्ठ को जाता है और फिर भूमि पर जन्म नहीं लेता है ॥ ३५ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार आतुरविधान करनेवाले धर्मात्मा के प्राण सुखपूर्वक ऊपर के छिद्रों से निकलते हैं ॥ ३६ ॥ एक मुख, दो आँखें, दो नाक, दो कान इन सात मार्गों से सुकृती लोग प्राण त्यागते हैं

स्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥ ३५ ॥ एवं जातविधानस्य धार्मिकस्य तदा खग । ऊर्ध्वच्छिद्रेण गच्छन्ति प्राणास्तस्य सुखेन हि ॥ ३६ ॥ मुखं च चक्षुषी नासे कर्णौ द्वाराणि सप्त च । एभ्यः सुकृतिनो यान्ति योगिनस्तालुरन्ध्रतः ॥ ३७ ॥ अपानान्मिलितप्राणौ यदा हि भवतः पृथक् । सूक्ष्मीभूत्वा तदा वायुर्विनिष्क्रामति पुत्तलात् ॥ ३८ ॥ शरीरं पतते पश्चान्निर्गते मरुतीश्वरे ।

और योगी तालु के छेद से प्राण त्यागते हैं ॥ ३७ ॥ अपान से मिला हुआ प्राण जब उससे अलग होता है तब वह सूक्ष्म वायुरूप होकर शरीर से निकल जाता है ॥ ३८ ॥ फिर उस समर्थ वायु के निकल जाने से

काल से मारा हुआ शरीर ऐसे गिर पड़ता है जैसे निराधार वृक्ष गिर पड़ता है ॥ ३९ ॥ प्राणों में रहित शरीर निन्दित और चेष्टाहीन हो जाता है । छूने योग्य नहीं रहता एवं उसमें जल्दी ही दुर्गन्धि आने लग जाती है ॥ ४० ॥ कृमि (गाड़ने से कीड़ा पड़ते हैं), विष्ठा (जानवरों के खाने से विष्ठा हो जाती है)

कालाहतं पतत्येवं निराधारो यथा द्रुमः ॥ ३९ ॥ निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणै-र्मुक्तं जुगुप्सितम् । अस्पृश्यं जायते सद्यो दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम् ॥ ४० ॥ त्रिधावस्था शरीरस्य कृमिविड्भस्मरूपतः । किं गर्वः क्रियते देहे क्षण-विध्वंसिभिर्नरैः ॥ ४१ ॥ पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथाप्सु च । तेज-स्तेजसि लीयेत समीरस्तु समीरणे ॥ ४२ ॥ आकाशश्च तथा काशे सर्व-

और भस्मरूप (जलाने से भस्म हो जाती है) से शरीर की तीन अवस्थाएँ हो जाती हैं इसलिए क्षण में नष्ट होनेवाले शरीर का मनुष्यों को गर्व नहीं करना चाहिए ॥ ४१ ॥ पृथ्वी पृथ्वी में लीन हो जाती है, जल जल में, तेज तेज में और वायु वायु में लीन हो जाती है ॥ ४२ ॥ आकाश आकाश में लीन हो जाता है ।

देहों में जो आत्मा रहता है वह सर्वव्यापी, शिवरूप, नित्य मुक्त, जगत् का साक्षी, अज और अमर हैं ॥ ४३ ॥ शब्द आदि विषयों से तथा सब इन्द्रियों से युक्त एवं काम, राग और कर्मकोश से युक्त जीव ॥ ४४ ॥ पुण्य की वासना से युक्त हुआ अपने कर्मों से निर्मित नये शरीर में इस प्रकार प्रवेश करता है जैसे घर जल जाने

व्यापी च शङ्करः । नित्यमुक्तो जगत्साक्षी आत्मा देहेष्वजोऽमरः ॥ ४३ ॥ सर्वेन्द्रिययुतो जीवः शब्दादिविषयैर्वृतः । कामरागादिभिर्युक्तः कर्मकोश-समन्वितः ॥ ४४ ॥ पुण्यवासनया युक्तो निर्मिते स्वेन कर्मणा । प्रविशेत्स नवे देहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥ ४५ ॥ तदा विमानमादाय किङ्किणी-जालमालि यत् । आयान्ति देवदूताश्च लसच्चामरशोभिताः ॥ ४६ ॥ धर्म-तत्त्वविदः प्राज्ञाः सदा धार्मिकवल्लभाः । तदैनं कृतकृत्यं स्वविमानेन

पर मनुष्य दूसरे घर में प्रविष्ट हो जाता है ॥ ४५ ॥ तब देवदूत किंकिणी के जालों की माला से युक्त तथा चमर से शोभित विमान लेकर आते हैं ॥ ४६ ॥ धर्म के तत्त्व को जाननेवाले, धर्मात्मा के प्यारे बुद्धिमान्

देवदूत उस कृतकृत्य प्राणी को विमान में बैठाकर स्वर्ग में ले जाते हैं ॥ ४७ ॥ सुन्दर शरीरवाला निर्मल वस्त्र, माला, सुवर्ण और रत्नों के आभरणों से युक्त हो दान के प्रभाव से वह महानुभाव देवताओं से पूजित होकर वैकुण्ठ में जाता है ॥ ४८ ॥ नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

नयन्ति ते ॥ ४७ ॥ सुदिव्यदेहो विरजाम्बरस्रक्सुवर्णरत्नाभरणैरुपेतः । दान प्रभावात्स महानुभावः प्राप्नोति नाकं सुरपूज्यमानः ॥ ४८ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे म्रियमाणकृत्यनिरूपणो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

गरुड उवाच ॥ देहदाहविधानं च विभो सुकृतिनां वद । सती यदि भवेत्पत्नी तस्याश्च महिमां वद ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि

गरुड़जी पूछते हैं, हे प्रभो ! सुकृतियों के शरीर के दाह करने का विधान कहिए कि किस विधि से जलाया जाय और यदि उसकी स्त्री सती हो तो उसकी महिमा भी कहिए ॥ १ ॥ भगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! सुनिए । ऊर्ध्वदेहिक की वह सब विधि कहता हूँ, जिस विधि को करके पुत्र और पौत्र पितृ-ऋण

से छूट जाते हैं ॥ २ ॥ बहुत दान देने से क्या है ? केवल माता-पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करने से पुत्र अग्निस्टोम यज्ञ के समान फल पाता है ॥ ३ ॥ माता या पिता के मरने के बाद शोक को त्यागकर सब पापों की शान्ति के लिए सब भाइयों के साथ पुत्र को मुण्डन कराना चाहिए ॥ ४ ॥ माता-पिता के मरने पर जो

सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् । यत्कृत्वा पुत्रपौत्राश्च मुच्यन्ते पैतृकादृणात् ॥ २ ॥ किं दत्तैर्बहुभिर्दानैः पित्रोरन्त्येष्टिमाचरेत् । तेनाग्निष्टोमसदृशं पुत्रः फलमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ तदा शोकं परित्यज्य कारयेन्मुण्डनं सुतः । समस्तबान्धवैर्युक्तः सर्वपापापनुत्तये ॥ ४ ॥ मातापित्रोर्मृतौ येन कारितं मुण्डनं न हि । आत्मजः स कथं ज्ञेयः संसारार्णवतारकः ॥ ५ ॥ अतो मुण्डनमावश्यं नखकक्षविवर्जितम् । ततः सबान्धवः स्नात्वा धौतवस्त्राणि धारयेत् ॥ ६ ॥ सद्यो

पुत्र मुण्डन नहीं कराता है वह संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाला पुत्र कैसे जाना जा सकता है ॥ ५ ॥ इसलिए पुत्रों को मुण्डन अवश्य कराना चाहिए । नख और काँख के बालों को न कटाना चाहिए । फिर भाइयों के साथ स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहिनना चाहिए ॥ ६ ॥ फिर ताजा जल लाकर मृतक शरीर को स्नान करावे

और चन्दन, माला और गंगाजी की मृत्तिका से सुशोभित करे ॥ ७ ॥ फिर नये वस्त्रों से ढककर, अपसव्य हो, नाम और गोत्र का उच्चारण कर मृत्यु के स्थान में शव नाम से दक्षिणा-सहित पिण्ड देवे इससे वहाँ की

जलं समानीय ततस्तं स्नापयेच्छवम् । मण्डयेच्चन्दनैः स्रग्भिर्गङ्गामृत्तिकयाथवा ॥ ७ ॥ नवीनवस्त्रैः संच्छाद्य तदा पिण्डं सदक्षिणम् । नाम गोत्रं समुच्चार्य संकल्पेनापसव्यतः ॥ ८ ॥ मृत्युस्थाने शवो नाम तस्य नाम्ना प्रदापयेत् । तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता ॥ ९ ॥ द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तस्य नाम्ना प्रदापयेत् । तेन नैवोपघाताय भूतकोटिषु दुर्गताः ॥ १० ॥ ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजनीयः स्नुषादिभिः । स्कन्धः पुत्रेण दातव्यस्त-

भूमि और वहाँ के अधिष्ठाता देव प्रसन्न होते हैं ॥ ८-९ ॥ द्वार पर पान्थ के नाम से पिण्ड देना चाहिए उससे भूतों की गणना में प्राप्त दुर्गत नामक जीव विघ्न-बाधा नहीं करते हैं ॥ १० ॥ इसके पीछे परिक्रमा

करके पुत्र-वधू आदि उसकी पूजा करें। फिर अन्य बन्धुओं के साथ पुत्र को कंधा लगाना चाहिए ॥ ११ ॥ जो अपने पिता को कांधे पर रखकर श्मशान में ले जाता है वह पुत्र पद-पद पर अश्वमेधयज्ञ का फल पाता है ॥ १२ ॥ पिता ने सदा कन्धे पर, पीठ पर और गोद में लेकर पुत्र का लालन-पालन किया था उस ऋण से

दान्यैर्बान्धवैः सह ॥ ११ ॥ धृत्वा स्कन्धे स्वपितरं यः श्मशानाय गच्छति-सोऽश्वमेधफलं पुत्रो लभते च पदे पदे ॥ १२ ॥ नीत्वा स्कन्धे स्वपृष्ठेऽङ्के सदा तातेन लालितः। तदैव तद्दृणान्मुच्येन्मृतं स्वपितरं वहेत् ॥ १३ ॥ ततोऽर्धमार्गे विश्रामं संमार्ज्याशयुक्ष्य कारयेत्। संस्नाप्य भूतसंज्ञाय तस्मै तेन प्रदापयेत् ॥ १४ ॥ पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिक्षु संस्थिताः।

पुत्र तभी छूटता है जब वह अपने मरे पिता को कंधे पर ले जाता है ॥ १३ ॥ इसके पीछे आधे मार्ग में जाकर, जमीन को साफ कर, जल छिड़ककर शव को विश्राम करावे और स्नान कराकर उस भूतसंज्ञक के लिए पिण्डदान देवे ॥ १४ ॥ इससे पिशाच, राक्षस और यक्ष आदि जो सब दिशाओं में स्थित है वे उस होम करने

योग्य शरीर को अशुद्ध नहीं कर सकते हैं ॥ १५ ॥ फिर श्मशान में ले जाकर उत्तर मुख स्थापन करे। वहाँ शरीर को जलाने के लिए स्थान साफ करे ॥ १६ ॥ पहले उस भूमि को झाड़कर गोबर से लीपे, उस पर वेदी बनाकर कुशा से अनामिका और अगूंठा द्वारा तीन रेखाएं करे और उसी क्रम से रेखाओं से मिट्टी

तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ॥ १५ ॥ ततो नीत्वा श्मशानेषु स्थापयेदुत्तरामुखम् । तत्र देहस्यं दाहार्थं स्थलं संशोधयेद्यथा ॥ १६ ॥ सम्मार्ज्य भूमिं संलिप्योल्लिख्योद्धृत्य च वेदिकाम् । अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः ॥ १७ ॥ पुष्पाक्षतैरथाभ्यर्च्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम् । लोमभ्यस्त्वनुवाकेन होमं कुर्याद्यथाविधि ॥ १८ ॥ त्वं भूतभृज्जगद्यो-

निकालकर जल से छिड़के फिर विधि से अग्नि स्थापन करे ॥ १७ ॥ पुष्प और अक्षतों से क्रव्यादसंज्ञक देवता का पूजन कर 'लोमभ्यः स्वाहा, त्वग्भ्यः स्वाहाः, मज्जभ्यः स्वाहा, इत्यादि अनुवाक के वेदमंत्रों से विधिपूर्वक होम करे ॥ १८ ॥ फिर प्रार्थना करे—तुम भूतों को धारण करनेवाले, भूतों के पालक और

जगत् की योनि (उत्पत्ति-स्थान) हो इसलिए इस मरे हुए सांसारिक जीव को स्वर्ग में भेजो ॥ १९ ॥
इस प्रकार अग्नि की प्रार्थना करके वहाँ चन्दन, तुलसी, ढाक और पीपल की लकड़ियों से चिता बनावे ॥ २० ॥
उस चिता पर मुरदे को रखकर उस प्रेत के नाम से शव के हाथ में दो पिण्ड देवे । चिता छोड़ने के बाद

निस्त्वं भूतपरिपालकः । मृतः सांसारिकस्तस्मादेनं त्वं स्वर्गतिंनय ॥ १९ ॥
इति संप्रार्थयित्वाग्निंचितां तत्रैव कारयेत् । श्रीखण्डतुलसीकाष्ठैः पलाशाश्व-
त्थदारुभिः ॥ २० ॥ चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दायपेत् । चितायांशव
हस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वर । चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते ॥ २१ ॥
केऽपि तं साधकं प्राहुः प्रेतकल्पविदो जनाः । चितायां तेन नाम्ना वा प्रेत-
नाम्नाथवा करे ॥ २२ ॥ इत्येवं पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याहुतियोग्यता ।

से प्रेतसंज्ञा हो जाती है ॥ २१ ॥ प्रेतकल्प के जाननेवाले कोई-कोई साधक नाम से या मृतक के नाम से
अथवा प्रेत के नाम से चिता पर पिण्ड देते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार पाँच पिण्डों से शव में आहुति पाने की

योग्यता होती है। ऐसा न करने से वे पूर्वोक्त राक्षसादि विघ्न करते हैं ॥ २३ ॥ प्रेत के लिए पाँच पिण्ड देकर तृण (सरपत) आदि में अग्नि लेकर पुत्र अग्नि देवे। परन्तु पंचक में दाह न करे ॥ २४ ॥ जो पंचकों में मरता है वह गति नहीं पाता है। पंचक में मरे हुए का दाह नहीं करना चाहिए। दाह से अन्य की मृत्यु

अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ॥ २३ ॥ प्रेते दत्त्वा पञ्च पिण्डान् हुतमादाय तं तृणैः। अग्निं पुत्रस्तदा दद्यान्न भवेत्पञ्चकं यदि ॥ २४ ॥ पञ्चकेषु मृतो यस्तु न गतिं लभते नरः। दाहस्तत्र न कर्तव्यः कृतेऽन्यमरणं भवेत् ॥ २५ ॥ आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं न दाहेऽर्हं दाहे च न शुभं भवेत् ॥ २६ ॥ गृहे हानिर्भवे-

होती है ॥ २५ ॥ धनिष्ठा के आधे से लेकर रेवती के अन्त तक पाँच नक्षत्र पंचकसंज्ञक हैं। ये दाह के योग्य नहीं हैं। यदि दाह करे तो अशुभ होता है ॥ २६ ॥ इन पूर्वोक्त पाँच नक्षत्रों में मरने से उसके घर में हानि

होती है अथवा उसके पुत्रों या गोत्रवालों में कुछ विघ्न हो जाता है ॥ २७ ॥ अथवा इन नक्षत्रों में दाह करना ही हो तो विधिपूर्वक करे। सब दोषों की शान्ति के लिए उस दाह की विधि तुमसे कहता हूँ ॥ २८ ॥ हे गरुड़ ! कुशा के चार पुतले बनाकर और उन नक्षत्रों के मंत्र से अभिमंत्रित कर शव के

त्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतो हि यः। पुत्राणां गोत्रिणां चापि कश्चिद्विघ्नः प्रजायते ॥ २७ ॥ अथवा ऋक्षमध्ये हि दाहः स्याद्विधिपूर्वकः। तद्विधिं ते प्रवक्ष्यामि सर्वदोषप्रशान्तये ॥ २८ ॥ शवस्य निकटे तार्क्ष्य निक्षिपेत्पुत्तलांस्तदा । दर्भमयांश्च चतुर ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रितान् ॥ २९ ॥ ततो होत्र प्रकर्त्तव्यं वहन्ति ऋक्षनामभिः। प्रेताजयत मन्त्रेण पुनर्होमस्तु संपुटैः ॥ ३० ॥ ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह। सपिण्डनदिने कुर्यात्तस्य

पास उन पुतलों को रख दे ॥ २९ ॥ फिर नक्षत्रों के मंत्रों से होम करके "प्रेताजयत" इस मंत्र से प्रेत का नाम संपुटित कर होम करे ॥ ३० ॥ फिर उन पुतलों के साथ उसका दाह करे। इसके पश्चात्

सपिण्डन श्राद्ध के दिन पुत्र विधि से पंचकशान्ति करे ॥ ३१ ॥ दोषों की शान्ति के लिए तिलों का पात्र, सोना, चाँदी, रत्न और घी से भरा हुआ काँसे का पात्र देवे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शान्ति की विधि करके जो दाह करता है उसको विघ्न नहीं होता है और प्रेत की गति हो जाती है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार

शान्तविधिं सुतः ॥ ३१ ॥ तिलपात्रं हिरण्यं च रूप्यं रत्नं यथाक्रमम् । घृतपूर्णं कांस्यपात्रं दद्याद्दोषप्रशान्तये ॥ ३२ ॥ एवं शान्तिविधानं तु कृत्वा दाहं करोति यः । न तस्य विघ्नो जायेत प्रेता यान्ति पराङ्गतिम् ॥ ३३ ॥ एवं पञ्चकदाहः स्यात्तद्विना केवलं दहेत् । सती यदि भवेत्पत्नी तया सह विनिर्दहेत् ॥ ३४ ॥ पतिव्रता यदा नारी भर्तुः प्रियहिते रता । इच्छेत्सहैव गमनं तदा स्नानं समाचरेत् ॥ ३५ ॥ कुंकुमाञ्जनसद्वस्त्रभूषणैर्भूषितां तनुम् ।

पञ्चक में दाह होता है । पंचक न हों तो केवल मृतक का दाह होता है । अगर उसकी स्त्री सती होना चाहे तो उसका भी उसके साथ दाह करे ॥ ३४ ॥ उसकी यह विधि है—पति के हित में तत्पर पतिव्रता स्त्री जब पति के साथ ही जाना चाहे तो वह स्नान करे ॥ ३५ ॥ फिर कुंमकुम, अंजन और उत्तम वस्त्र-आभूषणों को

धारण कर ब्राह्मणों को तथा अपने कुटुम्बियों को दान देवे ॥ ३६ ॥ फिर गुरु को नमस्कार कर मकान से बाहर निकले और मन्दिर में जाकर भगवान् को भक्ति से प्रणाम करे ॥ ३७ ॥ वहाँ सब आभूषणों को समर्पण कर नारियल लेवे और लज्जा और मोह को छोड़कर श्मशान में जावे ॥ ३८ ॥ वहाँ सूर्य को नमस्कार

दानं दद्याद्द्विजातिभ्यो बन्धुवर्गेभ्य एव च ॥ ३६ ॥ गुरुं नमस्कृत्य तदा निर्गच्छेन्मन्दिराद्बहिः । ततो देवालयं गत्वा भक्त्या तं प्रणमेद्धरिम् ॥ ३७ ॥ समर्प्याभरणं तत्र श्रीफलं परिगृह्य च । लज्जां मोहं परित्यज्य श्मशानभवनं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ तत्र सूर्यं नमस्कृत्य परिक्रम्य चितां तदा । पुष्पशय्यां तदारोहेन्निजाङ्के स्वापयेत्पतिम् ॥ ३९ ॥ सखीभ्यः श्रीफलं दद्या-द्दाहमाज्ञापयेत्ततः । गङ्गास्नानसमं ज्ञात्वा शरीरं परिदाहयेत् ॥ ४० ॥ न

कर चिता की परिक्रमा करे और चिता को फूलों की सेज समझकर उस पर चढ़े और अपनी गोदी में पति को सुलावे ॥ ३९ ॥ अपनी सखियों को नारियल देकर चिता जलाने की आज्ञा देवे। फिर अग्नि को गंगाजल के समान शीतल समझकर शरीर को जलावे ॥ ४० ॥ यदि स्त्री गर्भिणी हो तो पति के साथ शरीर

को न जलावे। किन्तु बालक होने के बाद उसका पालन-पोषण कर सती होवे ॥ ४१ ॥ जो पति के शरीर को लेकर स्त्री अपने शरीर को जलाती है, तो अग्नि उसके अंगों को ही जलाती है, परन्तु उसकी आत्मा को पीड़ा नहीं देती है ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि में धौंकी हुई धातुओं का मल जल जाता है उसी प्रकार अमृत

दहेद्गर्भिणो नारी शरीरं पतिना सह। जनयित्वा प्रसूतिं च बालं पोष्य सती भवेत् ॥ ४१ ॥ नारी भर्तारमासाद्य शरीरं दहते यदि। अग्निर्दहति गात्राणि नैवात्मानं प्रपीडयेत् ॥ ४२ ॥ दह्यते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलः। तथा नारी दहेत्पापं हुताशे ह्यमृतोपमे ॥ ४३ ॥ दिव्यादौ सत्ययुक्तश्च शुद्धो धर्मयुतो नरः। यथा न दह्यते तप्तलोहपिण्डेन कर्हिचित् ॥ ४४॥ तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन। अन्तरात्मात्मना भर्तुर्मृतस्यै

तुल्य अग्नि में सती स्त्री अपने पापों को जला देती है ॥ ४३ ॥ जैसे शपथ आदि में शुद्ध, सत्य और धर्मयुक्त मनुष्य गर्म लोहपिण्ड से कभी नहीं जलता है ॥ ४४ ॥ वैसे ही पतियुक्त स्त्री कभी नहीं जलती है अर्थात्

जलने में कष्ट नहीं होता है। परन्तु मृत पति की अन्तरात्मा के साथ उसकी आत्मा मिल जाती है ॥ ४५ ॥
जब तक स्त्री अपने शरीर को पति के साथ अग्नि में नहीं जलाती है तब तक वह स्त्री शरीर से कभी
नहीं छूटती है ॥ ४६ ॥ इसलिए सब प्रकार यत्न करके मन, वचन और कर्म से अपने पति की

कत्वमाप्नुयात् ॥ ४५ ॥ यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् । तावन्न मुच्यते सा हि स्त्री शरीरात्कथंचन ॥ ४६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा। कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्गता ॥ ४७ ॥ मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् । साऽरुन्धतीसमा भूत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ ४८ ॥ तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाप्सरोगणैः । रमते पतिना सार्धं याव-

सेवा करे और मरने पर उसी के साथ सती हो जावे ॥ ४७ ॥ पति के मर जाने पर जो स्त्री पति के साथ
अग्नि में जल ज़ाती है वह अरुन्धती (वशिष्ठजी की स्त्री) के समान होकर स्वर्गलोक में निवास करती
है ॥ ४८ ॥ वहाँ स्वर्ग में पति से भी अधिक शोभावाली वह स्त्री अप्सरागणों से पूजित होकर तब तक

पति के साथ रमण करती है जब तक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं ॥ ४९ ॥ जो स्त्री पति के साथ सती होती है वह माता, पिता और जहाँ ब्याही गई है इन तीन कुलों को पवित्र करती है ॥ ५० ॥ साढ़े तीन करोड़ बाल जो मनुष्य के शरीर में होते हैं उतने ही वर्ष तक पति के साथ स्वर्ग में आनन्द करती

दिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४९ ॥ मातृकं पैतृकं चैव यत्र सा च प्रदीयते । कुलत्रयं पुनात्यत्र भर्तारं यानुगच्छति ॥ ५० ॥ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे पतिना सह मोदते ॥ ५१ ॥ विमाने सूर्यसंकाशे क्रीडते रमणेन सा । यावदादित्यचन्द्रौ च भर्तृलोके चिरं वसेत् ॥ ५२ ॥ पुनश्चिरायुः सा भूत्वा जायते विमले कुले । पतिव्रता तु या नारी तमेव लभते पतिम् ॥ ५३ ॥ या क्षणं दाहदुःखेन सुखमेतादृशं

है ॥ ५१ ॥ फिर सूर्य के तुल्य प्रकाशमान विमान में बैठकर पति के साथ रमण करती है और जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं तब तक पति के लोक में निवास करती है ॥ ५२ ॥ फिर बड़ी आयुवाली होकर निर्मल कुल में जन्म लेती है । और वह पतिव्रता स्त्री फिर उसी पति को पाती है ॥ ५३ ॥ जो स्त्री क्षणमात्र

के दाहदुःख से ऐसे सुख को छोड़ देती है वह मूर्खा स्त्री जन्मभर विरह की अग्नि से जला करती है ॥ ५४ ॥ इसलिए पति को शिवरूप जानकर उसके साथ शरीर को जलावे । हे गरुड़ ! यदि स्त्री सती न हो तो केवल उस शव को ही जलावे ॥ ५५ ॥ आधा दग्ध होने पर अथवा पूरा दग्ध होने पर शव का मस्तक फोड़े ।

त्यजेत् । सा मूढा जन्मपर्यन्तं दह्यते विरहाग्निना ॥ ५४ ॥ तस्मात्पतिं शिवं ज्ञात्वा सह तेन दहेत्तनुम् । यदि न स्यात्सती तार्क्ष्य तमेव प्रदहे-त्तदा ॥ ५५ ॥ अर्धे दग्धेऽथवा पूर्णे स्फोटयेत्तस्य मस्तकम् । गृहस्थानां तु काष्ठेन यतीनां श्रीफलेन च ॥ ५६ ॥ प्राप्तये पितृलोकानां भित्त्वा तद्ब्रह्मरन्ध्र-कम् । आज्याहुतिं ततो दद्यान्मन्त्रेणानेन तत्सुतः ॥ ५७ ॥ अकारादभि-जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलतु

गृहस्थियों का काठ से और यतियों का मस्तक नारियल से तोड़ना चाहिए ॥ ५६ ॥ पितृलोक की प्राप्ति के लिए उसकी कपालक्रिया करके पुत्र इस मंत्र से घी की आहुति देवे ॥५७॥ हे पावक ! तुम वासुदेव भगवान् से

उत्पन्न हुए हो इससे यह तुमसे फिर उत्पन्न होवे। स्वर्गलोक के लिए यह तुम्हारे में हविरूप हो इससे तुम प्रज्वलित हो ॥ ५८ ॥ इस प्रकार मन्त्र से तिलयुक्त घी की आहुति देकर बहुत जोर से रोना चाहिए। इससे मृतक को सुख होता है ॥ ५९ ॥ दाह होने के पीछे स्त्रियों को स्नान करना चाहिए उसके बाद पुत्रादि पुरुषों

पावकः ॥ ५८ ॥ एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम्। रोदितव्यं ततो गाढं तेन तस्य सुखं भवेत् ॥ ५९ ॥ दाहादनन्तरं कार्यं स्त्रीभिः स्नानं ततः सुतैः। तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रोपकल्पितम् ॥ ६० ॥ प्राशयेन्निम्बपत्राणि मृतकस्य गुणान्वदेत्। स्त्रीजनोऽग्रे गृहं गच्छेत्पृष्ठतो नरसंचयः ॥ ६१ ॥ गृहे स्नानं पुनः कृत्वा गोग्रासं च प्रदापयेत्। पत्रावल्यां च

को स्नान करना चाहिए। फिर नाम और गोत्र का उच्चारण कर तिल-जल की अंजली देवे ॥ ६० ॥ फिर नीम के पत्ते चबावे और मृतक के गुणों का बखान करे। आगे-आगे स्त्रियाँ और पीछे-पीछे मनुष्य घर को आवें ॥ ६१ ॥ घर पर आकर फिर स्नान करे और गौ-ग्रास देवे। पत्तल में भोजन करे परन्तु घर का अन्न

न खावे (बाजार से सामान मँगवाकर बनवाना चाहिए) ।। ६२ ।। फिर मृतक की जगह को लीपकर बारह दिन तक रात-दिन दक्षिणाभिमुख दीपक जलावे ।। ६३ ।। हे गरुड़ ! सूर्य अस्त होने पर श्मशान अथवा चौराहे पर तीन दिन तक मिट्टी के पात्र में दूध और जल देवे ।। ६४ ।। कच्चे मिट्टी के पात्र को दूध

भुञ्जीयाद् गृहान्नं नैव भक्षयेत् ॥ ६२ ॥ मृतकस्थानमालिप्य दक्षिणाभिमुखं ततः । द्वादशाहकपर्यन्तं दीपं कुर्यादहर्निशम् ॥ ६३ ॥ सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य श्मशाने वा चतुष्पथे । दुग्धं च मृन्मये पात्रे तोयं दद्याद्दिनत्रयम् ॥ ६४ ॥ अपक्वमृन्मयं पात्रं क्षीरनीरप्रपूरितम् । काष्ठत्रयं गुणैर्बद्धं धृत्वा मन्त्रं पठेदिमम् ॥ ६५ ॥ श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवैः । इदं नीरमिदं क्षीरमत्र स्नाहि इदं पिब ॥ ६६ ॥ चतुर्थे सञ्चयः

और जल से भरकर डोरे से बँधी हुई तीन लकड़ियों पर धरे और यह मंत्र पढ़े ।। ६५ ।। "श्मशान की अग्नि से जले हो और भाई बन्धुओं से त्यागे गये हो इसलिए यह जल है और यह दूध है । जल में स्नान करो और दूध पीओ" ।। ६६ ।। अग्निहोत्रवाले पुरुषों का चौथे दिन और अग्निहोत्ररहितों का तीसरे या

दूसरे दिन विरोध-रहित अस्थिसंचय करे ॥ ६७ ॥ उसकी विधि यह है—श्मशान-भूमि में जाकर स्नान कर पवित्र होवे और ऊन का सूत लपेटकर पवित्री पहिने ॥ ६८ ॥ फिर श्मशान में रहनेवाले भूत-प्रेतों के लिए 'यमाय त्वा' इस मंत्र से पुत्र मांस की बलि देवे (मांस के स्थान में उड़द-चावल की बलि देते हैं) फिर तीन

कार्यः साग्निकैश्च निरग्निकैः । तृतीयेऽह्नि द्वितीये वा कर्तव्यश्चाविरोधतः ॥ ६७ ॥ गत्वा श्मशानभूमिं च स्नानं कृत्वा शुचिर्भवेत् । ऊर्णासूत्रं वेष्टयित्वा पवित्रीं परिधाय च ॥ ६८ ॥ दद्याच्छ्मशानवासिभ्यस्ततो मांसबलिं सुतः । यमाय त्वेति मन्त्रेण तिस्रः कुर्यात्परिक्रमाः ॥ ६९ ॥ ततो दुग्धेन चाभ्युक्ष्य चितास्थानं खगेश्वर । जलेन सेचयेत्पश्चादुद्धरेदस्थिवृन्दकम् ॥ ७० ॥ संस्थाप्य मृन्मये पात्रे श्राद्धं कृत्वा पलाशपत्रेषु क्षालयेद् दुग्धवारिभिः ।

परिक्रमा करे ॥ ६९ ॥ हे गरुड़ ! फिर चिता के स्थान पर दूध छिड़ककर फिर जल छिड़के और अस्थियों को उठावे ॥ ७० ॥ उनको ढाक के पत्तों में रखकर दूध और जल से धोवे फिर उनको मिट्टी के पात्र में रखकर

विधि से श्राद्ध करे ॥ ७१ ॥ तिकोना मंडल बनाकर गोबर से लीपे और दक्षिणाभिमुख होकर तीनों दिशाओं में तीन पिण्ड देवे ॥ ७२ ॥ फिर चिता की भस्म इकट्ठी करके वहाँ तिपाई रक्खे फिर उस पर जल से भरा खुले मुख का घट स्थापन करे ॥ ७३ ॥ फिर चावल पकाकर उसमें दही, घी और मिष्ठान्न मिलावे और विधि

कुर्याद्यथाविधि ॥ ७१ ॥ त्रिकोणं स्थण्डिलं कृत्वा गोमयेनोपलेपितम् । दक्षिणाभिमुखो दिक्षु दद्यात्पिण्डत्रयं त्रिषु ॥ ७२ ॥ पुञ्जीकृत्य चिताभस्म तत्र धृत्वा त्रिपादुकाम् । स्थापयेत्तत्र सजलमनाच्छाद्य मुखं घटम् ॥ ७३ ॥ ततस्तण्डुलपाकेन दधिघृतसमन्वितम् । बलिं प्रेताय सजलं दद्यान्मिष्टं यथाविधि ॥ ७४ ॥ पदानि दश पञ्चैव चोत्तरस्यां दिशि व्रजेत् । गर्तं विधाय तत्रास्थिपात्रं संस्थापयेत्खग ॥ ७५ ॥ तस्योपरि ततो दद्यात्पिण्डं

से प्रेत के लिए जल के साथ उसकी बलि देवे ॥ ७४ ॥ हे गरुड़ ! फिर उत्तर दिशा में दश पाँच कदम चलकर एक गड्ढा खोदे और उसमें उन अस्थियों को रक्खे ॥ ७५ ॥ फिर उसके ऊपर दाहार्तिनाशक पिण्ड

देवे । तदनन्तर गढ़े से उस अस्थिपात्र को निकालकर जलाशय के पास ले जावे ॥ ७६ ॥ वहाँ दूध और जल से बार-बार हड्डियों को धोकर चन्दन से या अधिकतर कुंकुम से उनको चर्चे ॥ ७७ ॥ फिर संपुट या थैली में रखकर हृदय और मस्तक में लगाकर परिक्रमा करके गंगाजी में छोड़ देवे ॥ ७८ ॥ दश दिन के भीतर

दाहार्तिनाशकम् । गर्ताद्दुद्धृत्य तत्पात्रं नीत्वा गच्छेज्जलाशयम् ॥ ७६ ॥ तत्र प्रक्षालयेद्दुग्धजलादस्थि पुनः पुनः । चर्चयेच्चन्दनेनाथ कुंकुमेन विशेषतः ॥ ७७ ॥ धृत्वा सम्पुटके तानि कृत्वा च हृदि मस्तके । परिक्रम्य नमस्कृत्यं गङ्गामध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ७८ ॥ अन्तर्दशाहं यस्यास्थि गङ्गा-तोये निमज्जति । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥ ७९ ॥ याव-दस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीं

जिसकी हड्डियाँ गंगाजी में डूब जाती हैं उसका ब्रह्मलोक से फिर आना नहीं होता अर्थात् वह सदा ब्रह्मलोक में निवास करता है ॥ ७९ ॥ जितने वर्ष तक मनुष्य की हड्डियाँ गंगाजल में रहती हैं उतने हजार वर्ष तक

वह स्वर्गलोक में आनन्द करता है ॥ ८० ॥ गंगाजल की लहरों को छूकर पवन जब मृतक को छूता है तब ही उसके सब पाप शीघ्र छूट जाते हैं ॥ ८१ ॥ भगीरथजी अपने पूर्व पुरुषों के उद्धार के लिए बड़ी कठिन तपस्या से गंगादेवी की आराधना कर उन्हें ब्रह्मलोक से लाये थे ॥ ८२ ॥ गंगाजी का पवित्र यश तीनों

यते ॥ ८० ॥ गङ्गाजलोर्मिं संस्पृश्य मृतकं पवनो यदा । स्पृशते पातकं तस्य सद्य एव विनश्यति ॥ ८१ ॥ आराध्य तपसोग्रेण गङ्गादेवीं भगीरथः । उद्धारार्थं पूर्वजानामानयद्ब्रह्मलोकतः ॥ ८२ ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातं गङ्गायाः पावनं यशः । या पुत्रान्सगरस्यैतान्भस्माख्यानन-यद्दिवम् ॥ ८३ ॥ पूर्वे वयसि पापानि ये कृत्वा मानवा मृताः । गङ्गायाम-स्थिपतनात्स्वर्गलोकं प्रयान्ति ते ॥ ८४ ॥ कश्चिद्व्याधो महारण्ये

लोकों में विख्यात है । गंगाजी ने भस्म हुए सगर के साठ हजार पुत्रों को स्वर्ग में पहुँचाया है ॥ ८३ ॥ जो मनुष्य पहली अवस्था में पाप करके मर गये थे उनकी हड्डियाँ गंगाजी में पड़ने से वे स्वर्गलोक में चले जाते हैं ॥ ८४ ॥ सब प्राणियों को मारनेवाला कोई व्याध बड़े वन में सिंह से मारा गया । जब तक वह नरक में

पहुँचे तब तक उसकी हड्डियाँ गंगाजी में जा गिरीं और वह सुन्दर विमान में बैठकर देवलोक में जा पहुँचा ॥ ८५-८६ ॥ इसलिए सत्पुत्र स्वयं ही अस्थियों को गंगाजी में छोड़ आवे । और अस्थिसंचय के बाद

सर्वप्राणिविहिंसकः । सिंहेन निहतो यावत्प्रयाति नरकालये ॥ ८५ ॥
तावत्कालेन तस्यास्थि गङ्गायां पतितं तदा । दिव्यं विमानमारुह्य स गतो
देवमन्दिरम् ॥ ८६ ॥ अतः स्वयं हि सत्पुत्रो गङ्गायामस्थि पातयेत् ।
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दशगात्रं समाचरेत् ॥ ८७ ॥ अथ कश्चिद्विदेशे वा
वने चोरभये मृतः । न लब्धस्तस्य देहश्चेच्छृणुयाद्यद्दिने तदा ॥ ८८ ॥
दर्भपुत्तलकं कृत्वा पूर्ववत् केवलं दहेत् । तस्य भस्म समादाय गंगातोये

ही दशगात्र करे ॥ ८७ ॥ यदि कोई विदेश में, वन में अथवा चोरों के भय से मर गया हो और उसकी देह नहीं मिली हो तो जिस दिन मरने की खबर सुने उसी दिन डाभ का पुतला बनाकर पूर्ववत् उसका दाह

करे और उसकी भस्म लेकर गंगाजी में छोड़ देवे ॥ ८८-८९ ॥ और उसी दिन से दशगात्र करना प्रारंभ कर दे। वही दिन संवत्सर आदि के श्राद्ध में ग्रहण करे ॥ ९० ॥ जो स्त्री पूरा गर्भ होने पर मर जावे तो उसका पेट चीरकर बालक को निकाल लेवे। यदि बालक मरा हो तो वहीं भूमि में गाड़ दे और स्त्री को जला

विनिक्षिपेत् ॥ ८९ ॥ दशगात्रादिकं कर्म तद्दिनादेव कारयेत्। स एव दिवसो ग्राह्यः श्राद्धे सांवत्सरादिके ॥ ९० ॥ पूर्णे गर्भे मृता नारी विदार्य जठरं तदा। बालं निष्कास्य निक्षिप्य भूमौ तामेव दाहयेत् ॥ ९१ ॥ गंगा-तीरे मृतं बालं गङ्गायामेव पातयेत्। अन्यदेशे क्षिपेद्भूमौ सप्तविंशति-मासजम् ॥ ९२ ॥ अतः परं दहेत्तस्य गंगायामस्थि निक्षिपेत्। जलकुम्भश्च

देवे ॥ ९१ ॥ यदि बालक गंगा के किनारे मरा हो तो उसे गंगाजी में ही छोड़ दे। यदि अन्य देश में बालक मरे तो उसे भूमि में गाड़ दे। सत्ताईस महीने तक के बालक को गाड़ना चाहिए ॥ ९२ ॥ इससे अधिक आयु का हो तो उसे जलाकर उसकी हड्डियाँ गंगाजी में छोड़े और उसके लिए जल का घट दे तथा बालकों को भोजन

करावे ॥ ९३ ॥ गर्भ में नष्ट हुए की क्रिया नहीं होती । मृत बालक के लिए दूध देना चाहिए तथा जल का घट और खीर का भोजन देना चाहिए ॥ ९४ ॥ कुमार अवस्था में बालक के मरने पर कुमार अवस्था के बालकों को भोजन करावे और व्रतयुक्त पौगंड अवस्था में मरने पर बालक समेत ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ९५ ॥

दातव्यं बालानामेव भोजनम् ॥ ९३ ॥ गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं मृते शिशौ । घटं च पायसं भोज्यं दद्याद्बालविपत्तिषु ॥ ९४ ॥ कुमारे च मृते बालान्कुमारानेव भोजयेत् । सबालान्भोजयेद्विप्रान्पौगण्डे सव्रते मृते ॥ ९५ ॥ मृतश्च पञ्चमादूर्ध्वमव्रतः सव्रतोऽपिवा । पायसेन गुडेनापि पिण्डान्दद्याद्दश क्रमात् ॥ ९६ ॥ एकादशं द्वादशं च वृषोत्सर्गविधिं विना । महादानविहीनं च पौगण्डे कृत्यमाचरेत् ॥ ९७ ॥ जीवमाने च पितरि

पाँच वर्ष के बाद चाहे सव्रत हो चाहे अव्रत (यज्ञोपवीत हुआ हो या नहीं हुआ हो) ही मरा हो तो गुड़ से या खीर के क्रम से दश पिण्ड देवे ॥ ९६ ॥ तथा एकादशाह और द्वादशाह के कर्म करे परंतु वृषोत्सर्ग न करे । पौगण्डावस्था में मरनेवाले की शय्यादानादि महादान से रहित क्रिया करे ॥ ९७ ॥ पौगण्डावस्था में

मरनेवाले का पिता जीता हो तो उसका सपिण्डन नहीं होता है इसलिए बारहवें दिन एकोद्दिष्ट विधि से श्राद्ध करे ॥ ९८ ॥ स्त्री और शूद्रों का तो जनेऊ के स्थान में विवाह ही कहा है। इसलिए जनेऊ या विवाह से पहले मरनेवाले सब वर्णों की आयु के समान उनकी क्रिया होती है ॥ ९९ ॥ थोड़े कर्म के प्रसंग से और

न पौगण्डे सपिण्डनम्। अतस्तस्य द्वादशाहन्येकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥ ९८ ॥ स्त्रीशूद्राणां विवाहस्तु व्रतस्थाने प्रकीर्तितः। व्रतात्प्राक्सर्ववर्णानां वयस्तुल्या क्रिया भवेत् ॥ ९९ ॥ स्वल्पात्कर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात्। स्वल्पे वयसि देहे च क्रियां स्वल्पामपीच्छति ॥ १०० ॥ किशोरे तरुणे कुर्याच्छय्यावृषमखादिकम्। पददानं महादानं गोदानमपि दापयेत् ॥ १०१ ॥ यतीनां चैव सर्वेषां न दाहो नोदकक्रिया। दशगात्रादिकं तेषां न

थोड़े से विषय-बंधनों से तथा शरीर में थोड़ी आयु होने से थोड़ी ही क्रिया की इच्छा होती है ॥ १०० ॥ किशोर और तरुण अवस्था में शय्यादान और वृषोत्सर्ग करे तथा पददान, महादान और गोदान देवे ॥ १०१ ॥

सब प्रकार के यतियों का दाह, जल-क्रिया और दशगात्र आदि पुत्रों को न करना चाहिए ॥ १०२ ॥ दण्डमात्र ग्रहण करने से मनुष्य नारायण के तुल्य हो जाता है और त्रिदण्ड के ग्रहण से वे प्रेत नहीं होते हैं ॥ १०३ ॥ अपने स्वरूप के अनुभव से ज्ञानी लोग सदा मुक्त होते हैं इस कारण ये वे दिये हुए पिण्डों की इच्छा नहीं

कर्त्तव्यं सुतादिभिः ॥ १०२ ॥ दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । त्रिदण्डग्रहणात्तेषां प्रेतत्वं नैव जायते ॥ १०३ ॥ ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ताः स्वरूपानुभवेन हि। अतस्ते तु प्रदत्तानां पिण्डानां नैव कांक्षिणः ॥ १०४ ॥ तस्मात्पिण्डादिकं तेषां न तु नोदकमाचरेत् । तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं पितृभक्त्या समाचरेत् ॥ १०५ ॥ हंसं परमहंसं च कुटीचकबह्वदकौ । एतान्संन्यासिनस्तार्क्ष्य पृथिव्यां स्थापयेन्मृतान् ॥ १०६ ॥ गंगादीनामभावे हि

करते ॥ १०४ ॥ इसलिए उनकी पिण्डदान और जलदान आदि क्रिया न करे। परंतु पितृभक्ति से तीर्थश्राद्ध और गयाश्राद्ध करे ॥१०५॥ हे गरुड़ ! हंस, परमहंस, कुटीचक, बहूदक इन चार प्रकार के संन्यासियों को मरने पर भूमि में स्थापन करना चाहिए ॥ १०६ ॥ जहाँ गंगा आदि नदियाँ न हों वहाँ ही भूमि में स्थापन

करना कहा है। जहाँ महानदियाँ हों वहाँ उन्हीं में संन्यासियों का प्रवाह करना चाहिए ॥ १०७ ॥ दशवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

गरुड़जी पूछते हैं कि हे भगवन् ! मुझे दशगात्र की विधि बताइए और उसके करने से क्या अच्छाई

पृथिव्यां स्थापनं स्मृतम्। यत्र सन्ति महानद्यस्तदा तास्वेव निक्षिपेत् ॥ १०७ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे दाहास्थिसंचयकर्मनिरूपणो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गरुड उवाच ॥ दशगात्रविधिं ब्रूहि कृते किं सुकृतं भवेत्। पुत्राभावे तु कः कुर्यादिति मे वद केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि दशगात्रविधिं तव। यद्विधाय च सत्पुत्रो मुच्यते पैतृकादृणात् ॥ २ ॥

होती है तथा पुत्र न हो तो कौन करे यह भी मुझे बताइए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! दशगात्र की विधि तुमसे कहता हूँ, सुनो। उसके करने से सत्पुत्र पितरों के ऋण से छूट जाता है ॥ २ ॥

शोक को छोड़कर पुत्र सात्त्विक वृत्ति धारण करे एवं पिता के लिए पिण्डदानादि क्रिया करे परन्तु आँसू न गिरावे ।। ३ ।। क्योंकि बाँधवों के रोने से गिरे हुए आँसू और श्लेष्मा (खखार) को विवश हो प्रेत खाता है इसलिए निरर्थक शोक से रोना न चाहिए ।। ४ ।। अगर मनुष्य हजार वर्ष तक भी शोक करता

पुत्रः शोकं परित्यज्य धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् । पितुः पिण्डादिकं कुर्यादश्रुपातं न कारयेत् ॥ ३ ॥ श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः अतो न रोदितव्यं हि तदा शोकान्निरर्थकात् ॥ ४ ॥ यदि वर्षसहस्राणि शोचतेऽहर्निशं नरः । तथापि नैव निधनं गतो दृश्येत कर्हिचित् ॥ ५ ॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्यार्थे न शोकं कारयेद्बुधः ॥ ६ ॥ नहि कश्चिदुपायोऽस्ति दैवो वा मानुषोऽपि

रहे तो भी मरा हुआ कभी नहीं दिखाई देगा ।। ५ ।। जो पैदा होता है वह अवश्य मरता है और जो मरता है वह अवश्य पैदा होता है । इससे परिहाररहित कारण के लिए बुद्धिमान् शोक न करे ।। ६ ।। दैवी

अथवा मानुषिक कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे मरा हुआ प्राणी यहाँ फिर लौट आवे ॥ ७ ॥ अवश्य होनेवाले भावों का यदि कुछ उपाय होता तो राजा नल, रामचन्द्र और युधिष्ठिर ये दुःख में न फँसते ॥ ८ ॥ किसी का किसी के साथ अधिक सहवास नहीं होता है । अपने शरीर के साथ ही बहुत समय तक सहवास

वा । यो हि मृत्युवशं प्राप्तो जन्तुः पुनरिहाव्रजेत् ॥ ७ ॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि । तदा दुःखैर्न युज्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥ ८ ॥ नायमत्यन्तसंवासः कस्यचित्केनचित् सह । अपि स्वेन शरीरेण किमुतान्यैः पृथग्जनैः ॥ ९ ॥ यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य विश्रमेत् । विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः ॥ १० ॥ यत्प्रातः संस्कृतं भोज्यं

नहीं रहता है तो अन्य जनों के लिए क्या कहना है ॥ ९ ॥ जैसे कोई मुसाफिर छाया का आश्रय लेकर विश्राम करे और फिर विश्राम करके वहाँ से चला जाता है इसी प्रकार संसार में प्राणियों का समागम है ॥ १० ॥ प्रातःकाल का बनाया हुआ भोजन जैसे शाम को नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उस अन्नरस

से पुष्ट शरीर में नित्यता कहाँ है ? ॥ ११ ॥ विचार को इस दुःख की औषधि समझकर अज्ञान से उत्पन्न शोक को छोड़कर पुत्र क्रिया करे ॥ १२ ॥ पुत्र न हो तो स्त्री और स्त्री न हो तो भाई क्रिया-कर्म करे अथवा

सायं तच्च विनश्यति । तदन्नरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥ ११ ॥ भैषज्यमेतद्दुःखस्य विचारं परिचिन्त्य च । अज्ञानप्रभवं शोकं त्यक्त्वा कुर्यात्क्रियांसुतः ॥ १२ ॥ पुत्राभावेवधूः कुर्याद्भार्याभावे च सोदरः । शिष्यो वा ब्राह्मणस्यैव सपिण्डो वा समाचरेत् ॥ १३ ॥ ज्येष्ठस्य वा कनिष्ठस्य भ्रातुः पुत्रैश्च पौत्रकैः । दशगात्रादिकं कार्यं पुत्रहीने नरे खग ॥ १४ ॥ भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो

ब्राह्मण का शिष्य या सपिण्ड क्रिया-कर्म करे ॥ १३ ॥ हे गरुड़ ! पुत्रहीन मनुष्य के छोटे भाई या बड़े भाई के पुत्र-पौत्रों को उसका दशगात्र आदि कर्म करना चाहिए ॥ १४ ॥ एक पिता से उत्पन्न भाइयों में से

किसी एक के भी पुत्र हो तो वे सब उस पुत्र से पुत्रवाले हैं ऐसा मनुजी ने कहा है ।। १५ ।। एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियों में से एक के भी पुत्र हो तो वे सब स्त्रियाँ उस पुत्र से पुत्रवाली होती हैं ।। १६ ।। सब पुत्रहीनों के लिए मित्र को पिण्ड देना चाहिए । यदि इन सबमें से कोई भी न हो तो पुरोहित को पिण्डादि

मनुरब्रवीत् ॥ १५ ॥ पत्न्यश्च बह्व्य एकस्य चैका पुत्रवती भवेत् । सर्वास्ताः पुत्रवत्यः स्युस्तेनैकेन सुतेन हि ॥ १६ ॥ सर्वेषां पुत्रहीनानां मित्रं पिण्डं प्रदापयेत् । क्रियालोपो न कर्तव्यः सर्वाभावे पुरोहितः ॥ १७ ॥ स्त्री वाथ पुरुषः कश्चिदिष्टस्य कुरुते क्रियाम् । अनाथप्रेतसंस्कारात्कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ १८ ॥ पितुः पुत्रेण कर्तव्यं दशगात्रादिकं खग । मृते ज्येष्ठेऽप्यति-स्नेहान्न कुर्वीत पिता सुते ॥ १९ ॥ बहवोऽपि यदा पुत्रा विधिमेकः समा-

करना चाहिए । क्रिया का लोप न करना चाहिए ।। १७ ।। स्त्री अथवा पुरुष कोई भी मित्र की क्रिया करता है वह अनाथ प्रेत के संस्कार करने से करोड़ यज्ञों का फल पाता है ।। १८ ।। हे गरुड़ ! पुत्र को पिता के दशगात्र आदि कर्म करना चाहिए, और ज्येष्ठ पुत्र के मरने पर पिता अत्यन्त स्नेह से क्रिया न करे ।। १९ ।।

यदि किसी के बहुत से पुत्र हों तो उनमें से एक ही को दशगात्र सपिण्डन और अन्य सोलह श्राद्ध करना चाहिए ॥ २० ॥ यदि सब भाइयों में धन नहीं बँटा हो तो एकही को सांवत्सरिक आदि श्राद्ध करना चाहिए और पिता का धन बँट गया हो और सब भाई अलग-अलग हो गये हों तो सांवत्सरिक आदि श्राद्ध अलग-

चरेत् । दशगात्रं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश ॥ २० ॥ एकेनैव तु कार्याणि अविभक्तधनेष्वपि । विभक्तैस्तु पृथक्कार्यं श्राद्धं सांवत्सरादिकम् ॥ २१ ॥ तस्माज्ज्येष्ठः सुतो भक्त्या दशगात्रं समाचरेत् । एकभोजी भूमिशायी भूत्वा ब्रह्मपरः शुचिः ॥ २२ ॥ सप्तवारं परिक्रम्य धरणीं यत्फलं लभेत् । क्रियां कृत्वा पितुर्मातुस्तत्फलं लभते सुतः ॥ २३ ॥ आरभ्य दशगात्रं च यावद्वै वार्षिकं भवेत् । तावत्पुत्रः क्रियां कुर्वन् गयाश्राद्धफलं

अलग करना चाहिए ॥ २१ ॥ इसलिए बड़ा पुत्र ही भक्त से दशगात्र आदि कर्म करे । एक बार भोजन करे भूमि में सोवे तथा शुद्ध हो ब्रह्म में तत्पर होवे ॥ २२ ॥ पृथ्वी की सात बार परिक्रमा करने से जो फल होता है वही फल माता-पिता की क्रिया करने से पुत्र को होता है ॥ २३ ॥ दशगात्र से आरंभ करके

बरसी तक जो एक ही पुत्र सब क्रिया करता है वह गयाश्राद्ध का फल पाता है ॥ २४ ॥ कुएँ, तालाब, बगीचे, तीर्थ और मन्दिर में दोपहर के समय जाकर बिना मंत्र स्नान करे ॥ २५ ॥ शुद्ध होकर पीपल के वृक्ष के नीचे दक्षिणाभिमुख बैठकर वहाँ वेदी बनावे और उसको गोबर से लीपे ॥ २६ ॥ उस पर कुशा का

लभेत् ॥ २४ ॥ कूपे तडागे वाऽऽरामे तीर्थे देवालयेऽपि वा । गत्वा मध्यमयामे तु स्नानं कुर्यादमन्त्रकम् ॥ २५ ॥ शुचिर्भूत्वा वृक्षमूले दक्षिणाभिमुखः स्थितः । कुर्याच्च वेदिकां तत्र गोमयेनोपलिप्य ताम् ॥ २६ ॥ तस्यां पर्णे दर्भमयं स्थापयेत्कौशिकं द्विजम् । तं पाद्यादिभिरभ्यर्च्य प्रणमेदतसीति च ॥ २७ ॥ तदग्रे च ततो दत्त्वा पिण्डार्थं कौशमासनम् । तस्योपरि ततः पिण्डं नामगोत्रोपकल्पितम् ॥ २८ ॥ दद्यात्तण्डुलपाकेन

ब्राह्मण स्थापित कर उसकी पाद्य-अर्घ्य आदि से पूजा कर 'अतसीपुष्पसंकाशं' इत्यादि मंत्र से प्रणाम करे ॥ २७ ॥ उसके आगे पिण्ड के लिए कुशा का आसन रखकर उस पर नाम-गोत्र का उच्चारण कर पिण्ड देवे ॥ २८ ॥ पके हुए चावलों को या जौ के आटे का पिण्ड बनाकर पुत्र देवे और उस पर खस, चन्दन,

भँगरा और फूल चढ़ावे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल और दक्षिणा देवे ॥ २९ ॥ पानी और दूध के पात्र में कौओं के लिए अन्न देवे और वर्धमान जल की अंजुली देवे और कहे कि "अमुकनाम्ने प्रेताय मद्दतमुपतिष्ठतु" अमुक नामवाले प्रेत के लिए मेरा दिया हुआ प्राप्त हो ॥ ३० ॥ अन्न, वस्त्र, जल, द्रव्य और अन्य

यवपिष्टेन वा सुतः । उशीरं चन्दनं भृङ्गराजपुष्पं निवेदयेत् ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं मुखवासं च दक्षिणाम् ॥ २९ ॥ काकान्नं पयसोः पात्रे वर्धमान-जलाञ्जलीन् । प्रेतायामुकनाम्ने च मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥ ३० ॥ अन्नं वस्त्रजलं द्रव्यमन्यद्वा दीयते च यत् । प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्त्यदायकम् ॥ ३१ ॥ तस्मादाद्दिदिनादूर्ध्वं प्राक्सपिण्डीविधानतः । योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्दं समुच्चरेत् ॥ ३२ ॥ प्रथमेऽहनि यत्पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम् ।

जो वस्तु प्रेत शब्द से दी जाती है वह मरे हुए के लिए अनन्त फलदायक होती है ॥ ३१ ॥ इसलिए पहले दिन से लेकर सपिण्डी के दिन तक पुरुष और स्त्री के लिए प्रेतशब्द का उच्चारण करे ॥ ३२ ॥ पहले दिन

जिस विधि से पिण्ड दिया जाता है उसी विधि से और उसी अन्न से नव पिण्ड देवे ॥ ३३ ॥ नवें दिन मृतक की स्वर्गकामना के लिए सब कुटुम्बियों को तैलाभ्यङ्ग करना चाहिए ॥ ३४ ॥ फिर बाहर स्नान करके दूब और लावा (खीर) लेकर स्त्री को आगे कर मृतक स्थान पर जावे ॥ ३५ ॥ और कहे कि दूब के समान

तेनैव विधिनान्नेन नव पिण्डान् प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥ नवमे दिवसे चैव सपिण्डैः सकलैर्जनैः । तैलायभ्ङ्गः प्रकर्तव्यो मृतकस्वर्गकाम्यया ॥ ३४ ॥ बहिः स्नात्वा गृहीत्वा च दूर्वालाजसमन्विताः । अग्रतः प्रमदां कृत्वा समागच्छेन्मृतालयम् ॥ ३५ ॥ दूर्वावत्कुलवृद्धिस्ते लाजा इव विकासता । एवमुक्त्वा त्यजेद्गेहे लाजान्दूर्वासमन्वितान् ॥ ३६ ॥ दशमेऽहनि मांसेन पिण्डं दद्यात्खगेश्वर। माषेण तन्निषेधाद्वा कलौ न पलपैतृकम् ॥ ३७ ॥ दशमे

तुम्हारे कुल की वृद्धि हो और लावों (खीलों) के समानकुल का विकास हो ऐसा कहकर दूब और खीलों को मिलाकर उस स्थान पर छोड़ देवे ॥ ३६ ॥ हे खगेश्वर गरुड़ ! दशवें दिन मांस का पिण्ड देवे परन्तु कलियुग में पितरों को मांस नहीं दिया जाता है, इस निषेध से उड़द के आटे का पिण्ड देवे ॥ ३७ ॥ दशवें

दिन भाई-बन्धु हजामत या मुण्डन करावे और कर्म करनेवाला पुत्र फिर उस दिन मुण्डन करावे ॥ ३८ ॥ दश दिन तक एक-एक ब्राह्मण मिष्टान्न से जिमावे और प्रेत की मोक्ष के लिए भगवान् का ध्यान कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे ॥ ३९ ॥ कि अलसी के फल के तुल्य कान्तिवाले, पीले वस्त्र धारण करनेवाले अच्युत

दिवसे क्षौरं वान्धवानां च मुण्डनम् । क्रियाकर्तुः सुतस्यापि पुनर्मुण्डनमाचरेत् ॥ ३८ ॥ मिष्टान्नैर्भोजयेदेकं दिनेषु दशसु द्विजम् । प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च हरिं ध्यात्वा कृताञ्जलिः ॥ ३९ ॥ अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् । ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ॥ ४० ॥ अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो

और गोविन्दजी को जो नमस्कार करते हैं उनको भय नहीं होता है ॥ ४० ॥ आदि और अन्त से रहित, शंख, चक्र और गदा को धारण करनेवाले, क्षयरहित और कमलनयन भगवान् प्रेत को मोक्ष

देनेवाले हों ॥ ४१ ॥ इस प्रकार श्राद्ध के अन्त में प्रतिदिन प्रार्थना के मंत्र पढ़े । फिर स्नान करके घर पर जावे और गो-ग्रास देकर भोजन करे ॥ ४२ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

गरुड़जी पूछते हैं कि हे सुरेश्वर, भगवन् ! एकादशाह के दिन की विधि भी कहिए । तथा हे जगदी-

भव ॥ ४१ ॥ इति संप्रार्थनामन्त्रं श्राद्धान्ते प्रत्यहं पठेत् । स्नात्वा गत्वा गृहे दत्त्वा गोग्रासं भोजनं चरेत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे दशगात्रविधिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गरुड उवाच ॥ एकादशदिनस्यापि विधिं ब्रूहि सुरेश्वर । वृषोत्सर्गविधानं च वद मे जगदीश्वर ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एकादशेऽह्नि गन्तव्यं प्रातरेव जलाशये । और्ध्वदेहिक्रिया सर्वा करणीया प्रयत्नतः ॥ २ ॥

श्वर ! वृषोत्सर्ग का विधान भी मुझसे कहिए ॥ १ ॥ भगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! ग्यारहवें दिन प्रातःकाल ही जलाशय (कुआँ, नदी, तालाब) पर जाकर संपूर्ण और्ध्वदेहिक क्रिया यत्नपूर्वक करना चाहिए ॥ २ ॥

वेद और शास्त्र के जाननेवाले ब्राह्मणों को निमंत्रण देकर हाथ जोड़ नमस्कार करे और प्रेत की मुक्ति के लिए प्रार्थना करे ॥ ३ ॥ आचार्य भी स्नान और सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य नियम करके पवित्र होवे फिर एकादशाह के दिन का विधान विधिपूर्वक करे ॥ ४ ॥ नाम और गोत्र का उच्चारण कर दश दिन तक

निमन्त्रयेद्ब्राह्मणांश्च वेदशास्त्रपरायणान् । प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥ स्नानसंध्यादिकं कृत्वा ह्याचार्योऽपि शुचिर्भवेत् । विधानं विधिवत्कुर्यादेकादशदिनोचितम् ॥ ४ ॥ अमन्त्रं कारयेच्छ्राद्धं दशाहं नामगोत्रतः । एकादशेऽह्नि प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम् ॥ ५ ॥ सौवर्णं कारयेद्विष्णुं ब्रह्माणं रौप्यकं तथा । रुद्रस्ताम्रमयः कार्यो यमो लोहमयः खग ॥ ६ ॥ पश्चिमे विष्णुकलशं गंगोदकसमन्वितम् । तस्योपरि

विना मंत्र के श्राद्ध करे । ग्यारहवें दिन मंत्र पढ़कर प्रेत को पिण्डदान देना चाहिए ॥ ५ ॥ सोने के विष्णुजी, चाँदी के ब्रह्माजी, ताँबे के शिवजी और लोहे के यमराज बनावे ॥ ६ ॥ पश्चिम दिशा में गंगाजल से भरा

विष्णु-कलश स्थापन कर उस पर पीले वस्त्र से लपेटी हुई विष्णुजी की मूर्ति स्थापन करे ॥ ७ ॥ पूर्व दिशा में दूध और जल से भरा ब्रह्मा का कलश रखकर उस पर सफेद वस्त्र से लपेटी ब्रह्मा की मूर्ति स्थापन करे ॥ ८ ॥ उत्तर दिशा में शहद और घी से भरा रुद्रकलश रखकर उस पर लाल वस्त्र से लपेटी रुद्रजी

न्यसेद्विष्णुं पीतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ७ ॥ पूर्वे तु ब्रह्मकलशं क्षीरोदकसमन्वितम् । ब्रह्माणं स्थापयेत्तत्र श्वेतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ८ ॥ उत्तरस्यां रुद्रकुम्भं पूरितं मधुसर्पिषा । श्रीरुद्रं स्थापयेत्तत्र रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ॥ ९ ॥ दक्षिणस्यां यमघटमिन्द्रोदकसमन्वितम् । कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य तस्योपरि यमं न्यसेत् ॥ १० ॥ मध्ये तु मण्डलं कृत्वा स्थापयेत् कौशिकं सुतः । दक्षिणाभिमुखो भूत्वाऽपसव्येनं च तर्पयेत् ॥ ११ ॥ विष्णुं विधिं शिवं धर्मं वेद-

की मूर्ति स्थापन करे ॥ ९ ॥ दक्षिण की ओर वर्षा के जल से भरा यमघट रखकर उस पर काले कपड़े से लपेटी हुई यम की मूर्ति स्थापन करे ॥ १० ॥ तथा इन चारों के बीच में कलश स्थापन कर उस पर कुशा की प्रेत की मूर्ति स्थापन करे और दक्षिणाभिमुख हो अपसव्य से तर्पण करे ॥ ११ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव

और धर्मराज का वेदमंत्रों से तर्पण करे। फिर होम करके दशघट आदि श्राद्ध करे ॥ १२ ॥ इसके बाद पितरों को तारने के लिए गोदान देवे। और कहे कि हे माधव ! मैंने जो यह गौ दी है इससे आप प्रसन्न हों ॥ १३ ॥ फिर उस प्राणी के भोगे हुए (पहिने हुए) जो वस्त्र, आभूषण, वाहन, घृत से पूर्ण काँसी

मन्त्रैश्च तर्पयेत्। होमं कृत्वाचरेत्पश्चाच्छ्राद्धं दशघटादिकम् ॥ १२ ॥ गोदानं च ततो दद्यात्पितॄणां तारणाय वै। गौरेषा हि मया दत्ता प्रीतये तेऽस्तु माधव ॥ १३ ॥ उपभुक्तं तु तस्यासीद्वस्त्रभूषणवाहनम्। घृतपूर्णं कांस्यपात्रं सप्तधान्यं तदीप्सितम् ॥ १४ ॥ तिलाद्यष्टमहादानमन्तकाले न चेत्कृतम्। शय्यासमीपं धृत्वैतद्दानं तस्याः प्रदापयेत् ॥ १५ ॥ प्रक्षाल्य विप्रचरणौ पूजयेदम्बरादिभिः। सिद्धान्नं तस्य दातव्यं

का पात्र, सतनजा और जो उसको प्यारी वस्तु हो वह वस्तु और अन्तकाल में तिल आदि आठ महादानों में से जो चीजें दान न की हों वे सब वस्तुएं शय्या के पास रखकर उनका दान करे ॥ १४-१५ ॥ ब्राह्मण के चरण धोकर वस्त्र आदि से उसकी पूजा करे और लड्डू, पुआ, दूध और अन्य पके हुए अन्न भोजन के

लिए देवे ॥ १६॥ फिर पुत्र शय्या पर सोने की पुरुष की मूर्ति रखकर उसकी पूजा करे और हर प्रकार मृतक की शय्या का दान करे ॥ १७ ॥ हे विप्र ! प्रेत की मूर्ति से युक्त और सब सामग्री के साथ यह प्रेतशय्या तुम्हारे अर्पण करता हूँ ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर कुटुम्बी आचार्य ब्राह्मण को शय्या देवे और परिक्रमा तथा

मोदकापूपकाः पयः ॥ १६ ॥ स्थापयेत्पुरुषं हैमं शय्योपरि तदा सुतः । पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥ १७ ॥ प्रेतस्य प्रतिमायुक्ता सर्वोपकरणैर्वृता । प्रेतशय्या मया ह्येषा तुभ्यं विप्र निवेदिता ॥ १८ ॥ इत्याचार्याय दातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ १९ ॥ एवं शय्याप्रदानेन श्राद्धेन नवकादिना । वृषोत्सर्ग-विधानेन प्रेतो याति परां गतिम् ॥ २० ॥ एकादशेऽह्नि विधिना वृषोत्सर्ग

प्रणाम करके विसर्जन करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार नव आदि श्राद्ध से, शय्यादान से और वृषोत्सर्ग करने से प्रेत मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ ग्यारहवें दिन विधि से वृषोत्सर्ग करे । हीनाङ्ग, रोगी और बालक

को छोड़कर लक्षणयुक्त बछड़ा छोड़ना चाहिए ॥ २१ ॥ ब्राह्मण के लिए लाल आँख, पिंगलवर्ण तथा गला, खुर और सींग लाल, सफेद पेट और काली पीठ का साँड़ छोड़ना कहा है ॥ २२ ॥ अच्छे चिकने लाल वर्ण का क्षत्रिय के लिए, पीले रंग का वैश्य के लिए और काले रंग का शूद्र के लिए साँड़ छोड़ना कहा है ॥ २३ ॥

समाचरेत् । हीनाङ्गं रोगिणं बालं त्यक्त्वा कुर्यात्सलक्षणम् ॥ २१ ॥ रक्ताक्षः पिङ्गलो यस्तु रक्तः शृंगे गले खुरे । श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ २२ ॥ सुस्निग्धवर्णो यो रक्तः क्षत्रियस्य विधीयते । पीतवर्णश्च वैश्यस्य कृष्णः शूद्रस्य शस्यते ॥ २३ ॥ यस्तु सर्वांगपिंगः स्याच्छ्वेतः पुच्छे पदेषु च । स पिंगो वृष इत्याहुः पितॄणां प्रीतिवर्द्धनः ॥ २४ ॥ चरणास्तु मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः । लाक्षारससवर्णो यः स नील इति

जिसका सब अंग भूरा हो और पूँछ तथा पैर सफेद हों वह पिङ्गवर्ण कहलाता है। यही पितरों को प्यारा होता है ॥ २४ ॥ जिस साँड़ के चारों पैर, मुख और पूँछ सफेद हों और सब देह का वर्ण लाख के रस

के समान हो वह नीलवर्ण कहा जाता है ॥ २५ ॥ जो साँड़ रंग में तो लाल हो और मुख-पूछ पाण्डुर वर्ण हों और खुर तथा सींग पिङ्गवर्ण हों वह रक्त-नील कहलाता है ॥ २६ ॥ सब अंग में एक ही वर्ण हो और पूँछ तथा खुर में पिङ्गवर्ण हो उसको नील-पिङ्ग कहते हैं। यह पूर्वजों का उद्धार करनेवाला है ॥ २७ ॥

कीर्तितः ॥ २५ ॥ लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः। पिंगः खुरविषाणाभ्यां रक्तनीलो निगद्यते ॥ २६ ॥ सर्वांगेष्वेकवर्णो यः पिंगः पुच्छे खुरेषु यः। तं नीलपिंगमित्याहुः पूर्वजोद्धारकारकम् ॥ २७ ॥ पारावतसवर्णस्तु ललाटे तिलकान्वितः। तं बभ्रुनीलमित्याहुः पूर्णं सर्वांगशोभनम् ॥ २८ ॥ नीलः सर्वशरीरेषु रक्तश्च नयनद्वये। तमप्याहुर्महानीलं नीलः पञ्चविधः स्मृतः ॥ २९ ॥ अवश्यमेव मोक्तव्यो न स धार्यो

जिसका कबूतर का सा वर्ण हो और माथे में तिलक हो तथा सब अंग शोभायुक्त व पूर्ण हों वह बभ्रु-नील कहा जाता है ॥ २८ ॥ सब शरीर में नीलवर्ण हो और दोनों आँखें लाल हों उसको महानील कहते हैं। नील के पाँच भेद होते हैं ॥ २९ ॥ साँड़ को अवश्य छोड़ देना चाहिए, घर में नहीं रखना चाहिए। उसी

के लिए यह पुरानी कहावत चली आती है कि ॥ ३० ॥ बहुत से पुत्रों की इसलिए इच्छा की जाती है कि उनमें से कोई भी एक गयाजी को जायगा, या गौरी कन्या का (आठ वर्ष की कन्या की गौरी संज्ञा है) विवाह करेगा अथवा नीलरंग का बैल छोड़ेगा ॥ ३१ ॥ वही पुत्र मानने योग्य है जो वृषोत्सर्ग करे या गयाजी

गृहे भवेत्। तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी ॥ ३० ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। गौरीं विवाहयेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ३१ ॥ स एव पुत्रो मन्तव्यो वृषोत्सर्गं तु यश्चरेत्। गयायां श्राद्धदाता च योऽन्यो विष्ठासमः किल ॥ ३२ ॥ रौरवादिषु ये केचित् पच्यन्ते यस्य पूर्वजाः। वृषोत्सर्गेण तान्सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम् ॥ ३३ ॥ वृषोत्सर्गं किलेच्छन्ति पितरः स्वर्गता अपि। अस्मद्वंशे सुतः कोऽपि वृषोत्सर्गं

में श्राद्ध करे। इसके अतिरिक्त पुत्र विष्ठा के समान है ॥ ३२ ॥ जिसके पूर्वज रौरवादि नरकों में पड़े हों उन सबको पुत्र वृषोत्सर्ग करके इक्कीस पीढ़ी तक तार देता है ॥ ३३ ॥ स्वर्ग में गए हुए पितर भी वृषोत्सर्ग

की इच्छा करते हैं कि हमारे वंश में कोई पुत्र वृषोत्सर्ग करेगा ॥ ३४ ॥ तो उसके छोड़ने से हम सब परम-गति को पावेंगे, क्योंकि सब यज्ञों में वृषोत्सर्ग यज्ञ ही हम सबको मुक्त करेगा ॥ ३५ ॥ इसलिए पितरों की मुक्ति के लिए वृषोत्सर्ग-यज्ञ करना चाहिए। यत्न के साथ शास्त्रोक्त विधि से सब कृत्य करने योग्य

करिष्यति ॥ ३४ ॥ तदुत्सर्गाद्वयं सर्वे यास्यामः परमां गतिम् । सर्वयज्ञेषु चास्माकं वृषयज्ञो हि मुक्तिदः ॥ ३५ ॥ तस्मात्पितृविमुक्त्यर्थं वृषयज्ञं समाचरेत् । यथोक्तेन विधानेन कुर्यात्सर्वं प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥ ग्रहाणां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैश्च पूजनम् । होमं कुर्याद्यथाशास्त्रं पूजयेद्वृषमातुरः ॥ ३७॥ वत्सं वत्सीं समानाय्य बध्नीयात्कङ्कणं तयोः । वैवाह्येन विधानेन स्तम्भ-मारोपयेत्तदा ॥ ३८ ॥ स्नापयेच्च वृषं वत्सीं रुद्रकुम्भोदकेन च । गन्ध-

है ॥ ३६ ॥ आतुर पुरुष ग्रहों का स्थापन करके उन-उनके मन्त्रों से ग्रहों का पूजन करे और शास्त्रोक्त विधि से होम करके वृष की पूजा करे ॥ ३७ ॥ बछड़ा और बछड़ी मँगवा कर उन दोनों के कंकण बाँधे और विवाह की विधि से स्तंभ गाड़े ॥ ३८ ॥ रुद्रकुंभ के जल से वृष को और बछड़ी को स्नान कराकर

रोली-चावल और फूलों से पूजा करके परिक्रमा करे ॥ ३९ ॥ दहिने पसवाड़ के पुट्ठे पर त्रिशूल और बाईं ओर चक्र लगावे फिर उसे छोड़कर हाथ जोड़े तथा पुत्र यह मंत्र पढ़े ॥ ४० ॥ कि तुम ब्रह्मा के बनाये हुए वृषरूप से धर्म हो। तुम्हारे छोड़ने के दान से तुम संसाररूपी समुद्र से तार दो ॥ ४१ ॥ इस मंत्र से

माल्यैश्च संपूज्य कारयेच्च प्रदक्षिणाम् ॥ ३९ ॥ त्रिशूलं दक्षिणे पार्श्वे वामे चक्रं प्रदापयेत्। तं विमुच्याञ्जलिं बद्ध्वा पठेन्मन्त्रमिमं सुतः ॥ ४० ॥ धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा। तवोत्सर्गप्रदानेन तारयस्व भवार्णवात् ॥ ४१ ॥ इति मन्त्रान्नमस्कृत्य वत्सं वत्सीं समुत्सृजेत्। वरदोऽहं सदा तस्य प्रेतमोक्षं ददामि च ॥ ४२ ॥ तस्मादेष प्रकर्त्तव्यस्तत्फलं जीवतो भवेत्। अपुत्रस्तु स्वयं कृत्वा सुखं याति परां गतिम् ॥ ४३ ॥ कार्त्तिकादौ

नमस्कार करके वृष और बछिया को छोड़ दे। भगवान् कहते हैं कि सदा वर देनेवाला मैं प्रेत को मोक्ष देता हूँ ॥ ४२ ॥ इससे यह वृषोत्सर्ग करना चाहिए। इसका जीते ही फल मिल जाता है। जो पुत्ररहित हो वह स्वयं वृषोत्सर्ग करके सुख से परमगति को पाता है ॥ ४३ ॥ कार्त्तिक आदि शुभ मासों में अथवा उत्तरायण

सूर्य के रहते शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष में, द्वादशी आदि तिथियों में ॥ ४४ ॥ तथा सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण में, पुण्य तीर्थ में, दोनों (उत्तरायण-दक्षिणायन) अयनों में और दोनों विषुवत्संक्रान्तियों में वृषोत्सर्ग करना चाहिए ॥ ४५ ॥ शुभ मुहुर्त और शुभ लग्न में, पवित्र देश में सावधान होकर शुभ लक्षण तथा विधि को

शुभे मासे चोत्तरायणगे रवौ । शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे द्वादश्यादितिथौ तथा ॥ ४४ ॥ ग्रहणद्वितये चैव पुण्यतीर्थेऽयनद्वये । विषुवद्द्वितये चापि वृषोत्सर्गं समाचरेत् ॥ ४५ ॥ शुभलग्ने मुहूर्ते च शुचौ देशे समाहितः ब्राह्मणं तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् ॥ ४६ ॥ जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्याद्देह-शोधनम् । पूर्ववत् सकलं कृत्यं कुर्याद्धोमादिलक्षणम् ॥ ४७ ॥ शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत् । आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद्द्याद्दानं

जाननेवाले ब्राह्मण को बुलाकर ॥ ४६ ॥ जप, होम तथा दान से देह का शोधन करके पूर्ववत् होमादि संपूर्ण कृत्य करना चाहिए ॥ ४७ ॥ फिर शालग्रामजी को स्थापन कर वैष्णव श्राद्ध करे तदनन्तर अपने लिए श्राद्ध

करके ब्राह्मण को दान देवे ॥ ४८ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार जो कोई पुत्रवान् अथवा पुत्रहीन करता है उसको वृषोत्सर्ग करने से सब कामों का फल मिलता है ॥ ४९ ॥ अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अनेक प्रकार के दानों से वह गति नहीं मिल सकती है जो कि वृषोत्सर्ग से मिलती है ॥ ५० ॥ बाल्य, कुमार, पोगण्ड, यौवन और

द्विजन्मने ॥ ४८ ॥ एवं यः कुरुते पक्षिन्नपुत्रश्चापि पुत्रवान्। सर्वकामफलं तस्य वृषोत्सर्गात् प्रजायते ॥ ४९ ॥ अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि। न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण यां लभेत ॥ ५० ॥ बाल्ये कौमारे पौगण्डे योवने वार्धके कृतम्। यत्पापं तद्विनश्येत वृषोत्सर्गान्न संशयः ॥ ५१ ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः। ब्रह्महा हेमहारी च वृषोत्सर्गात्प्रमुच्यते ॥ ५२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत। वृषोत्सर्गसमं पुण्यं

वृद्ध अवस्था में जो पाप किये हैं वे वृषोत्सर्ग करने से नष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ मित्र से वैर करनेवाला, किये उपकार को न माननेवाला, मदिरा पीनेवाला, गुरु की सेज पर जानेवाला, ब्रह्महत्यारा और सोना चुरानेवाला ये सब वृषोत्सर्ग करके पाप से छूट जाते हैं ॥ ५२ ॥ इसलिए सब यत्न करके वृषोत्सर्ग

यज्ञ करना चाहिए। हे गरुड़ ! तीनों लोकों में वृषोत्सर्ग के समान पुण्य नहीं है ॥ ५३ ॥ पति और पुत्र के आगे जो स्त्री मर जाय उसके लिए वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिए। उसके निमित्त दूधवाली गौ देना चाहिए ॥ ५४ ॥ हे गरुड़ ! जो मनुष्य साँड़ को काँधे से (जुए में) जोतकर या पीठ से जोतकर चलाता

नास्ति तार्क्ष्य जगत्त्रये ॥ ५३ ॥ पतिपुत्रवती नारी द्वयोरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं नैव कुर्याद्दद्याद्गां च पयस्विनीम् ॥ ५४ ॥ वृषभं वाहयेद्यस्तु स्कन्धे पृष्ठे च खेचर। स पतेन्नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५५ ॥ वृषभं ताडयेद्यस्तु निर्दयो मुष्टियष्टिभिः। स नरः कल्पपर्यन्तं भुनक्ति यमयातनाम् ॥ ५६ ॥ एवं कृत्वा वृषोत्सर्गं कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश। सपिण्डीकरणादर्वाक् तदहं कथयामि ते ॥ ५७ ॥ स्थाने द्वारेऽर्धमार्गे च

है वह कल्प भर घोर नरक में पड़ता है ॥ ५५ ॥ जो बैल (साँड़) को मुट्ठी या लाठी से मारता है वह निर्दयी एक कल्प तक यम-यातना भोगता है ॥ ५६ ॥ इस पूर्वोक्त प्रकार से वृषोत्सर्ग करके सपिण्डन श्राद्ध से पहले सोलह श्राद्ध करे। वह तुमसे कहता हूँ ॥ ५७ ॥ एक मृतक स्थान में, दूसरा द्वार पर, तीसरा आधे

मार्ग में, चौथा चिता में, पाँचवाँ शव के हाथ में और छठा अस्थिसंचय श्राद्ध में पिण्ड होता है तथा दश पिण्ड दश दिन में होते हैं। यह पहली मलिन षोडशी कहलाती है। अब अन्य दूसरी मध्यमषोडशी तुमसे कहता हूँ ॥ ५८-५९ ॥ पहला विष्णुजी के निमित्त, दूसरा शिवजी के और तीसरा परिवारसहित यम के

चितायां शवहस्तके। अस्थिसंचयने षष्ठो दशपिण्डा दशाह्निकाः ॥ ५८ ॥ मलिनं षोडशं चैतत्प्रथमं परिकीर्तितम्। अन्यच्च षोडशं मध्ये द्वितीयं कथयामि ते ॥ ५९ ॥ प्रथमं विष्णवे दद्याद् द्वितीयं श्रीशिवाय च। याम्याय परिवाराय तृतीयं पिण्डमुत्सृजेत् ॥ ६० ॥ चतुर्थं सोमराजाय हव्यवाहाय पञ्चमम्। कव्यवाहाय षष्ठं च दद्यात् कालाय सप्तमम् ॥ ६१ ॥ रुद्राय चाष्टमं दद्यान्नवमं पुरुषाय च। प्रेताय दशमं चैवैकादशं

निमित्त पिण्ड देवे ॥ ६० ॥ चौथा सोम, पाँचवाँ हव्यवाहन, छठा काव्यवाहन और सातवाँ पिण्ड काल के निमित्त देवे ॥ ६१ ॥ आठवाँ रुद्र, नवाँ पुरुष, दशवाँ प्रेत और ग्यारहवाँ पिण्ड विष्णुजी के

निमित्त देवे ॥ ६२ ॥ बारहवाँ पिण्ड ब्रह्मा, तेरहवाँ विष्णुजी, चौदहवाँ शिव और पन्द्रहवाँ पिण्ड यमराज के निमित्त और सोलहवाँ पिण्ड तत्पुरुष के निमित्त देवे । हे गरुड़ ! तत्त्व को जाननेवाले इसको मध्यम षोडशी कहते हैं ॥ ६३-६४ ॥ बारह पिण्ड तो बारह महीने के, एक पाक्षिक, एक त्रिपाक्षिक, एक न्यून षाण्मासिक

विष्णवे ततः ॥ ६२ ॥ द्वादशं ब्रह्मणे दद्याद्विष्णवे च त्रयोदशम् । चतुर्दशं शिवा येव यमाय दकपञ्चकम् ॥ ६३ ॥ दद्यात्तत्पुरुषायैव पिण्डं षोडशकं खग । मध्यं षोडशकं प्राहुरेतत्तत्त्वविदो जनाः ॥ ६४ ॥ द्वादश प्रतिमासेषु पाक्षिकं च त्रिपाक्षिकम् । न्यूनषाण्मासिकं पिण्डं दद्यान्न्यूनाब्दिकं तथा ॥ ६५ ॥ उत्तमं षोडशं चैतन्मया ते परिकीर्तितम् । श्रपयित्वा चरुं तार्क्ष्य कुर्यादेकादशाहनि ॥ ६६ ॥ चत्वारिंशत्तथैवाष्टौ श्राद्धं प्रेतत्व-

और एक न्यूनाब्दिक पिण्ड होता है । इस प्रकार षोडश श्राद्धों की उत्तम षोडशी तुमसे कही गई है । हे गरुड़ ! ग्यारहवें दिन खीर बनाकर पिण्ड करे ॥ ६५-६६ ॥ पूर्वोक्त ४८ (अड़तालीस) श्राद्ध प्रेतपन

के नाश करनेवाले हैं। जिसके ये श्राद्ध विधान से होते हैं वही पितरों की पंक्ति में शामिल होता है ॥ ६७ ॥ इसलिए पितरों की पंक्ति में मिलाने के लिए तीनों षोडशी श्राद्ध अवश्य करने योग्य हैं। इन श्राद्धों के न होने में सुस्थिर प्रेत होता है ॥ ६८ ॥ जब तक तीन षोडशी श्राद्ध नहीं दिये जाते हैं तब तक अपना दिया

नाशनम्। यस्य जातं विधानेन स भवेत्पितृपंक्तिभाक् ॥ ६७ ॥ पितृपंक्ति-प्रवेशार्थं कारयेत् षोडशात्रयम्। एतच्छ्राद्धविहीनश्चेत्प्रेतो भवति सुस्थिरम् ॥ ६८ ॥ यावन्न दीयते श्राद्धं षोडशात्रयसंज्ञकम्। स्वदत्तं परदत्तं च तावन्नैवो-पतिष्ठते ॥ ६९ ॥ तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं विधिना षोडशात्रयम्। भर्तुर्वा कुरुते पत्नी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम् ॥ ७० ॥ संपरेतस्य या पत्यु कुरुते चौर्ध्व-देहिकम्। क्षयाहं पाक्षिकं श्राद्धं सा सतीत्युच्यते मया ॥ ७१ ॥ उपकाराय

अथवा दूसरे का दिया प्रेत को नहीं मिलता है ॥ ६९ ॥ इसलिए पुत्र को विधिपूर्वक तीनों षोडशी अवश्य करना चाहिए। अथवा स्त्री अपने पति का श्राद्ध करे तो उसको अनन्त फल होता है ॥ ७० ॥ जो स्त्री मरे हुए पति का और्ध्वदेहिक, क्षयाह और पाक्षिक श्राद्ध करती है उसी को मैं सती कहता हूँ ॥ ७१ ॥ जो पति

के हितार्थ जीती है वह पतिव्रता कहलाती है। उसी का जीवन सफल है जो मरे हुए पति का भजन करती है ॥ ७२ ॥ यदि कोई प्रमादवश अग्नि या जल से मर जाय तो उसका संस्कारपूर्वक सब कर्म विधि से करना चाहिए ॥ ७३ ॥ प्रमाद से, इच्छा से अथवा साँप के काटने से जो मर जाय तो दोनों पक्षों की पंचमियों में

सा भर्त्तुर्जीवत्येषा पतिव्रता। जीवितं सफलं तस्या या मृतं स्वामिनं भजेत् ॥ ७२ ॥ अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियते वह्निवारिभिः। संस्कारप्रमुखं कर्म सर्वं कुर्याद्यथाविधि ॥ ७३ ॥ प्रमादादिच्छया वापि नागाद्वा म्रियते यदि। पक्षयोरुभयोर्नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत् ॥ ७४ ॥ कुर्यात्पिष्टमयीं लेख्यां नागभोगाकृतिं भुवि। अर्चयेत्तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश्चन्दनेन च ॥ ७५ ॥ प्रदद्याद्धूपदीपौ च तण्डुलांश्च तिलान्क्षिपेत्। आमपिष्टं च

नाग की पूजा करनी चाहिए ॥ ७४ ॥ पिट्ठी से या आटे से साँप के आकार की मूर्ति पृथ्वी में लिखकर सफेद फूल, सुगन्धि और चन्दन से उसकी पूजा करे ॥ ७५ ॥ धूप-दीप देवे तथा चावल और तिल चढ़ावे।

कच्ची पिट्ठी का नैवेद्य और दूध निवेदन करे ॥ ७६ ॥ सामर्थ्य के अनुसार सोने का सांप और गौ ब्राह्मण को देवे फिर हाथ जोड़कर कहे कि "नागराज प्रसन्न होओ" ॥ ७७ ॥ इसके पीछे उनकी नारायणबलि की

नैवेद्यं क्षीरं च विनिवेदयेत् ॥ ७६ ॥ सौवर्णं शक्तितो नागं गां च दद्याद् द्विजन्मने । कृताञ्जलिस्ततो ब्रूयात्प्रीयतां नागराडिति ॥ ७७ ॥ पुनस्तेषां प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् । तया लभन्ते स्ववासं मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ७८ ॥ एवं सर्वक्रियां कृत्वा घटं सान्नं जलान्वितम् । दद्यादाब्दं यथासंख्यान्पिण्डान् वा सजलान् क्रमात् ॥ ७९ ॥ एवमेकादशे कृत्वा कुर्यात्सा-

क्रिया करे । इससे सब पापों से छूटकर स्वर्ग में वास पाता है ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब क्रिया करके जल और अन्न के साथ एक वर्ष तक घटदान करे और कथित संख्या के पिण्ड जलसहित क्रम से देवे ॥ ७९ ॥ इसी

प्रकार ग्यारहवें दिन का कृत्य करके सपिण्डन श्राद्ध करे फिर सूतक निवृत्त होने पर शय्यादान और पददान करे ॥ ८० ॥ बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

गरुड़जी कहते हैं कि हे भगवन् ! सपिण्डन की विधि और सूतक का निर्णय तथा शय्यादान और पदों

पिण्डनं ततः । शय्यापदानां दानं च कारयेत्सूतके गते ॥ ८० ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

गरुड उवाच ॥ सपिण्डनविधिं ब्रूहि सूतकस्य च निर्णयम् । शय्यापदानां सामग्रीं तेषां च महिमां प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि सापिण्ड्याद्यखिलां क्रियाम् । प्रेतनाम परित्यज्य यया पितृगणे विशेत् ॥ २ ॥ न पिण्डो मिलितो येषां पितामहशिवादिषु । नोपतिष्ठन्ति

की सामग्री एवं इनकी महिमा वर्णन कीजिए ॥ १ ॥ श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! सपिण्डी आदि की सब क्रियाएँ कहता हूँ, सुनो । इस क्रिया से प्रेत का नाम त्यागकर मृतक पितृगण में प्रवेश करता है ॥ २ ॥ पितामह और शिव आदि में जिनका पिण्ड नहीं मिलता है उनको पुत्रों का दिया हुआ अनेक प्रकार का दान

नहीं प्राप्त होता है ।। ३ ।। सपिण्डी श्राद्ध किये विना सूतक निवृत्त नहीं होता है और विना सूतक निवृत्त हुए पुत्र अशुद्ध रहता है कभी शुद्ध नहीं होता है ।। ४ ।। इसलिए सूतक निवृत्त होने पर सपिण्डन श्राद्ध करना चाहिए । सब वर्णों के यथोचित सूतकों को तुमसे कहता हूँ ।। ५ ।। ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन

दानानि पुत्रैर्दत्तान्यनेकधा ।। ३ ।। अशुद्धः स्यात्सदा पुत्रो न शुद्धयति कदाचन । सूतकं न निवर्तेत सपिण्डीकरणं विना ।। ४ ।। तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं सूतकान्ते सपिण्डनम् । सूतकान् ते प्रवक्ष्यामि सर्वेषां च यथोचितम् ।। ५ ।। ब्राह्मणस्तु दशाहेन क्षत्रियो द्वादशेऽहनि । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ।। ६ ।। दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके त्रिरात्रेण संकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्धन्ति गोत्रजाः ।। ७ ।। चतुर्थे दशरात्रं

में, वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक महीने में सूतक से शुद्ध होता है ।। ६ ।। प्रेतसूतक में सपिण्ड लोग दश दिन में शुद्ध होते हैं, अन्य कुलवाले तीन रात्रि में और गोत्रवाले स्नान करने से शुद्ध होते हैं ।। ७ ।। चार पीढ़ी तक दश रात्रि, पाँच पीढ़ी तक छह रात्रि, छह पीढ़ी तक चार दिन और सात पीढ़ी तक तीन

दिन सूतक रहता है ॥ ८ ॥ आठवीं पीढ़ी में एक दिन, नवीं पीढ़ी में दो पहर और दशवीं पीढ़ी में स्नानमात्र ही तक मृतक और जन्मसूतक रहता है ॥ ९ ॥ दश दिन के भीतर परदेश गया हुआ कोई सुने कि सूतक हो गया है तो दश दिन में जितने दिन बाकी हों उतने ही दिन तक वह अशुद्ध रहता है ॥ १० ॥ दश दिन के

स्यात्षण्निशाः पुंसि पञ्चमे । षष्ठे चतुरहः प्रोक्तं सप्तमे च दिनत्रयम् ॥ ८ ॥ अष्टमे दिनमेकं तु नवमे प्रहरद्वयम् । दशमे स्नानमात्रं हि मृतकं जन्मसूतकम् ॥ ९ ॥ देशान्तरगतः कश्चिच्छृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ १० ॥ अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् । संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्राद्विशुध्यति ॥ ११ ॥ आद्यभागद्वयं

बाद सुने तो तीन रात्रि अशुद्ध रहता है। एक वर्ष के बाद सुने तो स्नानमात्र करने से शुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥ मृतकसूतक के दूसरे भाग तक दूसरा सूतक हो जाय तो पहले सूतक के साथ ही दूसरे की शुद्धि

हो जाती है ॥१२॥ बालक के दांत आने तक सद्यः शौच होता है अर्थात् स्नानमात्र से शुद्धि होती है । मुण्डन तक एक रात्रि और यज्ञोपवीत होने तक तीन रात्रि सूतक रहता है । इसके पश्चात् दश दिन तक सूतक रहता है ॥ १३ ॥ कन्या के मरने पर जन्म से मुण्डन तक की अवस्था में सब वर्णों को सद्यः शौच होता है ॥ १४ ॥

यावन्मृतकस्य च सूतके । द्वितीये पतिते चाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १२ ॥ आदन्तजननात्सद्य आचौलान्नैशिकी स्मृता । त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ १३ ॥ आजन्मतस्तु चौलान्तं यत्र कन्या विपद्यते । सद्यः शौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥ १४ ॥ ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि । अतः परं प्रवृद्धानां त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥ १५ ॥ वाक्प्रदाने

इसके बाद वाग्दान सगाई पर्यन्त एक दिन और इससे बड़ी कन्या का तीन रात्रि अशौच रहना निश्चित है ॥१५॥ वाग्दान होने पर दोनों तरफ पिता को और वर को तीन दिन सूतक होता है तथा कन्यादान होने

के बाद केवल पति के यहाँ ही सूतक होता है ।। १६ ।। छह महीने के अन्दर यदि गर्भस्राव हो जाय तो जितने महीने का गर्भ हो उतने ही दिन तक उसको सूतक रहता है उसके बाद शुद्धि होती है ।। १७ ।। इसके उपरान्त अपनी जाति में कथित सूतक होता है । गर्भपात होने पर सपिण्डों को सद्यः शौच होता है ।। १८ ।।

कृते त्वत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम् । पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि ॥ १६ ॥ षण्मासाभ्यन्तरे यावद्गर्भस्रावो भवेद्यदि । तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ॥ १७ ॥ अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमाशौचं तासु विद्यते । सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ॥ १८ ॥ सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेऽपि वा । दशाहाच्छुद्धिरित्येष कलौ शास्त्रस्य निश्चयः ॥ १९ ॥ आशीर्वादं देवपूजां प्रत्युत्थानाभिवन्दनम् । पर्यङ्के शयनं

जनन और मृतकसूतक में सब वर्णों की दश ही दिन में शुद्धि होती है । कलियुग में यही शास्त्र का निश्चय है ।। १९ ।। मृतकसूतक में आशीर्वाद, देवताओं की पूजा, आते हुए को देखकर उठना, अभिवादन (प्रणाम-

नमस्कारादि) खाट पर सोना और अन्य को छूना ये कार्य न करे ॥ २० ॥ मृतकसूतक में सन्ध्या, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृतर्पण, ब्रह्मभोज और व्रत नहीं करना चाहिए ॥ २१ ॥ सूतक में जो नित्य-नैमित्तिक तथा काम्य (किसी कामना के लिए) कर्म करता है उसके पहले के किये नित्य आदि कर्म नष्ट हो जाते

स्पर्शं न कुर्यान्मृतसूतके ॥ २० ॥ संध्यां दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् । ब्रह्मभोज्यं व्रतं नैव कर्तव्यं मृतसूतके ॥ २१ ॥ नित्यनैमित्तिकं काम्यं सूतके यः समाचरेत् । तस्य पूर्वकृतं नित्यादिकं कर्म विनश्यति ॥ ॥ २२ ॥ व्रतिनो मन्त्रपूतस्य साग्निकस्य द्विजस्य च । ब्रह्मनिष्ठस्य यतिनो न हि राज्ञां च सूतकम् ॥ २३ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु जाते च मृतसूतके । तस्य पूर्वकृतं चान्नं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत ॥ २४ ॥ सूतके यस्तु गृह्णाति

हैं ॥ २२ ॥ व्रतवाला (ब्रह्मचारी), मन्त्र से पवित्र, अग्निहोत्री ब्राह्मण और ब्रह्मनिष्ठ यती तथा राजा को सूतक नहीं होता है ॥ २३ ॥ विवाह, उत्सव और यज्ञ में किसी के मृतकसूतक हो जाय तो उसका पहले का बना हुआ अन्न भोजन करना चाहिए । यह मनुजी ने कहा है ॥ २४ ॥ अज्ञान से जो सूतक में अन्न लेता

है उसको दोष नहीं होता है। जो याचक को सूतक में देता है उसी को दोष होता है ॥ २५ ॥ जो सूतक को छिपाकर ब्राह्मण को अन्न देता है और जो ब्राह्मण जानकर लेता है ये दोनों दोष के भागी होते हैं ॥ २६ ॥ इसलिए मृतक की शुद्धि के वास्ते पिता का सपिण्डन श्राद्ध करना चाहिए। इससे पितृगणों के

तदज्ञानान्न दोषभाक् । दाता दोषमवाप्नोति याचकाय ददन्नपि ॥ २५ ॥ प्रच्छाद्य सूतकं यस्तु ददात्यन्नं द्विजाय च । ज्ञात्वा गृह्णन्ति ये विप्रा दोषभाजस्तु ते अपि ॥ २६ ॥ तस्मात्मृतकशुद्ध्यर्थं पितुः कुर्यात्सपिण्डनम् । ततः पितृगणैः सार्द्धं पितृलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥ द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा । सपिण्डीकरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ २८ ॥ मया तु प्रोच्यते तार्क्ष्य शास्त्रधर्मानुसारतः । चतुर्णामेव वर्णानां

साथ वह पितृलोक में जाता है ॥ २७ ॥ तत्त्व के जाननेवाले मुनियों ने बारहवें दिन, पन्द्रहवें दिन, छठे महीने में तथा साल पूरा होने पर सांवत्सरिक श्राद्ध के दिन सपिण्डी करना कहा है ॥ २८ ॥ हे गरुड़ ! शास्त्रधर्म

के अनुसार मैंने तो चारों वर्णों का बारहवें दिन सपिण्डी करना कहा है ।। २९ ।। कलियुग के धर्मों के अनित्य होने से, पुरुषों की आयु कम होने से और शरीर के स्थिर न होने से बारहवें दिन सपिण्डी करना श्रेष्ठ है ।। ३० ।। यज्ञोपवीत, उत्सव, व्रत, उद्यापन और विवाह आदि शुद्ध कर्म गृहस्थ मनुष्य के मर जाने पर

द्वादशाहे सपिण्डनम् ॥ २९ ॥ अनित्यात्कलिधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहे प्रशस्यते ॥ ३० ॥ व्रतबन्धोत्सवादीनि व्रतस्योद्यापनानि च । विवाहादि भवेन्नैव मृते च गृहमेधिनि ॥ ३१ ॥ भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति हन्तकारो न गृह्यते । नित्यं नैमित्तिकं लुप्येद्यावत्पिण्डो न मेलितः ॥ ३२ ॥ कर्मलोपात्प्रत्यवायी भवेत्तस्मात्सपिण्डनम् । निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत् ॥ ३३ ॥ यत्फलं

नहीं होते हैं ।। ३१ ।। मँगता भीख नहीं लेता है तथा हंतकार नहीं ग्रहण की जाती है और नित्य-नैमित्तिक कर्म लोप रहते हैं जब तक कि पिण्ड नहीं मिलाया जाता है ।। ३२ ।। कर्म लोप होने से कर्म में विक्षेप होता है इसलिए निरग्निक और साग्निक दोनों को बारहवें दिन सपिण्डन श्राद्ध करना चाहिए ।। ३३ ।। जो फल

सब तीर्थों में जाने से होता है और जो फल सब यज्ञों के करने से होता है वही फल बारहवें दिन सपिण्डन करने से होता है ॥ ३४ ॥ इसलिए पुत्र स्नान करके गोबर से लीपे हुए मृतकस्थान में शास्त्र की विधि से सपिण्डी करे ॥ ३५ ॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदि से विश्वेदेवों का पूजन करके *कुत्सित पितरों के लिए

सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति द्वादशाहे सपिण्डनात् ॥ ३४ ॥ अतः स्नात्वा मृतस्थाने गोमयेनोपलेपिते । शास्त्रोक्तेन विधानेन सपिण्डीं कारयेत् सुतः ॥ ३५ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्विश्वेदेवांश्च पूजयेत् । कुपित्रे विकिरं दत्त्वा पुनश्चाप उपस्पृशेत् ॥ ३६ ॥ दद्यात्पितामहादीनां त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् । वसुरुद्रार्करूपाणां चतुर्थं मृतकस्य च ॥ ३७ ॥ चन्दनैस्तुलसीपत्रैर्धूपैर्दीपैः सुभोजनैः । मुखवासैः सुवस्त्रैश्च

विकिर पिण्ड देवे और फिर हाथ-पैर धोकर आचमन करे ॥ ३६ ॥ फिर क्रम से वसु, रुद्र, आदित्यस्वरूप पितामह, प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामह के लिए तीन पिण्ड देवे तथा चौथा मृतक के लिए देवे ॥३७॥ फिर

* "असंस्कृतप्रमीता ये" अथवा "अनग्निदग्धा ये जीवा" इत्यादि से पृथ्वी में पिण्ड देवे ।

चन्दन, तुलसीदल, धूप, दीप, सुन्दर भोजन, सुगन्धित ताम्बूल, वस्त्र और दक्षिणा आदि से उनका पूजन करे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर सोने की सलाई से (सोना-चाँदी-कुशा से) प्रेत के पिण्ड के तीन सम विभाग करके पितामह आदि के पिण्डों में अलग-अलग मिलावे ॥ ३९ ॥ हे गरुड़ ! ऐसा मेरा मत है कि पितामही

दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥ ३८ ॥ प्रेतपिण्डं त्रिधा कृत्वा सुवर्णस्य शलाकया । पितामहादिपिण्डेषु मेलयेत्तं पृथक्पृथक् ॥ ३९ ॥ पितामह्या समं मातुः पितामहसमं पितुः । सपिण्डीकरणं कुर्यादिति तार्क्ष्य मतं मम ॥ ४० ॥ मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः । तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ ४१ ॥ तेभ्यश्च पैतृकं पिण्डं मेलयेत्तं त्रिधा कृतम् । मातर्यग्रे प्रशान्तायां विद्यते च पितामही ॥ ४२ ॥ तदा मातृकश्राद्धेऽपि

के पिण्ड से माता का और पितामह के पिण्ड से पिता का पिण्ड मिलाकर सपिण्डी श्राद्ध करे ॥ ४० ॥ जिसके पितामह के रहते ही पिता मर जाय तो प्रपितामह आदि के लिए तीन पिण्ड देवे और उन्हीं में पिता के पिण्ड के तीन भाग करके मिलावे और पितामही के रहते माता मर जाय ॥ ४१-४२ ॥ तो माता के श्राद्ध

में भी पिता के श्राद्ध की सी अर्थात् प्रपितामही, वृद्धपितामही और प्रवृद्धपितामही के पिण्डों में माता का पिण्ड मिलावे) विधि करे अथवा मेरे में (भगवान् में) और लक्ष्मीजी में पिता और माता का पिण्ड मिलावे (क्योंकि भगवान् ही पितामहरूप और लक्ष्मीजो पितामही आदि का रूप हैं)॥ ४३ ॥ जिस स्त्री

कुर्यात् पैतृकवद्विधिम् । यद्वा मयि महालक्ष्म्यां तयोः पिण्डं च मेलयेत् ॥ ४३ ॥ अपुत्रायाः स्त्रियाः कुर्यात्पतिः सापिण्डनादिकम् । श्वश्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ ४४ ॥ भर्त्रादिभिस्त्रिभिः कार्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः । नैतन्मम मतं तार्क्ष्य पत्या सापिण्ड्यमर्हति ॥ ४५ ॥ एकां चितां समारूढौ दम्पती यदि काश्यप । तृणमन्तरतः कृत्वा श्वशुरादे ।

के पुत्र न हों उसका सपिण्डन पति ही करे । स्त्री का उसकी सास आदि के साथ ही सपिण्डन श्राद्ध होता है ॥ ४४ ॥ पति आदि के साथ स्त्री का सपिण्डन करना यह मेरा मत नहीं है । हे गरुड़ ! पति के साथ सपिण्डन करना योग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे कश्यप के पुत्र गरुड़ ! यदि स्त्री-पुरुष दोनों एक ही चिता पर चढ़े

हों तो ससुर आदि से तृण का अन्तर करके सती को पिण्ड देवे ॥ ४६ ॥ एक ही पुत्र पहले पिता का पिण्ड आदि करके फिर सती का पिण्ड करे। इसके पश्चात् स्नान करे ॥ ४७ ॥ यदि दश दिन के भीतर ही सती अग्नि में प्रवेश करे तो उसके लिए शय्यादान और सपिण्डन पति के साथ ही करे ॥ ४८ ॥ हे गरुड़ !

स्तदाचरेत् ॥ ४६ ॥ एक एव सुतः कुर्यादादौ पिण्डादिकं पितुः। तदूर्ध्वं च प्रकुर्वीत सत्याः स्नानं पुनश्चरेत् ॥ ४७ ॥ हुताशं या समारूढा दशाहाभ्यन्तरे सती। तस्या भर्तुर्दिने कार्यं शय्यादानं सपिण्डनम् ॥ ४८ ॥ कृत्वा सपिण्डनं तार्क्ष्य प्रकुर्यात्पितृतर्पणम्। उदाहरेत् स्वधाकारं वेदमन्त्रैः समन्वितम् ॥ ४९ ॥ अतिथिं भोजयेत्पश्चाद्धन्तकारं च सर्वदा। तेन तृप्यन्ति पितरो मुनयो देवदानवाः ॥ ५० ॥ ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुर्ग्रासं तु

सपिण्डन श्राद्ध करके पितरों का तर्पण करे और वेद के मंत्रों के साथ स्वधा का उच्चारण करे ॥ ४९ ॥ तदनन्तर अतिथि को भोजन करावें तथा सदा हंसकार निकाले। इससे देवता, पितर, मुनि लोग और दानव तृप्त होते हैं ॥ ५० ॥ एक ग्रास की भिक्षा, चार ग्रास का पुष्कल और चार पुष्कल का हन्तकार होता

है ॥ ५१ ॥ सपिण्डी श्राद्ध में चन्दन अक्षत आदि से ब्राह्मण के चरणों की पूजा करके अक्षय तृप्ति के लिए उसे दान देना चाहिए ॥ ५२ ॥ एक वर्षकी आजीविका, घृत, अन्न, सुवर्ण, चाँदी, गौ, घोड़ा, हाथी, रथ और पृथ्वी आचार्य को देवे ॥ ५३ ॥ फिर स्वस्तिवाचन करके कुंकुम, अक्षत और नैवेद्य से नवग्रह, देवी और

पुष्कलम् । पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते ॥ ५१ ॥ सपिण्ड्यां विप्रचरणौ पूजयेच्चन्दनाक्षतैः । दानं तस्मै प्रदातव्यमक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥ ५२ ॥ वर्षवृत्ति घृतं चान्नं सुवर्णं रजतं सुगाम् । अश्वं गजरथं भूमिमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ ततश्च पूजयेन्मंत्रैः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । कुंकुमाक्षतनैवेद्यैर्ग्रहान् देवीं विनायकम् ॥ ५४ ॥ आचार्यस्तु ततः कुर्यादभिषेकं समन्त्रकम् । वद्ध्वा सूत्रं करे दद्यान्मंत्रपूतांस्तथाक्षतान् ॥ ५५ ॥ ततश्च

गणेशजी की मंत्रों से पूजा करे ॥ ५४ ॥ इसके पश्चात् आचार्य मंत्रपूर्वक अभिषेक करे तथा हाथ में डोरा बाँधे और मंत्र से पवित्र अक्षत देवे अर्थात् आशीर्वाद देवे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकार के सुन्दर मिष्ठान्नों

से ब्राह्मणों को भोजन करावे और सजल बारह घट दक्षिणा के साथ उन ब्राह्मणों को देवे ।। ५६ ।। ब्राह्मण-भोजन के पश्चात् ब्राह्मण जल, क्षत्रिय हथियार, वैश्य प्रतोद (चाबुक) और शूद्र दण्ड को छूकर शुद्ध होता है ।। ५७ ।। इस प्रकार सपिण्डन श्राद्ध करके क्रिया के वस्त्र छोड़कर सफेद वस्त्र पहिने और शय्यादान

भोजयेद्विप्रान् मिष्टान्नैर्विविधैः शुभैः। दद्यात्सदक्षिणांस्तेभ्यः सजलान्नान्द्वि-षड्घटान् ॥ ५६ ॥ वार्यायुधप्रतोदस्तु दण्डस्तु द्विजभोजनात्। स्प्रष्टव्या-नन्तरं वर्णैः शुद्ध्येरंस्ते ततः क्रमात् ॥ ५७ ॥ एवं सपिण्डनं कृत्वा क्रिया-वस्त्राणि संत्यजेत्। शुक्लाम्बरधरो भूत्वा शय्यादानं प्रदापयेत् ॥ ५८ ॥ शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वे देवाः सवासवाः। तस्माच्छय्या प्रदातव्या मरणे जीवितेऽपि वा ॥ ५९ ॥ सारदारुमयीं रम्यां सुचित्रैश्चित्रितां दृढाम्। पट्ट-

दे ।। ५८ ।। इन्द्र आदि सब देवता शय्यादान की प्रशंसा करते हैं इसलिए मरने पर अथवा जीते ही शय्यादान देना चाहिए ।। ५९ ।। पुष्ट लकड़ी की बनी हुई सुन्दर और मजबूत अच्छे चित्रों से चित्रित रेशम के डोरों

से बिनी, सोने के पत्रों से सुशोभित की गई, हंस के समान सफेद रुई के गद्दा से ढकी, उत्तम तकियावाली, जिस पर चद्दर बिछी हो और पुष्पों की सुगन्ध से वासित हो ॥ ६०-६१ ॥ सुन्दर बन्धनों से बँधी और सुख देनेवाली विशाल शय्या को इस प्रकार सजाकर भूमि पर बिछावे ॥ ६२ ॥ छत्र, चाँदी की दीवट, चमर,

सूत्रैर्वितनितां हेमपत्रैरलंकृताम् ॥ ६० ॥ हंसतूलीप्रतिच्छनां शुभशीर्षोपधानिकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां पुष्पगन्धैः सुवासिताम् ॥ ६१ ॥ दिव्यबन्धैः सुबद्धां च सुविशालां सुखप्रदाम् । शय्यामेवंविधां कृत्वा ह्यास्तृतायां न्यसेद्भुवि ॥ ६२ ॥ छत्रं दीपालयं रौप्यं चामरासनभाजनम् । भृङ्गारकरकादर्शं पञ्चवर्णवितानकम् ॥ ६३ ॥ शयनस्य भवेत्किंचिद्यच्चान्यदुपकारकम् । तत्सर्वं परितस्तस्याः स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत् ॥ ६४ ॥ तस्यां

आसन, बर्तन, झारी, लोटा, दर्पण और पाँच रंग का शामियाना और जो कोई अन्य उपकारक वस्तु हो ये सब शय्या के चारों ओर अपने-अपने स्थान पर रक्खे ॥ ६३-६४ ॥ फिर शय्या पर लक्ष्मीसहित सब प्रकार के

आभूषण, आयुध और वस्त्रसमेत भगवान् की सोने की मूर्ति स्थापन करे ।। ६५ ।। स्त्री की शय्या पर काजल, मेंहदी, रोली, वस्त्र और आभूषण आदि सब चीजें रखकर दान करे ।। ६६ ।। फिर स्त्रीसहित ब्राह्मण को गन्ध, पुष्प, कुंडल, अँगूठी और सोने की जंजीर आदि से सुशोभित करे ।। ६७ ।। फिर पगड़ी, डुपट्टा और

संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम् । सर्वाभरणसंयुक्तमायुधाम्बरसंयुतम् ॥ ६५ ॥ स्त्रीणां च शयने धृत्वा कज्जलालक्तकुंकुमम् । वस्त्रं भूषादिकं यच्च सर्वमेव प्रदापयेत् ॥ ६६ ॥ ततो विप्रं सपत्नीकं गन्धपुष्पैरलंकृतम् । कर्णाङ्गुलीयाभरणैः कण्ठसूत्रैश्च काञ्चनैः ॥ ६७ ॥ उष्णीषमुत्तरीयं च चोलकं परिधाय च । स्थापयेत्सुखशय्यायां लक्ष्मीनारायणाग्रतः ॥ ६८ ॥ कुंकुमैः पुष्पमालाभिर्हरिं लक्ष्मीं समर्चयेत् । पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहान् देवीं

अचकन (अँगरखा) पहिराकर लक्ष्मीनारायण के आगे सुखशय्या पर बैठावे ।। ६८ ।। और कुंकुम और फूलों की माला से लक्ष्मी और नारायण की पूजा करके लोकपाल, नवग्रह, देवी और गणेशजी की पूजा

करे ॥ ६९ ॥ फिर उत्तर की ओर मुँह करके फूलों की अँजुली ले ब्राह्मण के आगे खड़ा होकर इस मंत्र का उच्चारण करे ॥ ७० ॥ हे कृष्णजी ! जैसे क्षीरसमुद्र में आपकी शय्या है उसी प्रकार जन्मजन्मान्तर में मेरी यह शय्या अशून्य हो (अर्थात् कभी सूनी न हो) ॥ ७१ ॥ इस प्रकार कहकर पुष्पांजलि को ब्राह्मण और

विनायकम ॥ ६९ ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा गृहीत्वा कुसुमाञ्जलिम । उच्चारयेदिमं मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः ॥ ७० ॥ यथा कृष्ण त्वदीयास्ति शय्या क्षीरोदसागरे । तथा भूयादशून्येयं मम जन्मनि जन्मनि ॥ ७१ ॥ एवं पुष्पाञ्जलिं विप्रे प्रतिमायां हरेः क्षिपेत । ततः सोपस्करं शय्यादानं संकल्पपूर्वकम ॥ ७२ ॥ दद्याद्व्रतोपदेष्ट्रे च गुरवे ब्रह्मवादिने । गृहाण ब्राह्मणेनां त्वं कोऽदादिति च कीर्तयन् ॥ ७३ ॥ आन्दोलयेद्द्विजं लक्ष्मीं हरिं च शयने

नारायण की मूर्ति पर चढ़ावे फिर सामग्रीसहित संकल्पपूर्वक शय्या का दान उपदेशक या ब्रह्मवादी गुरु को देवे । फिर कहे कि हे ब्राह्मण ! तुम इसको ग्रहण करो । ब्राह्मण "कोऽदात्" इस मंत्र को पढ़े ॥ ७२-७३ ॥ फिर शय्या पर बैठे ब्राह्मण; लक्ष्मी और हरि भगवान् को झुलावे फिर परिक्रमा और प्रणाम करके

विसर्जन करे ॥ ७४ ॥ यदि विभव हो तो शय्या पर सुख से सोने के लिए सब सामग्री से युक्त सुन्दर मकान देवे ॥ ७५ ॥ जो जीते हुए अपने हाथ से यदि शय्यादान देवे तो उसे जीते ही किसी पर्व में वृषोत्सर्ग करना चाहिए ॥ ७६ ॥ शय्या एक ही को देना चाहिए बहुतों को नहीं। शय्या बाँटने से और बेचने से दाता को

स्थितम्। ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ ७४ ॥ सर्वोपस्करणैर्युक्तं प्रदद्यादतिसुन्दरम्। शय्यायां सुखसुप्त्यर्थं गृहं च विभवे सति ॥७५॥ जीवमानः स्वहस्तेन यदि शय्यां ददाति यः। तज्जीवता वृषोत्सर्गं पर्वणीषु समाचरेत् ॥ ७६ ॥ इयमेकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन। सा विभक्ता च विक्रीता दातारं पातयत्यधः ॥ ७७ ॥ पात्रे प्रदाय शयनं वाञ्छितं फलमाप्नुयात्। पिता च दाता तनयः परत्रेह च मोदते ॥ ७८ ॥ पुरन्दर-

नरक में गिराती है ॥ ७७ ॥ सुपात्र को शय्यादान देने से वाञ्छित फल होता है। पिता और दाता पुत्र ये दोनों स्वर्गलोक में और इस लोक में आनन्दित होते हैं ॥ ७८ ॥ शय्यादान के प्रभाव से इन्द्र के सुन्दर घर

में अथवा यमराज के घर में जाकर उपस्थित होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥ श्रेष्ठ विमान पर बैठकर अप्सरागणों से सेवित हो प्रलयकाल तक भयरहित वहाँ रहता है ॥ ८० ॥ सब तीर्थों में और सब पर्वदिनों में जो पुण्य होता है उससे भी अधिक शय्यादान करने से पुण्य होता है ॥ ८१ ॥ इस प्रकार पुत्र

गृहे दिव्ये सूर्यपुत्रालयेऽपि च। उपतिष्ठेन्न सन्देहः शय्यादानप्रभावतः ॥
७९ ॥ विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः । आभूतसम्प्लवं याव-
त्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥ ८० ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वपर्वदिनेषु च । तेभ्यश्चा-
प्यधिकं पुण्यं शय्यादानोद्भवं भवेत् ॥ ८१ ॥ एवं दत्त्वा सुतः शय्यां पददानं
प्रदापयेत्। तच्छृणुष्व मयाख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥ छत्रोपानह-
वस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः । आसनं पञ्चपात्राणि पदं पञ्चविधं

शय्यादान देकर पदों का दान करे। वह पददान मैं तुमसे यथार्थरूप से कहता हूँ ॥ ८२ ॥ छाता-जूता-वस्त्र, अँगूठी, कमण्डलु, आसन और पंचपात्र पाँच प्रकार के पद कहे गये हैं ॥ ८३ ॥ डंडा, ताम्रपात्र, कच्चा

अन्न, भोजन और यज्ञोपवीत इनसे पद पूर्ण होता है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार शक्ति के अनुसार तेरह पद बनाकर बारहवें दिन तेरह ब्राह्मणों को देवे ॥ ८५ ॥ इस पद के दान से धर्मात्मा अच्छी गति को प्राप्त होते हैं ।

स्मृतम् ॥ ८३ ॥ दण्डेन ताम्रपात्रेण ह्यामान्नैर्भोजनैरपि । अथ यज्ञोपवीतैश्च पदं संपूर्णतां व्रजेत् ॥ ८४ ॥ त्रयोदशपदानीत्थं यथाशक्त्या विधाय च । त्रयोदशभ्यो विप्रेभ्यः प्रदद्याद् द्वादशेऽहनि ॥ ८५ ॥ अनेन पददानेन धार्मिका यान्ति सद्गतिम् । यममार्गगतानां च पददानं सुखप्रदम् ॥ ८६ ॥ आतपस्तत्र वै रौद्रो दह्यते येन मानवः । छत्रदानेन सुच्छाया जायते तस्य मूर्द्धनि ॥ ८७ ॥ अतिसंकटसंकीर्णे यमलोकस्य वर्त्मनि । अश्वारूढाश्च ते

यममार्ग में जानेवालों को पदों का दान सुखदायी होता है ॥ ८६ ॥ यममार्ग में बड़ा कठिन घाम होता है जिससे मनुष्य जलने लगता है । छतरी के दान से उसके शिर पर छाया हो जाती है ॥ ८७ ॥ अत्यन्त संकट से पूर्ण

यमलोक के मार्ग में वे ही घोड़े पर चढ़कर चलते हैं जो जूता का दान करते हैं ॥ ८८ ॥ हे गरुड़ ! वहाँ ठंडक, गर्मी और हवा से घोर दुःख होते हैं। जो वस्त्र का दान करता है वही उस मार्ग में सुख से जाता है ॥ ८९ ॥ जो अँगूठी का दान करता है उसको महारौद्र भयंकर कृष्णपिंगल वर्ण के यमदूत पीड़ा नहीं देते

यान्ति ददन्ते यद्युपानहौ ॥ ८८ ॥ शीतोष्णवातदुःखानि तत्र घोराणि खेचर। वस्त्रदानप्रभावेण सुखं निस्तरते पथि ॥ ८९ ॥ यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न पीडयन्ति तं मार्गे मुद्रिकायाः प्रदानतः॥ ९० ॥ बहुधर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते। कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ॥ ९१ ॥ मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं च ताम्रजम्। प्रपादानसहस्रस्य यत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम् ॥ ९२ ॥ आसने भोजने चैव दत्ते सम्यग्द्विजातये।

हैं ॥ ९० ॥ तेज धूप, वायु तथा जल से रहित उस मार्ग में कमण्डलु के दान से तृषावन्त जल पीता है ॥९१॥ मृतक का उद्देश करके जो ताँबे का जलपात्र देता है वह हजार पौशाला बैठाने का सा फल पाता है ॥ ९२ ॥ जो ब्राह्मण के लिए आसन और भोजन अच्छे प्रकार देता है वह मार्ग में धीरे-धीरे चलता हुआ पाथेय को

सुख से खाता है ॥ ९३ ॥ इस प्रकार सपिण्डन के दिन विधि से दान देकर बहुत से ब्राह्मणों को तथा चांडाल आदिकों को भी भोजन करावे ॥ ९४ ॥ इसके बाद सपिण्डी श्राद्ध से लेकर वर्षी तक हर महीने पिण्डसहित जल का घट देना चाहिए ॥ ९५ ॥ हे गरुड़ ! प्रेतकार्य के अतिरिक्त किया हुआ कृत्य फिर नहीं करना होता

सुखेन भुंक्ते पाथेयं पथि गच्छञ्छनैः शनैः ॥ ९३ ॥ एवं सपिण्डनदिने दत्त्वा दानं विधानतः । बहून् संभोजयेद्विप्रान् यः श्वपाकादिकानपि ॥ ९४ ॥ ततः सपिण्डनादूर्ध्वमर्वाक्संवत्सरादपि । प्रतिमासं प्रदातव्यो जलकुम्भः सपिण्डकः ॥ ९५ ॥ कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग । प्रेतार्थं तु पुनः कुर्यादक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥ ९६ ॥ अतो विशेषं वक्ष्यामि मासिकस्याब्दिकस्य च । पाक्षिकस्य विशेषं च विशेषतिथिषु मृते ॥ ९७ ॥ पौर्णमास्यां

है । परन्तु प्रेत की अक्षयतृप्ति के लिए तो फिर भी करना चाहिए ॥ ९६ ॥ इसलिए मासिक, सांवत्सरिक और पाक्षिक श्राद्ध की विशेषता कहता हूँ । विशेष तिथियों में मरने पर विशेषता यह है कि ॥ ९७ ॥ जो पौर्णमासी को मरता है उसकी चतुर्थी तिथि ऊन है अर्थात् चतुर्थी को पाक्षिक श्राद्ध करना चाहिए । और जो

चतुर्थी को मरता है उसकी नवमी ऊनिका है ॥ ९८ ॥ नवमी को जो मरता है उसकी चतुर्दशी ऊनिका होती है । इस प्रकार पाक्षिक श्राद्ध बीसवें दिन करना चाहिए ॥ ९९ ॥ यदि एक ही महीने में दो संक्रान्तियाँ हों तो दोनों महीनों का श्राद्ध मलमास में ही करना श्रेष्ठ है ॥ १०० ॥ यदि एक महीने में दो महीने हो जायँ

मृतो यस्तु चतुर्थी तस्य ऊनिका। चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य ऊनिका ॥ ९८ ॥ नवम्यां तु मृतो यस्तु रिक्ता तस्य चतुर्दशी । इत्येवं पाक्षिकं श्राद्धं कुर्याद्विंशतिमे दिने ॥ ९९ ॥ एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः। मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासे हि शस्यते ॥ १०० ॥ एकस्मिन्मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः । तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि ॥ १०१ ॥ तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्धे तदुत्तरः । मासाविति

तो उन दोनों महीनों के वे ही पक्ष और वे ही तीस तिथियाँ माननी चाहिए ॥ १०१ ॥ यदि तिथि का पहला अर्धभाग हो तो पहला महीना और दूसरा अर्धभाग हो दूसरा महीना मलमास के मध्य का विद्वानों को

विचारना चाहिए ॥ १०२ ॥ हे गरुड़ ! यदि संक्रान्तिरहित मास में मनुष्य मरे तो उसका सपिण्डन संक्रान्तिरहित मास (मलमास) में करना चाहिए । इसी प्रकार मासिक श्राद्ध और प्रथमवार्षिक श्राद्ध करना चाहिए ॥ १०३ ॥ यदि सालभर के भीतर अधिक मास पड़ जाय तो तेरहवें महीने प्रेत की वर्षी करना

बुधैश्चिन्त्यौ मलमासस्य मध्यगौ ॥ १०२ ॥ असंक्रन्ते च कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं खग । तथैव मासिकं श्राद्धं वार्षिकं प्रथमं तथा ॥ १०३ ॥ संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासकः । तदा त्रयोदशे मासि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥ १०४॥ पिण्डवर्ज्यमसंक्रान्ते संक्रान्ते पिण्डसंयुतम् । प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च ॥ १०५॥ एवं संवत्सरे पूर्णे वार्षिकं श्राद्धमाचरेत् । तस्मिन्नपि विशेषेण भोजनीया द्विजातयः ॥ १०६ ॥ कुर्यात्संवत्सरादूर्ध्वं

चाहिए ॥ १०४ ॥ संक्रान्तिरहित महीने में पिण्डरहित और संक्रान्तियुक्त महीने में पिण्डसहित इस प्रकार दोनों महीनों में प्रतिवर्ष सांवत्सरिक श्राद्ध करे ॥ १०५ ॥ पूर्वोक्त प्रकार से पूरा वर्ष होने पर वार्षिक श्राद्ध करे । इसमें विशेषता से ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए ॥ १०६ ॥ वर्षभर के बाद सदा तीन पिण्ड करना

चाहिए। एकोद्दिष्ट न करना चाहिए। एकोद्दिष्ट करनेवाला पितृघातक होता है ॥ १०७ ॥ तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध, गजच्छायश्राद्ध और पितृसंबन्धी कार्य वर्ष भर के भीतर न करना चाहिए। ग्रहण और युगादि तिथियों में भी न करना चाहिए ॥ १०८ ॥ हे गरुड़ ! जब पुत्र गयाश्राद्ध करना चाहे तो वर्ष भर के बाद

श्राद्धे पिण्डत्रयं सदा। एकोद्दिष्टं न कर्तव्यं तेन स्यात्पितृघातकः ॥ १०७॥ तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं गजच्छायं च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत ग्रहणे न युगादिषु ॥ १०८॥ यदा पुत्रेण वै कार्यं गयाश्राद्धं खगेश्वर। तदा संवत्सरादूर्ध्वं कर्तव्यं पितृभक्तितः ॥ १०९॥ गयाश्राद्धात्प्रमुच्यन्ते पितरो भवसागरात्। गदाधरानुग्रहेण ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ११० ॥ तुलसी

पिता की भक्ति से करे ॥ १०९ ॥ गयाश्राद्ध से पितर भवसागर से तर जाते हैं। वे गदाधर भगवान् की कृपा से परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ११० ॥ तुलसी की मंजरी से भगवान् की पादुका का पूजन करे और

उनके आलयादि (गया आदि) तीर्थों में क्रम से पिण्ड देवे ॥ १११ ॥ जो गयाशिर में शमी (सेमल) के पत्ते के बराबर पिण्ड देता है वह सात गोत्र और एक सौ एक कुलों का उद्धार करता है ॥ ११२ ॥ कुल को आनन्द देनेवाला जो पुरुष गया में जाकर श्राद्ध करता है उसका पितरों को प्रसन्न करनेवाला वह जन्म सफल

मञ्जरीभिश्च पूजयेद्विष्णुपादुकाम् । तस्यालयादितीर्थेषु पिण्डान् दद्याद्यथाक्रमम् ॥ १११ ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् । शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥ ११२ ॥ गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति कुलनन्दनः । सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ॥ ११३ ॥ श्रूयते चापि पितृभिर्गीता गाथा खगेश्वर । इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने सुरैः ॥ ११४ ॥ अपि नस्ते भविष्यन्ति कुलेसन्मार्गशालिनः । गयामुपेत्य

होता है ॥ ११३ ॥ हे गरुड़ ! हिमालय के निकटवर्ती कलाप ग्राम के उपवन में मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के पितरों की तथा देवताओं की गाई हुई गाथा सुनी जाती है कि क्या हमारे कुल में कोई सन्मार्गगामी होंगे, जो गया

में जाकर हमको आदर से पिंड देंगे ? ॥ ११४-११५ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार जो कोई पुत्र इस लोक की क्रिया करता है वह सुखी और मुक्त होता है । जैसे विश्वामित्र के पुत्र मुक्त हुए थे ॥ ११६ ॥ हे गरुड़ ! भरद्वाज मुनि के सात पुत्र जन्म की परम्परा को भोगकर गोवध करके भी पितरों की प्रसन्नता से मुक्त हो

ये पिण्डान् दास्यन्त्यस्माकमादरात् ॥ ११५ ॥ एवमामुष्मिकीं तार्क्ष्य यः करोति क्रियां सुतः । स स्यात्सुखी भवेन्मुक्तः कौशिकस्यात्मजा यथा ॥ ११६ ॥ भरद्वाजात्मजाः सप्त भुक्त्वा जन्मपरम्पराम् । कृत्वापि गोवधं तार्क्ष्यं मुक्ताः पितृप्रसादतः ॥ ११७ ॥ सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालिञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ ११८ ॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । पितृभक्त्या च ते सर्वे गता मुक्तिं

गये थे ॥ ११७ ॥ वे भरद्वाज के पुत्र पहले दशार्ण देश में सात व्याध हुए, कालिञ्जर पर्वत पर मृग हुए, शरद्वीप में चक्रवाक और मानसरोवर में हंस हुए ॥ ११८ ॥ फिर वे ही कुरुक्षेत्र में वेदपारगामी ब्राह्मण हुए ।

वे सब ब्राह्मण के पुत्र पितरों की भक्ति करके मुक्त हो गये ॥ ११९ ॥ इसलिए सब प्रकार यत्न करके मनुष्य को पितरों का भक्त होना चाहिए। इस लोक में और परलोक में भी पितरों की भक्ति से सुखी होता है ॥ १२० ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार मैंने संपूर्ण और्ध्वदेहिक तुमसे वर्णन कर दिया है वह पुत्रों की इच्छा को

द्विजात्मजाः ॥ ११९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तो भवेन्नरः । इह लोके परे वापि पितृभक्त्या सुखी भवेत् ॥ १२० ॥ एतत्तार्क्ष्य मयाख्यातं सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् । पुत्रवाञ्छाप्रदं पुण्यं पितुर्मुक्तिप्रदायकम् ॥ १२१ ॥ निर्धनोऽपि नरः कश्चिद्यः शृणोति कथामिमाम् । सोऽपि पापविनिर्मुक्तो दानस्य फलमाप्नुयात् ॥ १२२ ॥ विधिना कुरुते यस्तु श्राद्धं दानं मयोदितम् । शृणुयाद्गारुडं चापि शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥ १२३ ॥ पिता

पूर्ण करनेवाला, पवित्र और पिता को मुक्ति देनेवाला है ॥ १२१ ॥ निर्धन मनुष्य भी जो कोई इस कथा को सुनता है वह भी सब पातों से छूटकर दान का फल पाता है ॥ १२२ ॥ जो कोई मेरी कही हुई विधि से दान और श्राद्ध करता है और गरुड़पुराण को सुनता है उसका फल भी सुनिए ॥ १२३ ॥ पिता

ददाति सत्पुत्रान् गोधनानि पितामहः । धनदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः॥ १२४ ॥ दद्याद्विपुलमन्नाद्यं वृद्धस्तुः प्रपितामहः । तृप्ताः श्राद्धेन ते सर्वे दत्त्वा पुत्रस्य वाञ्छितम् ॥ १२५ ॥ गच्छन्ति धर्ममार्गैश्च धर्मराजस्य मन्दिरम् । तत्र धर्मसभायां ते तिष्ठन्ति परमादरात् ॥ १२६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं श्रीविष्णुना प्रोक्तमौर्ध्वदानसमुद्भवम् । । श्रूत्वा माहात्म्य

अच्छे पुत्रों कों देता है, दादा गोधन देता है और परदादा धन का दाता होता है ॥ १२४ ॥ तथा वृद्ध परदादा बहुत से अन्न आदि पदार्थों को देता है । वे सब पितर श्राद्ध से तृप्त होकर पुत्र को वांछित फल देते हैं ॥ १२५ ॥ वे धर्ममार्ग से धर्मराज के मन्दिर कों जाते हैं । वहाँ जाकर वे धर्मसभा में आदर से बैठते हैं ॥ १२६ ॥ सूतजी कहते हैं कि इस प्रकार श्रीभगवान् से कहा हुआ और्ध्वदेहिक दान का अतुल

माहात्म्य सुनकर गरुड़जी बहुत प्रसन्न हुए ।। १२७ ।। गरुड़पुराण का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।। १३ ।।

गरुड़जी बोले कि हे दया के निधान भगवन् ! यमलोक कितना बड़ा है, कैसा है, किसने बनाया है, उसकी सभा कैसी है और उसमें धर्मराज किनके साथ में रहते हैं तथा जिन धर्ममार्गों से धर्मात्मा लोग

मतुलं गरुडो हर्षमागतः ॥ १२७ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सपिण्डनादिनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

गरुड उवाच ॥ यमलोकः कियन्मात्रः कीदृशः केन निर्मितः । सभा च कीदृशी तस्यां धर्म आस्ते च कैः सह ॥ १ ॥ ये धर्ममार्गैर्गच्छन्ति धार्मिका धर्ममन्दिरम् । तान् धर्मानपि मार्गांश्च ममाख्याहि दयानिधे ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यद्गम्यं नारदादिभिः । तद्धर्म-

धर्मराज के मन्दिर को जाते हैं उन धर्मों तथा मार्गों को मुझसे कहिए ।। १-२ ।। श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! सुनिए, जो नारद आदि ऋषियों से जाने योग्य है वह सुन्दर धर्मराज का नगर बड़े पुण्यों से

मिलता है ॥ ३ ॥ दक्षिण और नैर्ऋत्य के बीच में जो वैवस्वत (धर्मराज) का पुर है वह सब वज्र का बना है जिसको देवता और असुर भी भेदन नहीं कर सकते हैं ॥ ४ ॥ वह चौकोण है, उसके चार दरवाजे हैं, ऊँचे-ऊँचे परकोटों (चहारदीवारी) से घिरा है और उसका प्रमाण एक हजार योजन (चार हजार कोस)

नगरं दिव्यं महापुण्यैरवाप्यते ॥ ३ ॥ याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य यत् । सर्ववज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत्सुरासुरैः ॥ ४ ॥ चतुरस्रं चतुर्द्वारमुच्चप्राकारवेष्टितम् । योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तदुच्यते ॥ ५ ॥ तस्मिन्पुरेऽस्ति सुभगं चित्रगुप्तस्य मन्दिरम् । पञ्चविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायतम् ॥ ६ ॥ दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम् । प्रतोलीशतसंचारं पताकाध्वजभूषितम् ॥ ७ ॥ विमानगणसंकीर्णं गीतवादित्रनादितम् ।

का कहा जाता है ॥ ५ ॥ उस पुर में चित्रगुप्तजी का सुन्दर मन्दिर है । वह पच्चीस योजन चौड़ा और लम्बा है ॥ ६ ॥ तथा दश योजन ऊँचा, बहुत सुन्दर और लोह के परकोटों से घिरा है, उसमें आने जाने के लिए सैकड़ों गलियाँ हैं और वह पताका और ध्वजाओं से भूषित है ॥ ७ ॥ तथा विमानों से भरा है, गाने-

बजाने के शब्दों से शब्दायमान है, कुशल (होशियार) चितेरों से चित्रित है और देवताओं के राजों (थवइयों) से बनाया हुआ है ॥ ८ ॥ फुलवारी और बागों से रमणीय है। वहाँ अनेक प्रकार के पक्षी बोल रहे हैं। गन्धर्व और अप्सराओं से चारों ओर घिरा है ॥ ९ ॥ उस नगर की सभा में अपने अति

चित्रितं चित्रकुशलैर्निर्मितं देवशिल्पिभिः ॥ ८ ॥ उद्यानोपवनै रम्यं नानाविहगकूजितम् । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सन्तातपरिवारितम् ॥ ९ ॥ तत्सभायां चित्रगुप्तः स्वासने परमाद्भुते । संस्थितो गणयेदायुर्मानुषाणां यथातथम् ॥ १० ॥ न मुह्यति कथंचित्स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा । यद्येनोपार्जितं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ११ ॥ तत्सर्वं भुञ्जते यत्र चित्रगुप्तस्य

अद्भुत आसन पर चित्रगुप्तजी विराजमान होकर मनुष्यों की आयु ठीक-ठीक गिना करते हैं ॥ १० ॥ वे चित्रगुप्त पुण्य और पाप के लिखने में कभी नहीं भूलते हैं, जिसने जैसा शुभ या अशुभ कर्म इकट्ठा किया है वही सब चित्रगुप्त की आज्ञा से भोगना पड़ता है। चित्रगुप्त के स्थान से पूर्व की ओर ज्वर का विशाल घर

है ॥ ११-१२ ॥ दक्षिण की ओर शूल, मकड़ी और विस्फोट (छाला पड़ना आदि) का स्थान है तथा पश्चिम की ओर कालपाश, अजीर्ण और अरुचि रोग का स्थान है ॥ १३ ॥ उत्तर की ओर राजरोग (तपेदिक) और पाण्डु (पीलिया) रोग का, ईशान कोण में शिर पीड़ा और आग्नेय कोण में मूर्च्छा का

शासनात् । चित्रगुप्तालयात्प्राच्यां ज्वरस्यातिमहागृहम् ॥ १२ ॥ दक्षिणस्यां च शूलस्य लूताविस्फोटयोस्तथा । पश्चिमे कालपाशस्य चाजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥ १३ ॥ उदीच्यां राजरोगोऽस्ति पाण्डुरोगस्तथैव च । ऐशान्यां तु शिरोऽर्तिः स्यादाग्नेय्यामस्ति मूर्च्छना ॥ १४ ॥ अतिसारो नैर्ऋते तु वायव्यां शीतदाहकौ । एवमादिभिरन्यैश्च व्याधिभिः परिवारितः ॥ १५ ॥ लिखते चित्रगुप्तस्तु मानुषाणां शुभाशुभम् ।

स्थान है ॥ १४ ॥ नैर्ऋत्य कोण में अतिसार, वायव्य कोण में शीत और दाह का स्थान है । इसी प्रकार की अन्य व्याधियों से वह चित्रगुप्त का स्थान घिरा है ॥ १५ ॥ (वहाँ बैठे) चित्रगुप्त मनुष्यों के शुभ और

अशुभ (पाप-पुण्य) कर्मों को लिखा करते हैं । चित्रगुप्त के स्थान के आगे बीस योजन पर ॥ १६ ॥ पुर के बीच में दिव्य रत्नमय और बिजली की ज्वाला तथा सूर्य की सी कान्तिवाला धर्मराज का बहुत सुन्दर मन्दिर है ॥ १७ ॥ वह दो सौ योजन लम्बा चौड़ा और पचास योजन ऊँचा है ॥ १८ ॥ हजारों खंभे उसमें लगे हैं,

चित्रगुप्तालयादग्रे योजनानां च विंशतिः ॥ १६ ॥ पुरमध्ये महादिव्यं धर्मराजस्य मन्दिरम् । अस्ति रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥ १७ ॥ द्विशतं योजनानां च विस्तारायामतः स्फुटम् । पञ्चाशच्च प्रमाणेन योजनानां समुच्छ्रितम् ॥ १८ ॥ धृतं स्तम्भसहस्रैश्च वैडूर्यमणिमण्डितम् । कांचनालंकृतं नानाहर्म्यप्रासादसंकुलम् ॥ १९ ॥ शारदाभ्रनिभं रुक्मकलशैः सुमनोहरम् । चित्रस्फटिकसोपानं वज्रकुट्टिमशोभितम् ॥ २० ॥ मुक्ता-

वह वैदूर्य मणियों से भूषित तथा सोने से अलंकृत (सजा) है और उसमें अनेक प्रकार के महल बने हैं ॥ १९ ॥ शरत्काल के मेघके समान सोने के कलशों से मनोहर है । चित्रयुक्त स्फटिकमणियों को सीढ़ीवाला वह हीरा की कुटियों से शोभायमान है ॥ २० ॥ उसके झरोखों में मोतियों की झालरें लगी हैं, वह पताका

और ध्वजाओं से शोभित है तथा घंटा और नगाड़ों के नाद से युक्त है और सोने की बन्दनवारों से मण्डित है ॥ २१ ॥ उसमें आश्चर्यमय सोने के सैकड़ों किवाड़ लगे हैं एवं अनेक प्रकार के वृक्ष, लता और काँटेरहित पेड़ों से सुहावना है ॥ २२ ॥ इसी प्रकार के अन्य भूषणों से वह सदा भूषित है । तथा अपने योगों के प्रभाव

जालगवाक्षं च पताकाध्वजभूषितम् । घण्टानकनिनादाढ्यं हेमतोरण-मण्डितम् ॥ २१ ॥ नानाश्चर्यमयं स्वर्णकपाटशतसंकुलम् । नानाद्रुम-लतागुल्मैर्निष्कण्टैः सुविराजितम् ॥ २२ ॥ एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भू-षितं सदा । आत्मयोगप्रभावैश्च निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २३ ॥ तस्मिन्नस्ति सभा दिव्या शतयोजनमायता । अर्कप्रकाशा भ्राजिष्णुः सर्वतः काम-रूपिणी ॥ २४ ॥ नातिशीता न चात्युष्णा मनसोऽत्यन्तहर्षिणी । न शोको

से विश्वकर्मा ने उसे बनाया है ॥ २३ ॥ उस पुर में सौ योजन चौड़ी कामरूपिणी दिव्य सभा है । उसमें सब ओर चमकीला सूर्य का सा प्रकाश है ॥ २४ ॥ वह न ही अधिक ठंडी है और न अधिक गरम है । वह

मन को अत्यन्त हर्षित करनेवाली है। उसमें न शोक है, न बुढ़ापा है, न भूख-प्यास है और न कुछ अप्रिय वस्तु है ॥ २५ ॥ उसमें देवतासंबन्धी तथा मनुष्यसंबन्धी सब काम मौजूद हैं। उसमें सर्वत्र रसयुक्त बहुत-से खाने योग्य भोजन के पदार्थ हैं ॥ २६ ॥ तथा रसवाले स्वादिष्ट गरम और ठंडे जल हैं। उसमें पुण्यमय

न जरा तस्यां क्षुत्पिपासे न चाप्रियम् ॥ २५ ॥ सर्वे कामाः स्थिता यस्यां ये दिव्या ये च मानुषाः। रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः ॥ २६ ॥ रसवन्ति च तोयानि शीतान्युष्णानि चैव हि। पुण्याः शब्दादयस्तस्यां नित्यं कामफलद्रुमाः ॥ २७ ॥ असंबाधा च सा तार्क्ष्य रम्या कामागमा सभा। दीर्घकालं तपस्तप्त्वा निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ २८ ॥ तामुग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः। शान्ताः संन्यासिनः सिद्धाः पूताः पूतेन

शब्द आदि विषय हैं तथा नित्य कामनारूपी फल देनेवाले वृक्ष हैं ॥ २७ ॥ हे गरुड़ ! वह सभा बाधारहित, रमणीक और कामना देनेवाली है। बहुत समय तक तप करके विश्वकर्मा ने उसको बनाया था ॥ २८ ॥ उसमें बड़े तपवाले, अच्छे व्रतवाले, सत्य बोलनेवाले, शान्त स्वभाव, संन्यासी, सिद्ध और शुभ कर्म से पवित्र हुए

लोग ही जाते हैं ॥ २९ ॥ उस सभा में अपने किये हुए पुण्यकर्मों से तेजोमय शरीरवाले, अलंकारयुक्त, निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले और भूषणों से भूषित लोग रहते हैं ॥ ३० ॥ उस सभा में दश योजन विस्तृत, सब रत्नों से शोभित- अनुपम सुन्दर आसन पर भगवान् धर्मराज बैठे हैं। वे सज्जनों में श्रेष्ठ हैं, उनके मस्तक

कर्मणा ॥ २८ ॥ सर्वे भास्वरदेहास्तेऽलंकृता विरजोऽम्बराः। स्वकृतैः कर्मभिः पुण्यैस्तत्र तिष्ठन्ति भूषिताः ॥ ३० ॥ तस्यां स धर्मो भगवानासनेऽनुपमे शुभे । दशयोजनविस्तीर्णे सर्वरत्नैः सुमण्डिते ॥ ३१ ॥ उपविष्टः सतां श्रेष्ठश्छत्रशोभितमस्तकः । कुण्डलालंकृतः श्रीमान् महामुकुट मण्डितः ॥ ३२ ॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तो नीलमेघसमप्रभः । वालव्यजनहस्ताभिरप्सरोभिश्च वीजितः ॥ ३३ ॥ गन्धर्वाणां समूहाश्च संघशश्चाप्सरोगणाः। गीत-

पर छत्र शोभित है। वे श्रीमान् कुण्डलों से अलंकृत और बड़े मुकुट से शोभित हैं ॥ ३१-३२ सब प्रकार के अलकारों से युक्त, नीले मेघ के समान कान्तिवाले हैं हाथ में सुन्दर पंखा लिये हुए अप्सराएँ उनके पवन कर रही हैं ॥ ३३ ॥ गन्धर्वों के समूह और अप्सराओं के गण गीत, बाजा और नृत्य आदि से चारों ओर

उनकी सेवा करते हैं ॥ ३४ ॥ एवं हाथ में पाश लिए हुए मौत, बलवान् काल और विचित्र रूप चित्रगुप्त तथा यमराज से वे सेवित हैं ॥ ३५ ॥ तथा पाश (फाँसी का फन्दा) और दण्ड लिये हुए, भयंकर रूप, आज्ञा में रहनेवाले, और अपने तुल्य बलवाले अनेक योद्धाओं से वे घिरे हैं ॥ ३६ ॥ हे गरुड़ ! अग्निष्वात्त पितर,

वादित्रनृत्याद्यैः परितः सेवयन्ति तम् ॥ ३४ ॥ मृत्युना पाशहस्तेन कालेन च बलीयसा । चित्रगुप्तेन चित्रेण कृतान्तेन निषेवितः ॥ ३५ ॥ पाशदण्डधरै-रुग्रैर्निदेशवशवर्तिभिः । आत्मतुल्यबलैर्नानासुभटैः परिवारितः ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्ताश्च पितरः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये । स्वधावन्तो बर्हिषदो मूर्ता-मूर्ताश्च ये खग ॥ ३७ ॥ अर्यमाद्याः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तथापरे । सर्वे ते मुनिभिः सार्धं धर्मराजमुपासते ॥ ३८ ॥ अत्रिर्वसिष्ठः पुलहो दक्षः क्रतुर-

सोमपा, ऊष्मपा, स्वधावन्त, बर्हिषद, मूर्त और अमूर्त जो पितर हैं ॥ ३७ ॥ तथा अर्यमा आदि पितृगण और मूर्तिमान् जो अन्य पितर हैं वे सब मुनियों के साथ उन धर्मराज की उपासना करते हैं ॥ ३८ ॥ अत्रि,

थाङ्गिराः । जामदग्न्यो भृगुश्चैव पुलस्त्यागस्त्यनारदाः ॥ ३९ ॥ एते चान्ये च बहवः पितृराजसभासदः । न शक्याः परिसंख्यातुं नामभिः कर्मभिस्तथा ॥ ४० ॥ व्याख्याभिर्धर्मशास्त्राणां निर्णेतारो यथातथम् । सेवन्ते धर्मराजं ते शासनात्परमेष्ठिनः ॥ ४१ ॥ राजानः सूर्यवंशीयाः सोमवंश्यास्तथापरे । सभायां धर्मराजं ते धर्मज्ञाः पर्युपासते ॥ ४२ ॥ मनुर्दिलीपो मान्धाता सगरश्च भगीरथः । अम्बरीषोऽनरण्यश्च मुचुकुन्दो निमिः

वशिष्ठ, पुलह, दक्ष, क्रतु, अंगिरा, जामदग्न्य (परशुराम), भृगु, पुलस्त्य, अगस्त्य और नारदजी ॥ ३९ ॥ ये तथा अन्य बहुत-से धर्मराज की सभा के सभासद् हैं, जिनकी नाम और कर्मों से संख्या नहीं हो सकती है ॥ ४० ॥ धर्मशास्त्रों की व्याख्याओं से यथार्थ निर्णय करनेवाले ब्रह्माजी की आज्ञा से धर्मराज की सेवा करते हैं ॥ ४१ ॥ सूर्यवंशी, सोमवंशी तथा अन्य जो धर्मात्मा राजा लोग हैं, वे उस सभा में धर्मराज की सेवा करते हैं ॥ ४२ ॥ मनु, दिलीप, मान्धाता, सगर, भगीरथ, अम्बरीष, अनरण्य, मुचुकुन्द, निमि,

पृथु, ।। ४३ ।। ययाति, नहुष, पुरु, दुष्यन्त, शिबि, नल, भरत, शन्तनु, पाण्डु और सहस्रार्जुन ।। ४४ ।। ये विख्यात कीर्तिवाले, पुण्यकर्मा राजर्षि लोग बहुत-से अश्वमेध यज्ञों से पूजा करके धर्मराज के सभासद् हुए हैं ।। ४५ ।। धर्मराज की सभा में धर्म ही वर्तमान रहता है । वहाँ पक्षपात, झूठ और मत्सर नहीं है ।। ४६ ।। उनकी सभा के सब

पृथुः ॥ ४३ ॥ ययातिर्नहुषः पूरुर्दुष्यन्तश्च शिबिर्नलः । भरतः शन्तनुः पाण्डुः सहस्रार्जुन एव च ॥ ४४ ॥ एते राजर्षयः पुण्याः कीर्तिमन्तो बहुश्रुताः । इष्ट्वाश्वमेधैर्बहुभिर्जाता धर्मसभासदः ॥ ४५ ॥ सभायां धर्मराजस्य धर्म एव प्रवर्तते । न तत्र पक्षपातोऽस्ति नानृतं न च मत्सरः ॥ ४६ ॥ सभ्याः सर्वेशास्त्रविदः सर्वेधर्मपरायणाः । तस्यां सभायां सततं वैवस्वतमुपासते ॥४७॥ ईदृशी सा सभा तार्क्ष्य धर्मराजमहात्मनः । न तां पश्यन्ति ये पापा दक्षि-

सभासद् शास्त्र के ज्ञाता और धर्मपरायण हैं । वे उस सभा में निरन्तर धर्मराज की उपासना करते हैं ।। ४७ ।। हे गरुड़ ! महात्मा धर्मराज की वह सभा ऐसी है कि जिसको दक्षिण मार्ग से गये हुए पापी लोग नहीं देख

सकते हैं ॥ ४८ ॥ धर्मराज के पुर में जाने के लिए चार मार्ग होते हैं। पापियों के जाने के लिए जो मार्ग है वह तुमसे कह दिया है ॥ ४९ ॥ पूर्व आदि तीन मार्गों से जो धर्मराज के मन्दिर को जाते हैं वे ही सुकृती लोग पुण्यों से उस सभा में जाते हैं उनको सुनो ॥ ५० ॥ वहाँ सब भोगों से युक्त एक पूर्व का मार्ग है।

णेन पथा गताः ॥ ४८ ॥ धर्मराजपुरे गन्तुं चतुर्मार्गा भवन्ति च। पापिनां गमने पूर्वं स तु ते परिकीर्तितः ॥ ४९ ॥ पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्ये गता धर्म-मन्दिरे। ते हि सुकृतिनः पुण्यैस्तस्यां गच्छन्ति ताञ्छृणु ॥ ५० ॥ पूर्व-मार्गस्तु तत्रैकः सर्वभोगसमन्वितः। पारिजाततरुच्छायाच्छादितो रत्न-मण्डितः ॥ ५१ ॥ विमानगणसङ्कीर्णो हंसावलिविराजितः। विद्रुमारामसं-कीर्णपीयूषद्रवसंयुतः ॥ ५२ ॥ तेन ब्रह्मर्षयो यान्ति पुण्यराजर्षयोऽमलाः।

उसमें पारिजात नामक वृक्ष की छाया है। वह रत्नों से शोभित है ॥ ५१ ॥ विमानों के समूहों से भरा है, जहाँ तहाँ हंसों की पंक्तियाँ विराजमान हैं। मूँगा के बागों से घिरा है और अमृत के रसतुल्य जल से युक्त है ॥ ५२ ॥ उसी पूर्वमार्ग से ब्रह्मर्षि लोग, पुण्यवान् निर्मल राजर्षि लोग, अप्सराओं के समूह, गन्धर्व, विद्याधर

और बड़े वासुकि आदि साँप जाते हैं ॥ ५३ ॥ तथा और जो देवताओं की आराधना करनेवाले, शिवजी की भक्ति करनेवाले, गरमी में पौशाला लानेगवाले, माघ में लकड़ी देनेवाले ॥ ५४ ॥ तथा वर्षाऋतु में जो विरक्त लोगों को दान-मान से आश्रय देनेवाले और दुःखितों को मीठे वचन कहकर आश्रय देनेवाले हैं वे

अप्सरोगणगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः ॥ ५३ ॥ देवताराधकाश्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः । ग्रीष्मे प्रपादानरता माघे काष्ठप्रदायिनः ॥ ५४ ॥ विश्रामयन्ति वर्षासु विरक्तान्दानमानतः । दुःखितस्यामृतं ब्रूते ददते ह्याश्रमं तु ये ॥ ५५ ॥ सत्यधर्मरता ये च क्रोधलोभविवर्जिताः । पितृमातृषु ये भक्ता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ ५६ ॥ भूमिदा गृहदा गोदा विद्यादानप्रदायकाः । पुराणवक्तृश्रोतारः पारायणापरायणाः ॥ ५७ ॥ एते सुकृतिनश्चान्ये पूर्वद्वारे

लोग ॥ ५५ ॥ और जो सत्य तथा धर्म में रत है और क्रोध तथा लोभ से रहित हैं, एवं पिता-माता के भक्त और गुरु की सेवा करनेवाले ॥ ५६ ॥ भूमि, घर, गौ और विद्या का दान करनेवाले, पुराण के बाँचनेवाले और सुननेवाले तथा सप्ताह आदि पारायण करनेवाले ॥ ५७ ॥ ये सुकृती लोग तथा अन्य जो पूर्व द्वार

से प्रवेश करनेवाले सुशील और शुद्ध बुद्धिवाले हैं वे सब धर्मराज की सभा में जाते हैं ॥ ५८ ॥ दूसरा जो उत्तर का मार्ग है वह सैकड़ों बड़े-बड़े रथों से भरा और पालकियों से युक्त है। हरिचन्दन (देववृक्षों) से शोभित है ॥ ५९ ॥ वहाँ हंस, सारस और चक्रवाकों (चकवों) से शोभित अमृततुल्य जल से भरा हुआ

विशन्ति च। यान्ति धर्मसभायां ते सुशीलाः शुद्धबुद्धयः ॥ ५८ ॥ द्वितीयस्तूत्तरो मार्गो महारथशतैर्वृतः। नरयानसमायुक्तो हरिचन्दनमण्डितः ॥ ॥ ५९ ॥ हंससारससंकीर्णश्चक्रवाकोपशोभितः। अमृतद्रवसंपूर्णस्तत्र भाति सरोवरः ॥ ६० ॥ अनेन वैदिका यान्ति तथाभ्यागतपूजकाः। दुर्गाभान्वोश्च ये भक्तास्तीर्थस्नाताश्च पर्वसु ॥ ६१ ॥ ये मृता धर्मसंग्रामेऽनशनेन मृताश्च ये। वाराणस्यां गोगृहे च तीर्थतोये मृता विधेः ॥ ६२ ॥ ब्राह्म-

सुन्दर सरोवर है ॥ ६० ॥ इस मार्ग से वेदपाठी, अतिथियों के पूजक, दुर्गा और सूर्य के भक्त तथा पर्वसमय में तीर्थों में नहानेवाले जाते हैं ॥ ६१ ॥ तथा जो धर्मयुद्ध में मरे हैं और जो अनशन करके मरे हैं तथा जो काशी जी में, गोशाला में और तीर्थ के जल में मरे हैं वे इस उत्तर मार्ग से जाते हैं ॥ ६२ ॥ तथा ब्राह्मण के लिए,

स्वामी के कार्य के लिए तथा तीर्थ-क्षेत्रों में मरनेवाले एवं देवताओं के विध्वंस (देव-मन्दिर आदि तोड़नेवालों के साथ लड़ाई) में मरनेवाले और योगाभ्यास से मरनेवाले ॥ ६३ ॥ सत्पात्र के पूजनेवाले, नित्य बड़े-बड़े दान देनेवाले ये सब उत्तर द्वार से प्रवेश करके धर्मराज की सभा में जाते हैं ॥ ६४ ॥ रत्नों के बने मंदिरों से

णार्थे स्वामिकार्ये तीर्थक्षेत्रेषु ये मृताः । ये मृता देवविध्वंसे योगाभ्यासेन ये मृताः ॥ ६३ ॥ सत्पात्रपूजका नित्यं महादानरताश्च ये । प्रविशन्त्युत्तरे द्वारे यान्ति धर्मसभां च ते ॥ ६४ ॥ तृतीयः पश्चिमो मार्गो रत्नमन्दिर-मण्डितः । सुधाररिसदापूर्णदीर्घिकाभिर्विराजितः ॥ ६५ ॥ ऐरावतकुलो-द्भूतमत्तमातङ्गसंकुलः । उच्चैःश्रवःसमुत्पन्नहयरत्नसमन्वितः ॥ ६६ ॥ ऐतना-त्मपरा यान्ति सच्छास्त्रपरिचिन्तकाः । अनन्यविष्णुभक्ताश्च गायत्रीमन्त्र-

शोभित तीसरा पश्चिम मार्ग है । उसमें सदा अमृततुल्य रस से भरी बावड़ियाँ शोभायमान हैं ॥ ६५ ॥ वह ऐरावत के कुल में पैदा होनेवाले मत्त हाथियों से भरा है तथा उच्चैःश्रवा से उत्पन्न घोड़ा जैसे रत्नों से युक्त है ॥ ६६ ॥ इस मार्ग से आत्मपरारण (योगी लोग), अच्छे शास्त्रों के चिन्तन करनेवाले, भगवान् के

अनन्य भक्त और गायत्री मंत्र का जप करनेवाले जाते हैं ॥ ६७ ॥ परायी हिंसा, पराया धन और पराये वाद से जो रहित हैं और अपनी ही स्त्री से रमण करनेवाले, सज्जन, अग्निहोत्र करनेवाले और वेद का पाठ करनेवाले ॥ ६८ ॥ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवाले, वानप्रस्थ, तपस्वी लोग तथा श्रीपादसंज्ञक संन्यासी जिनके

जापकाः ॥ ६७ ॥ परहिंसापरद्रव्यपरवादपरांमुखाः । स्वदारनिरताः सन्तः साग्निका वेदपाठकाः ॥ ६८ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतधरा वानप्रस्थास्तपस्विनः । श्रीपादसंन्यासपराः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ६९ ॥ ज्ञानवैराग्यसंपन्नाः सर्वभूतहिते रताः । शिवविष्णुव्रतकराः कर्मब्रह्मसमर्पकाः ॥ ७० ॥ ऋणै-स्त्रिभिर्विनिर्मुक्ताः पञ्चयज्ञरताः सदा । पितृणां श्राद्धदातारः काले सन्ध्या-मुपासकाः ॥ ७१ ॥ नीचसङ्गविनिर्मुक्ताः सत्सङ्गतिपरायणाः । एतेऽप्सरो-

लिए कंकड़, पत्थर और सोना बराबर है ॥ ६९ ॥ ज्ञान और वैराग्य से युक्त, सब प्राणियों का हित करने-वाले, शिव और विष्णु के उपासक तथा कर्म को ब्रह्म में अर्पण करनेवाले ॥ ७० ॥ तथा तीनों ऋणों से मुक्त, सदा पंचयज्ञ करनेवाले, पितरों का श्राद्ध करनेवाले, समय पर सन्ध्योपासन करनेवाले ॥ ७१ ॥ नीचों

की संगति से रहित और सत्संगति करनेवाले ये सब अप्सरागणों से युक्त उत्तम विमानों में बैठे हुए ।। ७२ ।। अमृत पीते हुए पश्चिम द्वार से धर्मराज के मन्दिर में प्रवेश करके धर्मसभा में जाते हैं ।। ७३ ।। यमराज उन आये हुए लोगों को देखकर बार-बार स्वागत करते हैं और खड़े होकर उनके सामने जाते हैं ।। ७४ ।।

गणैर्युक्ता विमानवरसंस्थिताः ॥ ७२ ॥ सुधापानं प्रकुर्वन्तो यान्ति ते धर्ममन्दिरम् । विशन्ति पश्चिमद्वारे यान्तिधर्मसभान्तरे ॥ ७३ ॥ यमस्तानागतान्दृष्ट्वा स्वागतं वदते मुहुः । समुत्थानं च कुरुते तेषां गच्छति संमुखम् ॥ ७४ ॥ तदा चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदासिभृत् । पुण्यकर्मरतानां च स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ॥ ७५ ॥ सिंहासनं च ददते नमस्कारं करोति च । पाद्यार्घ्यं कुरुते पश्चात्पूजते चन्दनादिभिः ॥ ७६ ॥ नमस्कुर्वन्तु भोः सभ्या

उस समय वे चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और तलवार को धारणकर पुण्यात्माओं के साथ स्नेह से मित्र का सा बर्ताव करते हैं ।। ७५ ।। तथा बैठने को सिंहासन देते हैं, नमस्कार करते हैं, पाद्य और अर्घ्य देते हैं, फिर चन्दन आदि से उनकी पूजा करते हैं ।। ७६ ।। और कहते हैं कि हे सभासदो ! इस ज्ञानी को

आदर से नमस्कार करो। यह मेरे मण्डल को छोड़कर ब्रह्मलोक को चला जायगा ॥ ७७ ॥ हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! नरक से डरनेवाले ! आप लोगों ने पुण्य करके सुखदायक देवत्व साधन किया है ॥ ७८ ॥ जो दुर्लभ मनुष्य का शरीर पाकर नित्य-नैमित्तिक कर्म का साधन नहीं करता है वह घोर नरक में जाता है। इससे

ज्ञानिनं परमादरात्। एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥ ७७ ॥ भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठा नरकक्लेशभीरवः। भवद्भिः साधितं पुण्यैर्देवत्वं सुखदायकम् ॥ ७८ ॥ मानुषं दुर्लभं प्राप्य नित्यं यस्तु न साधयेत्। स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥ ७९ ॥ अस्थिरेण शरीरेण योऽस्थिरैश्च धनादिभिः। संचिनोति स्थिरं धर्मं स एको बुद्धिमान्नरः ॥ ८० ॥ तस्मात्सर्व-

बढ़कर और कौन अचेतन है ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य अस्थिर शरीर से अस्थिर धन आदि के द्वारा स्थिर धर्म को संचित करता है वही एक बुद्धिमान् मनुष्य है ॥ ८० ॥ इसलिए सब प्रकार का यत्न करके धर्म का संचय

करना चाहिए । आप लोग सब भोगों से युक्त पुण्यवाले स्थान को जाओ ।। ८१ ।। ऐसे धर्मराज के वचन सुनकर धर्मराज को और उस सभा को प्रणाम करके देवताओं से पूजित और मुनीश्वरों से स्तुति किये गये वे ।। ८२ ।। विमानों पर बैठकर परमपद को जाते हैं । और कोई बड़े आदर से धर्मसभा में ही रह जाते

प्रयत्नेन कर्तव्यो धर्मसंचयः । गच्छध्वं पुण्यवत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम् ॥ ८१ ॥ इति धर्मवचः श्रुत्वा तं प्रणम्य सभां च ताम् । अमरैः पूज्यमानास्ते स्तूयमाना मुनीश्वरैः ॥ ८२ ॥ विमानगणसंकीर्णाः प्रयान्ति परमं पदम् । केचिद्धर्मसभायां हि तिष्ठन्ति परमादरात् ॥ ८३ ॥ उषित्वा तत्र कल्पान्तं भुक्त्वा भोगानमानुषान् । प्राप्नोति पुण्यशेषेण मानुष्य पुण्यदर्शनम् ॥ ८४ ॥ महाधनी च सर्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । पुनः स्वात्मविचारेण ततो

हैं ।। ८३ ।। वहाँ कल्प भर तक रहकर और दिव्य भोगों को भोगकर शेष पुण्य से पवित्र दर्शनवाले मनुष्य शरीर को पाता है ।। ८४ ।। तथा बड़ा धनवान्, सब कुछ जाननेवाला और सब शास्त्रों में चतुर होकर फिर

आत्मा के विचार से परमगति को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ हे गरुड़ ! तुमने जो यमालय का हाल पूछा था वह सब तुमसे कह दिया। इसको जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह धर्मराज की सभा में जाता है ॥ ८६ ॥ गरुड़पुराण का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

याति परां गतिम् ॥ ८५ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यमालयम्। इदं शृण्वन्नरो भक्त्या धर्मराजसभां व्रजेत् ॥ ८६ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे धर्मराजनगरनिरूपणो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गरुड उवाच ॥ धर्मात्मा स्वर्गतिं भुक्त्वा जायते विमले कुले। अतस्तस्य समुत्पत्तिं जननीजठरे वद ॥ १ ॥ यथा विचारं कुरुते देहेऽस्मिन्सुकृती जनः। तथाहं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणानिधे ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥

गरुड़जी पूछते हैं कि (हे भगवन् ! आपने कहा है कि) धर्मात्मा स्वर्ग की गति को भोगकर उत्तम कुल में पैदा होता है इसलिए उसकी माता के पेट में जैसे उत्पत्ति होती है वह मुझसे कहिए ॥ १ ॥ हे करुणानिधि भगवन् ! जैसा सुकृती मनुष्य इस देह में विचार करता है वह मैं सुनना चाहता हूँ, मुझसे कहिए ॥ २ ॥ श्री

भगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! तुमने बहुत अच्छा पूछा, तुमसे परम गुप्त बात कहता हूँ। उसके जानने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्ड के गुणों से युक्त, योगियों की धारणा के स्थान शरीर का परमार्थसम्बन्धी रूप कहता हूँ ॥ ४ ॥ जिस शरीर में योगी लोग जिस प्रकार षट्चक्र का विचार

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य परं गोप्यं वदामि ते। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ ३ ॥ वक्ष्यामि च शरीरस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्। ब्रह्माण्ड-गुणसंपन्नं योगिनां धारणास्पदम् ॥ ४ ॥ षट्चक्रचिन्तनं यस्मिन्यथा कुर्वन्ति योगिनः। ब्रह्मरन्ध्रे चिदानन्दरूपध्यानं तथा शृणु ॥ ५ ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे जायते सुकृती यथा। तथाविधानं नियमं तत्पित्रोः कथयामि ते ॥ ६ ॥ ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम्। तावन्नालोकयेद्वक्त्रं

और ब्रह्मरन्ध्र में चिदानन्दरूप का ध्यान करते हैं वह सुनो ॥ ५ ॥ सुकृत करनेवाला जैसे पवित्र श्रीमानों के घर में पैदा होता है वह विधान और उसके माता-पिता के नियम तुमसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ ऋतुकाल के समय स्त्रियों को चार दिन तक त्याग देना चाहिए। जब तक स्त्रियों के शरीर में पाप रहता है (इन्द्र को

दी हुई ब्रह्महत्या रहती है) तब तक उसका मुँह न देखना चाहिए ॥ ७ ॥ ऋतुवाली स्त्री चौथे दिन वस्त्रसहित स्नान करके शुद्ध होती है। सात दिन में पितरों और देवताओं की पूजा करने के योग्य होती है ॥ ८ ॥ सात दिन के भीतर जो गर्भ रहता है वह मलिन होता है। अधिकतर आठ दिन के भीतर

पापं वपुषि संभवेत् ॥ ७ ॥ स्नात्वा सचैलं सा नारी चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने ॥ ८ ॥ सप्ताहमध्ये यो गर्भः स भवेत् मलिनाशयः । प्रायशः सम्भवन्त्यत्र पुत्रास्त्वष्टाहमध्यतः ॥ ९ ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । पूर्वसप्तकमुत्सृज्य तस्माद्युग्मासु संविशेत् ॥ १० ॥ षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां सामान्याः समुदाहृताः ।

पुत्र होते हैं (वे अल्पायु होते हैं) ॥ ९ ॥ युग्म (सम) रात्रियों में गर्भाधान होने से पुत्र और विषम रात्रियों में कन्याएँ पैदा होती हैं। पहले सात दिन छोड़कर युग्म रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिए ॥ १० ॥ स्त्रियों के ऋतु की सोलह रात्रियाँ सामान्य कही गई हैं। जो चौदहवीं रात्रि होती है

उसमें जो गर्भ ठहरता है ॥ ११ ॥ उससे जो पुत्र पैदा होता है वह गुणवान्, भाग्यवान् और धार्मिक होता है। वह चौदहवीं रात्रि साधारण जीवों को कभी नहीं मिलती है ॥ १२ ॥ पाँचवें दिन स्त्रियों को मीठा भोजन करना चाहिए तथा कड़ुवा खारी, तेज और गर्म भोजन दूर से ही त्याग देना चाहिए ॥ १३ ॥

या वै चतुर्दशी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र वै॥ ११ ॥ गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तदा जायते धार्मिकः। सा निशा प्राकृतैर्जीवैर्न लभ्येत कदाचन ॥ १२ ॥ पञ्चमेऽहनि नारीणां कार्यं मधुरभोजनम्। कटुक्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः ॥ १३ ॥ तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाप्यमृतायनम्। तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक्फलमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥ ताम्बूलपुष्पश्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत्पुमान् ॥ १५ ॥ निषेक-

वह गर्भाशयरूपी क्षेत्र ओषधियों का पात्र है और बीज अमृत का घर है। उसमें स्वामी पुरुष बीज बोकर अच्छा फल पाता है ॥ १४ ॥ पुरुष पान खाकर, फूलमाला तथा चन्दन धारणकर, शुद्ध वस्त्र पहनकर मन में धार्मिक विचार लेकर उत्तम सेज पर जावे ॥ १५ ॥ प्रसंग समय में मनुष्य के चित्त में जैसी कल्पना होती

है उसी स्वभाव का जीव कोख में प्रवेश करता है ।। १६ ।। बीजरूप हुआ चैतन्य (जीव) सदा वीर्य में स्थित रहता है । काम, चित्त और वीर्य ये जब एक होते हैं ।। १७ ।। तब स्त्री के गर्भाशय में मनुष्य द्रवत्व

समये यादृङ्नरचित्तविकल्पना । तादृक्स्वभावसंभूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिगः ॥ १६ ॥ चैतन्यं बीजभूतं हि नित्यं शुक्रेऽप्यवस्थितम् । कामश्चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयात् ॥१७॥ तदा द्रावमवाप्नोति योषिद्गर्भाशये नरः । शुक्रशोणितसंयोगात्पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते ॥ १८॥ परमानन्ददः पुत्रो भवेद्गर्भगतः कृती । भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः पुंसवनादिकाः ॥ १९॥ जन्म प्राप्नोति पुण्यात्मा ग्रहेषूच्चगतेषु च । तज्जन्मसमये विप्राः

को प्राप्त होता है (स्खलित होता है)। वीर्य और रज के संयोग से पिण्ड की उत्पत्ति होती है ।। १८ ।। गर्भ में जब आनन्द देनेवाला सुकृती पुत्र होता है तब उसकी पुंसवन आदि की सब क्रियाएँ होती हैं ।। १९ ।। पुण्यात्मा

का जन्म *उच्च के ग्रहों में होता है। उसके जन्म-समय में ब्राह्मण बहुत-सा धन पाते हैं ॥ २० ॥ विद्या और विनय से युक्त हो पिता के घर में बढ़ता है। वह सज्जनों के संग से सब कामों में चतुर होता है ॥ २१ ॥ पहले किये हुए तप के फल का उदय होने से वह तरुण अवस्था में उत्तम स्त्री आदि का भोगने-

प्राप्नुवन्ति धनं बहु ॥ २० ॥ विद्याविनयसंपन्नो वर्धते पितृवेश्मनि । सतां सङ्गेन स भवेत्सर्वागमविशारदः ॥ २१ ॥ दिव्याङ्गनादिभोक्ता स्यात्तारुण्ये दानवान् धनी । पूर्वं कृततपस्तीर्थमहापुण्यफलोदयात् ॥ २२ ॥ ततश्च यतते नित्यमात्मानात्मविचारणे । अध्यारोपापवादाभ्यां कुरुते ब्रह्मचिन्तनम् ॥ २३ ॥ अस्यासङ्गावबोधाय ब्रह्मणोऽन्वयकारिणः । क्षित्याद्य-

वाला, दान देनेवाला और धनवान् होता है ॥ २२ ॥ तत्पश्चात् वह नित्य आत्मा और अनात्मा के विचार में यत्न करता है । अध्यारोप और अपवाद से ब्रह्म का चिन्तन करता है ॥ २३ ॥ अन्वय करनेवाले इस ब्रह्म

* मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुला ये राशियाँ क्रम से सूर्यादि ग्रहों की उच्च होती हैं।

के असंग का बोध करने के लिए (अर्थात् यह संगरहित है यह जानने के लिए) पृथ्वी आदि अनात्मवर्ग (पंचभूतों) के गुणों को तुमसे कहता हूँ ॥ २४ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच स्थूलरूप से कहे गये हैं। यह पिण्ड (शरीर) इन्हीं पाँच भौतिक तत्त्वों से बना है ॥ २५ ॥ हे गरुड़ ! त्वचा

नात्मवर्गस्य गुणांस्ते कथयाम्यहम् ॥ २४ ॥ क्षितिर्वारिहविर्भोक्ता वायुराकाश एव च। स्थूलभूता इमे प्रोक्ताः पिण्डोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ २५ ॥ त्वगस्थिनाड्यो रोमाणि मांसं चैव खगेश्वर। एते पञ्च गुणा भूमेर्मया ते परिकीर्तिताः ॥ २६ ॥ लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्। अपां पञ्चगुणाः प्रोक्तास्तेजसो विनिशामय ॥ २७ ॥ क्षुधा तृषा तथालस्यं

(खाल), हड्डी, नाड़ी, बाल और मांस ये पाँच गुण भूमि के मैंने तुमसे कहे हैं ॥ २६ ॥ लार, मूत्र, वीर्य मज्जा और रक्त ये पाँच गुण जल के कहे हैं। अब तेज के गुण सुनो ॥ २७ ॥ हे गरुड़ ! भूख, प्यास,

आलस्य, नींद और कान्ति ये पाँच तेज के गुण योगियों ने कहे हैं ॥ २८ ॥ सिकुड़ना, दौड़ना, लाँघना, फैलना और चेष्टा करना ये पाँच गुण वायु के कहे हैं ॥ २९ ॥ शब्द, चिन्ता, शून्यता, मोह और सन्देह ये पाँच

निद्राकान्तिस्तथैव च। तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ॥ २८ ॥ आकुञ्चनं धावनं च लङ्घनं च प्रसारणम्। चेष्टितं चेति पञ्चैव गुणा वायोः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥ घोषश्चिन्ता च शून्यत्वं मोहश्चिन्ता च संशयः। आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातयास्ते प्रयत्नतः ॥ ३० ॥ मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। अन्तःकरणमुद्दिष्टं पूर्वकर्माधिवासितम् ॥ ३१ ॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं ज्ञानेन्द्रियाणि च। वाक्पाणिपादपायूपस्थानि

गुण तुम्हें आकाश के जानना चाहिए ॥ ३० ॥ मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त ये चार गुण अन्तःकरण के पूर्व कर्मों की वासना से युक्त कहे हैं ॥ ३१ ॥ कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिंग ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं ॥ ३२ ॥ दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र ये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के देवता कहे हैं ॥ ३३ ॥ इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी पिंड में स्थित ये दश नाड़ियां प्रधान

कर्मेन्द्रियाणि च ॥ ३२ ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः । ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च देवताः परिकीर्तिताः ॥ ३३ ॥ इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णाख्या तृतीयका । गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥ ३४ ॥ अलम्बुषा कुहूश्चापि शंखिनी दशमी तथा । पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडिकाः ॥ ३५ ॥ प्राणोऽपानः समानाख्य उदानो व्यान एव च । नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ३६ ॥ हृदि प्राणो

हैं ॥ ३४-३५ ॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये शरीरस्थ दश वायु हैं ॥ ३६ ॥ हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कंठ में उदान और संपूर्ण शरीर में

व्यान वायु रहता है ॥ ३७ ॥ डकार आने में नाग, उन्मीलन में कूर्म, क्षुधा में कृकल और जँभाई लेने में देवदत्त जानना चाहिए ॥ ३८ ॥ सब शरीर में रहनेवाला धनंजय वायु मरने पर भी शरीर को नहीं छोड़ता है । ग्रास-ग्रास करके खाया हुआ अन्न ही सब प्राणियों को पुष्टि देनेवाला है ॥ ३९ ॥ व्यान वायु भोजन के

गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले । उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ३७ ॥ उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः । कृकलः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥ ३८ ॥ न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः । कवलैर्भुक्तमन्नं हि पुष्टिदं सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥ नयते व्यानको वायुः सारांशं सर्वनाडिषु । आहारो भुक्तमात्रो हि वायुना क्रियते द्विधा ॥ ४० ॥ संप्रविश्य गुदे सम्यक्पृथगन्नं पृथग्जलम् । ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा

सार अंश को सब नाड़ियों में पहुँचाता है । खाये हुए आहार का वायु दो भाग कर देता है ॥ ४० ॥ वह वायु गुदा में प्रवेश करके अन्न और जल को अलग-अलग करके अग्नि के ऊपर जल और जल के ऊपर अन्न

को कर देता है ॥ ४१ ॥ प्राणवायु अग्नि के नीचे स्थित होकर धीरे-धीरे अग्नि को धौंकता है । वायु से धौंका हुआ अग्नि कीट को और रस को अलग-अलग कर देता है ॥ ४२ ॥ व्यान वायु रस को सब शरीर में पहुँचाकर बारह द्वारों से कीट को बाहर निकाल देता है ॥ ४३ ॥ कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि,

कृत्वान्नं च जलोपरि ॥ ४१ ॥ अग्नेश्चाधः स्वयं प्राणः स्थित्वाऽग्निं धमते शनैः । वायुनाध्मायमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम् ॥ ४२ ॥ कुरुते व्यानको वायुर्विष्वक्संप्रापयेद्रसम् । द्वारैर्द्वादशभिर्भिन्नं किट्टं देहाद्बहिः स्रवेत् ॥ ४३ ॥ कर्णाक्षिनासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्नखा गुदम् । गुह्यं शिरावपुर्लोम मलस्थानानि चक्षते ॥ ४४ ॥ एवं सर्वे प्रवर्तन्ते स्वस्वकर्मणि वायवः । उपलभ्यात्मनः सत्तां सूर्यालोकं यथा जनः ॥ ४५ ॥ इदानीं नरदेहस्य

नख, गुदा, लिंग, शिरा, शरीर और बाल ये मल के स्थान कहे जाते हैं । (इन्हीं के द्वारा मल बाहर निकलता है) ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार अपने-अपने काम में सब वायु लगे रहते हैं । जैसे सूर्य से प्रकाश पाकर मनुष्य अपने-अपने काम में लगे रहते हैं ॥ ४५ ॥ हे गरुड़ ! अब मनुष्य की देह के दो रूपों को सुनो—एक

व्यावहारिक रूप है और दूसरा परमार्थ सम्बन्धी है ॥ ४६ ॥ व्यावहारिक शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोएँ हैं, सात लाख बाल हैं और बीस नख हैं ॥ ४७ ॥ हे विनता के पुत्र गरुड़ ! सामान्य रूप से बत्तीस दाँत कहे

शृणु रूपद्वयं खग । व्यावहारिकमेकं च द्वितीयं पारमार्थिकम् ॥ ४६ ॥
तिस्रःकोट्योऽर्धकोटी च रोमाणि व्यावहारिके । सप्त लक्षाणि केशाः स्युर्नखाः प्रोक्तास्तु विंशतिः ॥ ४७ ॥ द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः सामान्याद्विनतासुत । मांसं पलसहस्रं तु रक्तं पलशतं स्मृतम् ॥ ४८ ॥ पलानि दश मेदस्तु त्वक्पलानि च सप्ततिः । पलद्वादशकं मज्जा महारक्तं

हैं । हजार ❀ पल मांस ओर सौ पल रक्त कहा गया है ॥ ४८ ॥ दश पल मेद, सत्ताईस पल त्वचा, बाहर

* चार तोले का एक पल होता है ।

पल मज्जा, तीन पल महारक्त, दो*कुडव शुक्र, एक कुडव शोणित और तीन सौ साठ हड्डियाँ शरीर में कही हैं ॥ ४९-५० ॥ स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियाँ करोड़ों कही गई हैं। पचास पल पित्त और उससे आधा पचीस पल श्लेष्मा है ॥ ५१ ॥ सदा उत्पन्न होनेवाले विष्ठा और मूत्र बे प्रमाण होते हैं। इन गुणों से युक्त व्याव-

पलत्रयम् ॥ ४९ ॥ शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं कुडवं शोणितं स्मृतम्। षष्ट्युत्तरं च त्रिशतमस्थ्नां देहे प्रकीर्तितम् ॥ ५० ॥ नाड्यः स्थूलाश्च सूक्ष्माश्च कोटिशः परिकीर्तिताः। पित्तं पलानि पञ्चाशत्तदर्धं श्लेष्मणस्तथत ॥ ५१ ॥ सततं जायमानं तु विण्मूत्रं चाप्रमाणतः। एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं व्यावहारिकम् ॥ ५२ ॥ भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः। आदित्याद्या ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके ॥ ५३ ॥ पारमार्थिकदेहे हि षट्चक्राणि भवन्ति च।

हारिक शरीर होता है ॥ ५२ ॥ पारमार्थिक शरीर में सब भुवन, पर्वत, द्वीप, समुद्र और सूर्यादि ग्रह होते हैं ॥ ५३ ॥ पारमार्थिक शरीर में छह चक्र होते हैं तथा ब्रह्माण्ड में जो गुण होते हैं वे भी इसी शरीर में

* सोलह तोले का एक कुडव होता है।

स्थित रहते हैं ॥ ५४ ॥ उन योगियों की धारणा के स्थानभूत गुणों को तुमसे कहूँगा । उनकी भावना से मनुष्य विराट् रूप को जाननेवाला होता है ॥ ५५ ॥ विराट् रूप के पैरों के नीचे तल, पैरों के ऊपर वितल, घुटनों में सुतल और सक्थिप्रदेश में महातल जानना चाहिए ॥ ५६ ॥ सक्थिप्रदेश के मूल में तलातल, गुह्यदेश

ब्रह्माण्डे ये गुणाः प्रोक्तास्तेऽप्यस्मिन्नेव संस्थिताः ॥ ५४ ॥ तानहं ते प्रवक्ष्यामि योगिनां धारणास्पदान् । येषां भावनया जन्तुर्भवेद्वैराजरूपभाक् ॥ ५५ ॥ पादाधस्तात्तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा । जानुनोः सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम् ॥ ५६ ॥ तलातलं सक्थिमूले गुह्यदेशे रसातलम् । पातालं कटिसंस्थं च सप्त लोकाः प्रकीर्तिताः ॥ ५७ ॥ भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वके । स्वर्लोके हृदये विद्यात्कण्ठदेशे महस्तथा ॥ ५८ ॥ जन-

में रसातल और कटिप्रदेश में पाताल है । इस प्रकार ये सात लोक कहे हैं ॥ ५७ ॥ नाभि के मध्य में भूलोक, उसके ऊपर भुवर्लोक, हृदय में स्वर्लोक, कंठ में महर्लोक ॥ ५८ ॥ मुख में जनलोक, मस्तक में तपोलोक और

ब्रह्मरन्ध्र में सत्यलोक है। ये चौदह भुवन हैं ॥ ५९ ॥ त्रिकोण में मेरु पर्वत, अधःकोण में मन्दराचल, दक्षिण कोण में कैलास, वामकोण में हिमाचल ॥ ६० ॥ ऊर्ध्व रेखा में निषधपर्वत, दक्षिणरेखा में गन्धमादन और

लोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं ब्रह्मरन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ॥ ५९ ॥ त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः। दक्षकोणे च कैलासो वामकोणे हिमाचलः ॥ ६० ॥ निषधश्चोर्ध्वरेखायां दक्षायां गन्धमादनः। रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः ॥ ६१ ॥ अस्थिस्थाने भवेज्जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः। कुशद्वीपस्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च ॥ ६२ ॥ त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये। नखस्थं

वामरेखा में रमणाचल है। ये सात कुल पर्वत हैं ॥ ६१ ॥ हड्डियों के स्थान में जम्बूद्वीप, मज्जा में शाकद्वीप, मांस में कुशद्वीप, शिराओं में क्रौञ्चद्वीप ॥ ६२ ॥ त्वचा में शाल्मलीद्वीप, रोमसमूह में गोमेदद्वीप और नखों

में पुष्करद्वीप जानना चाहिए। इसके पश्चात् ये समुद्र हैं॥ ६३॥ मूत्र में खारी समुद्र, दूध में क्षीरसागर, श्लेष्मा में मदिरा का सागर, मज्जा में घृत का सागर॥ ६४॥ रस में रस का समुद्र और शोणित में दधिसागर जानना चाहिए। हे गरुड़! लम्बिका में (कंठ के भीतर) स्वादिष्ट जल का समुद्र जानना

पुष्करं विद्यात्सागरास्तदनन्तरम्॥ ६३॥ क्षारोदो हि भवेन्मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः। सुरोदधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः॥ ६४॥ रसोदधिं रसे विद्याच्छोणिते दधिसागरः। स्वादूदो लम्बिकास्थाने जानीयाद्विनतासुत॥ ६५॥ नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये ज्ञः प्रकीर्तितः॥ ६६॥ विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः। नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः॥ ६७॥

चाहिए॥ ६५॥ नादचक्र में सूर्य, बिन्दुचक्र में चन्द्रमा, नेत्रों में मंगल और हृदय में बुध कहा गया है॥ ६६॥ विष्णु-स्थान में बृहस्पति, वीर्य में शुक्र, नाभिस्थान में शनि और मुख में राहु स्थित है॥ ६७॥

वायु के स्थान में केतु स्थित है । इस प्रकार शरीर में ग्रहमंडल जानना चाहिए । इस पूर्वोक्त स्वरूप से अपने शरीर का चिन्तन करना चाहिए ॥ ६८ ॥ सदैव प्रातःकाल में पद्मासन लगाकर बैठे और कहे हुए अजपा के क्रम से षट्चक्र का चिन्तन करे ॥ ६९ ॥ मुनियों को मोक्ष देनेवाली गायत्री का नाम अजपा है । इसके

वायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम् । एवं सर्वस्वरूपेण चिन्तयेदात्मनस्तनुम् ॥ ६८ ॥ सदा प्रभातसमये बद्धपद्मासनस्थितः षट्चक्रचिन्तनं कुर्याद्यथोक्तमजपाक्रमम् ॥ ६९ ॥ अजपानाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी । अस्याः सङ्कल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७० ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्येऽहमजपाक्रममुत्तमम् । यं कृत्वा सर्वदा जीवो जीवभावं विमुञ्चति ॥ ७१ ॥ मूलाधारः स्वधिष्ठानं मणिपूरकमेव च । अनाहतं

संकल्पमात्र से ही प्राणी सब पापों से छूट जाता है ॥ ७० ॥ हे गरुड़ ! मैं अजपा का क्रम कहता हूँ, सुनो । उस क्रम को करके जीव सदा के लिए जीवभाव से छूट जाता है ॥ ७१ ॥ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक,

अनाहत, विशुद्धाख्य और आज्ञा यह षट्चक्र कहा जाता है ॥ ७२ ॥ मूलाधार लिङ्गस्थान में, नाभि में, हृदय में, कंठ में, भौंहों के मध्य में और ब्रह्मरन्ध्र में क्रम से छहों चक्रों का चिन्तन करे ॥ ७३ ॥ 'व, श, ,ष, स' इन वर्णों के आश्रय अग्नि के समान चार दलवाला मूलाधार चक्र होता है । 'ब, भ, म, य, र, ल' इन छह

विशुद्धाख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते ॥ ७२ ॥ मूलाधारे लिङ्गदेशे नाभ्यां हृदि च कण्ठगे । भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत् ॥ ७३ ॥ आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालान्तषट्पत्रकम् । रक्ताभं मणिपूरकंदशदलंडाद्यं फकारान्तकं पत्रैर्द्वादशभीरनाहतपुरं हैमं कठान्तावृतम् ॥ ७४ ॥ पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं हंसेत्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमाज्ञाम्बुजम् । तस्मादूर्ध्वगतं

पत्रोंवाला सूर्य के समान तेजोमय स्वाधिष्ठान चक्र होता है । 'ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ' इन दश दलोंवाला लाल वर्ण का मणिपूरक चक्र होता है । 'क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ' इन बारह पत्रोंवाला सुवर्ण के समान अनाहत चक्र होता है ॥ ७४ ॥ 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ,

ओ, औ, अं, अः' इन सोलह स्वररूप पत्रोंवाला चन्द्रमा की ज्योति के समान विशुद्धाख्य चक्रहोता है। 'ह, स' इन दो अक्षरों के रूपवाला रक्तवर्ण कमल के समान आज्ञाचक्र होता है। इनसे ऊपर प्रकाशमान हजार दलवाला कमल है जो सत्य, आनन्दमय, सदा कल्याणरूप, ज्योतिरूप और शाश्वत है ॥ ७५ ॥ क्रम से इन सातों

प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं सत्यानन्दमयं सदाशिवमयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम् ॥ ७५ ॥ गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः। व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाच्चक्रेषु चिन्तयेत् ॥ ७६ ॥ एकविंशत्सहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च। अहोरात्रेण श्वासस्य गतिः सूक्ष्मा स्मृता बुधैः ॥ ७७ ॥ हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंसो हंसेतिमन्त्रेण जीवो जपति

चक्रों में गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीव, बृहस्पति और सर्वव्यापक परब्रह्म का चिन्तन करे ॥ ७६ ॥ विद्वानों ने रात्रि-दिन में इक्कीस हजार छह सौ श्वास की सूक्ष्म गति कही हैं ॥ ७७ ॥ हकार से श्वास बाहर आता है और सकार से पुनः भीतर जाता है। इस प्रकार जीव तत्त्व से 'हंसो-हंस' (सोहं-सोहं) इस मंत्र का जप

करता है ॥ ७८ ॥ गणेशजी के लिए छह सौ, ब्रह्मा के लिए छह हजार, हरि के लिए छह हजार, हर (शिव) के लिए छह हजार, जीवात्मा के लिए एक हजार, गुरु के लिए एक हजार और चिदात्मा के लिए भी एक हजार जपों की संख्या निवेदन करे ॥ ७९-८० ॥ सत्संप्रदाय के जाननेवाले अरुणादिक मुनि लोग इन चक्रों

तत्त्वतः ॥ ७८ ॥ षट्शतं गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे । षट्सहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च ॥ ७९ ॥ जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा । चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत् ॥ ८० ॥ एतांश्चक्रगतान् ब्रह्ममयूखान्मुनयोऽमरान् । सत्संप्रदायवेत्तारश्चिन्तयन्त्यरुणादयः ॥ ८१ ॥ शुकादयोऽपि मुनयः शिष्यानुपदिशन्ति च । अतः प्रवृत्ति महतां ध्यात्वा ध्यायेत्सदा बुधः ॥ ८२ ॥ कृत्वा च मानसीं पूजां सर्वचक्रेष्वनन्यधीः । ततो

में प्राप्त ब्रह्म की अमर किरणों का चिन्तन करते हैं ॥ ८१ ॥ शुकदेव आदि मुनि लोग शिष्यों को यही उपदेश देते हैं। इसलिए बड़ों की प्रवृत्ति को जानकर बुद्धिमान् सदा ध्यान करे ॥ ८२ ॥ एकाग्र मन होकर

सब चक्रों में मानसी पूजा करके फिर गुरु के उपदेश से अजपा गायत्री का जप करे ॥ ८३ ॥ नीचे को मुखवाले हजार दल के कमल में अभयप्रद कमल हाथ में लिये हुए हंस पर सवार, श्रेष्ठ श्रीगुरु का ध्यान करे ॥ ८४ ॥ उन गुरु के चरणामृत की धार से धोई हुई देह को पंचोपचार से पूजकर उनका चिन्तन कर

गुरूपदेशेन गायत्रीमजपां जपेत् ॥ ८३ ॥ अधोमुखे ततो रन्ध्रे सहस्रदलपङ्कजे । हंसगं श्रीगुरुं ध्यायेद्वराभयकराम्बुजम् ॥ ८४ ॥ क्षालितं चिन्तयेद्देहं तत्पादामृतधारया । पञ्चोपचारैः संपूज्य प्रणमेत्तत्स्तवेन च ॥ ८५ ॥ ततः कुण्डलिनीं ध्यायेदारोहादवरोहतः । षट्चक्रकृतसंचारां सार्धत्रिवलयां स्थिताम् ॥ ८६ ॥ ततो ध्यायेत् सुषुम्णाख्यं धाम रन्ध्राद्बहिर्गतम् । पथा तेन गता यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ८७ ॥ ततो मच्चिन्तितं रूपं स्वयं

उनके स्तोत्रों से प्रणाम करे ॥ ८५ ॥ छहों चक्रों में संचार करनेवाली साढ़े तीन वलयों में स्थित कुण्डलिनी का आरोह और अवरोह के क्रम से ध्यान करे ॥ ८६ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र से बाहर हुए सुषुम्ना नाम धाम का ध्यान करे । इस मार्ग से गये हुए जीव विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ८७ ॥ फिर स्वयं

प्रकाशरूप, सनातनरूप और सदा आनन्ददायक मेरे चिन्तित रूप का ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान करे ॥ ८८ ॥ इस प्रकार गुरु के उपदेश से मन निश्चल हो जाता है । केवल अपने प्रयत्न से नहीं । विना गुरु के उपदेश के पतन हो जाता है । (योग से चलायमान हो जाता है) ॥ ८९ ॥ इस पूर्वोक्त प्रकार से अन्तर्यज्ञ का साधन

ज्योतिः सनातनम् । सदानन्दं सदा ध्यायेन्मुहूर्ते ब्राह्मसंज्ञके ॥ ८८ ॥ एवं गुरूपदेशेनमनोनिश्चलतां नयेत् । न तु स्वेन प्रयत्नेन तद्विना पतनं भवेत् ॥ ८९ ॥ अन्तर्यागं विधायैवं बहिर्यागं समाचरेत् । स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा कुर्याद्धरिहरार्चनम् ॥ ९० ॥ देहाभिमानिनामन्तर्मुखी वृत्तिर्न जायते । अतस्तेषां तु मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी ॥ ९१ ॥ तपोयोगादयो मोक्ष-

करके बाहरी यज्ञ करे । स्नान और सन्ध्या करके विष्णु भगवान् और शिवशंकर का पूजन करे ॥ ९० ॥ देहाभिमानियों की अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं होती है इसलिए उनको मेरी भक्ति सहज और मोक्षदायिनी होती है ॥ ९१ ॥ यद्यपि तप और योग आदि मोक्ष के मार्ग हैं तथापि संसारी मनुष्यों के लिए मेरी भक्ति का

मार्ग ही उत्तम है ॥ ९२ ॥ ब्रह्मा आदि सर्वज्ञों ने वेद-शास्त्र का बार-बार विचार करके यही भक्ति का मार्ग निश्चित किया है ॥९३॥ यज्ञ आदि उत्तम धर्म चित्त को शुद्ध करनेवाले हैं और मेरी भक्ति फलरूपा है। इसको पाकर फिर दुःखी नहीं होता है ॥ ९४ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार जो सुकृती मनुष्य आचरण करता है

मार्गाः सन्ति तथापि च । समीचीनस्तु मद्भक्तिमार्गः संसरतामिह ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादिभिश्च सर्वज्ञैरयमेव विनिश्चितः । त्रिवारं वेदशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥ ९३ ॥ यज्ञादयोऽपि सद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः । फलरूपा च मद्भक्तिस्तां लब्ध्वा नावसीदति ॥ ९४ ॥ एवमाचरणं तार्क्ष्य करोति सुकृती नरः । संयोगेन च मद्भक्त्या मोक्षं याति सनातनम् ॥ ९५ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

वह मेरी भक्ति के योग से सनातन मोक्ष को पाता है ॥ ९५ ॥ गरुड़पुराण का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

गरुड़जी पूछते हैं कि हे दया के समुद्र ! अज्ञान से जीवों का संसार में आना-जाना मैंने सुना, अब सनातन मोक्ष का उपाय सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ हे शरणागतवत्सल ! हे देवों के देव ! हे भगवन् ! सब दुःखों से मलीन इस साररहित घोर संसार में अनेक प्रकार के शरीरों में स्थित अनन्त जीव-समूह पैदा होते

गरुड उवाच ॥ श्रुता मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः । अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम् ॥ १ ॥ भगवन् देवदेवेश शरणागतवत्सल । असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे ॥ २ ॥ नानाविधशरीरस्था ह्यनन्ता जीवराशयः । जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते ॥ ३ ॥ सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित् । केनोपायेन मोक्षेश मुच्यन्ते वद मे प्रभो ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं

हैं और मरते हैं उनका अन्त नहीं है ॥ २-३ ॥ वे सदा दुःख से आतुर रहते हैं, कभी सुखी नहीं होते हैं। हे मोक्ष के स्वामी प्रभो ! वे किस उपाय से इस संसार से छूटते हैं, सो मुझसे कहिए ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले

कि हे गरुड़ ! जो तुम मुझसे पूछते हो उसे कहता हूँ, सुनो। इसके सुननेमात्र से ही मनुष्य संसार से छूट जाता है ॥ ५ ॥ परब्रह्मस्वरूप, कलारहित शिवरूप, सबको जाननेवाले, सबके कर्ता, सबके स्वामी, मलरहित और द्वैतरहित भगवान् हैं ॥ ६ ॥ स्वयंप्रकाश, आदि-अन्त से रहित, निर्विकार, पर से पर, गुणरहित,

परिपृच्छसि। यस्य श्रवणमात्रेणसंसारान्मुच्यते नरः ॥ ५ ॥ अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः। सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः ॥ ६ ॥ स्वयंज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः। निर्गुणः सच्चिदानन्दस्त दंशाज्जीवसंज्ञकः ॥ ७ ॥ अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः। देहाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः ॥ ८ ॥ सुखदुःखप्रदैः पुण्यपाप-

सच्चिदानन्द भगवान् के अंश से यह जीवसंज्ञक प्राणी है ॥ ७ ॥ अनादि अविद्या से उपहत होकर (टकराकर) जैसे अग्नि में चिनगारियाँ उठती हैं ऐसे ही जीव अनादि कर्मों से प्राप्त देह आदि उपाधि से भिन्न होता है ॥ ८ ॥ सुख तथा दुःख के देनेवाले पुण्य और पापों से बँधे हुए उन-उन जातियों से युक्त हो देह (शरीर),

आयु और कर्मों से उत्पन्न भोग को प्रत्येक जन्म में पाता है । हे गरुड़ ! फिर उनसे भी परे मोक्षपर्यन्त सूक्ष्म लिङ्ग शरीर को पाता है ॥ ९-१० ॥ स्थावर (वृक्षादि की योनि), कीट, पक्षी, पशु, धर्म करनेवाले मनुष्य और देवता ये क्रम से मोक्ष के भागी होते हैं, अर्थात् वृक्षादि के बाद कीट, तदनन्तर पक्षी, फिर पशु और

रूपैर्नियन्त्रिताः । तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम् ॥ ९ ॥ प्रति जन्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः । ससूक्ष्मलिङ्गशारीरमामोक्षादक्षरं खग ॥ १० ॥ स्थावराः कृमयश्चाजाः पक्षिणः पशवो नराः । धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः । सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ चतुराशीतिलक्षेषु

इसके बाद धर्मात्मा मनुष्य होकर देवत्व को पाकर मोक्ष हो जाता है ॥ ११ ॥ हजारों बार चार प्रकार के शरीरों को धारण कर-कर छोड़ता हुआ अच्छे कर्मों से मनुष्य होकर जो ज्ञानी होता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ चौरासी लाख योनियों में देह धारण करनेवाले शरीरों में मनुष्य देह के बिना तत्त्वज्ञान

नहीं प्राप्त होता है (विना तत्त्वज्ञान के मोक्ष नहीं होता है) ।। १३ ।। हजारों अथवा हजार करोड़ जन्मों में कभी पुण्य के संचय से प्राणी मनुष्यजन्म को पाता है ।। १४ ।। मोक्ष की सीढ़ीरूप दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर जो आतमा को नहीं तारता है उससे बढ़कर पापी कौन है ? ।। १५ ।। जो मनुष्य इस उत्तम नरदेह

शरीरेषु शरीरिणाम् । न मानुषं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥ १३ ॥ अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपिकोटिभिः । कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्य-सञ्चयात् ॥ १४ ॥ सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् । यस्तार-यति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ॥ १५ ॥ नरः प्राप्योत्तरं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम् । न वेत्त्यात्महितं यस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः ॥ १६ ॥ विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते । तस्माद्देहं धनं रक्षेत्पुण्यकर्माणि

को और इन्द्रियों की सुन्दरता को पाकर अपने आतमा का हित नहीं जानता है वह ब्रह्मघातक होता है ।। १६ ।। बिना शरीर के किसी को भी पुरुषार्थ नहीं होता है, इसलिए देह और धन की रक्षा कर पुण्य

कर्मों की साधना करे ॥ १७ ॥ सदा आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। आत्मा ही सबका पात्र है। अपनी रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए, क्योंकि जीता रहेगा तो अनेक कल्याणों को देखेगा ॥ १८ ॥ गाँव, खेत, धन, घर, शुभ और अशुभ ये तो बार-बार मिलते रहते हैं, परन्तु यह मनुष्यशरीर बार-बार नहीं मिलता

साधयेत् ॥ १७ ॥ रक्षयेत्सर्वदात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्। रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन् भद्राणि पश्यति ॥ १८ ॥ पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम्। पुनः शुभाशुभं कर्म न शरीरं पुनःपुनः॥ १९ ॥ शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः। नेच्छन्ति च पुनस्त्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः ॥ २० ॥ तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च। ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिरात्प्रविमुच्यते ॥ २१ ॥ आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्। कोऽन्यो-

है ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् सदैव शरीर की रक्षा का उपाय किया करते हैं। क्योंकि कोढ़ी आदि भी शरीर त्यागने की इच्छा नहीं करते हैं ॥ २० ॥ रक्षा किये हुए इस शरीर से धर्म होता है और धर्म से ज्ञान और ज्ञान से ध्यान और ध्यान से योग को प्राप्त होकर शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥ जो आत्मा ही आत्मा को बुरे

कामों से नहीं बचावे तो इससे दूसरा और कौन आत्मा का हित करनेवाला होगा ॥ २२ ॥ जो इस लोक में ही नरकरूप रोग की चिकित्सा नहीं करता है तो वह रोगी औषधरहित देश में जाकर क्या करेगा ॥ २३ ॥ व्याघ्री के समान बुढ़ापा है और फूटे घड़े के जल के समान आयु बीती जा रही है तथा रोग वैरी के समान

हितकरस्तस्मादात्मानं कारयिष्यति ॥ २२ ॥ इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः। गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति ॥ २३ ॥ व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्। निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥ २४ ॥ यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः। यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥ २५ ॥ यावत्तिष्ठति देहोऽयं

प्रहार करते हैं। इसलिए कल्याणप्रद कार्य का अभ्यास करना चाहिए ॥ २४ ॥ जब तक दुःख आश्रय न करे और जब तक विपत्तियाँ जब आवें तथा तब तक इन्द्रियाँ व्याकुल न हो जायँ तब तक कल्याण के लिए उपाय करना चाहिए ॥ २५ ॥ जब तक यह शरीर सावधान रहे तब तक ही तत्त्व का अभ्यास कर लेना चाहिए।

क्योंकि घर के कोने में आग लग जाने पर दुर्बुद्धिवाला ही कुआँ खोदने लगता है ॥ २६ ॥ सांसारिक अनेक कार्यों में फँसे रहने के कारण समय नहीं जान पड़ता है। खेद की बात है कि मनुष्य अपने सुख, दुःख तथा हित को नहीं जानता है ॥ २७ ॥ पैदा हुए जनों को, विपत्तिग्रस्तों को, मृतकों को, आपत्ति में फँसों को तथा

तावत्तत्त्वं समभ्यसेत् । सन्दीप्तकोणभवने कूपं खनति दुर्मतिः ॥ २६ ॥ कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः । सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः ॥ २७ ॥ जातानार्तान्मृतानापद्ग्रस्तान् दृष्ट्वा च दुःखितान् । लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन ॥ २८ ॥ सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम् । तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः ॥ २९ ॥ शतं

दुःखितों को देखकर भी यह लोक मोहरूपी मदिरा को पीकर कभी नहीं डरता है ॥ २८ ॥ धन-संपत्ति स्वप्न के तुल्य हैं और यौवन फूल के समान है तथा आयु बिजली के समान चपल है। इस बात को जानकर किसको धैर्य होता है ॥ २९ ॥ पहले तो सौ वर्ष का जीना ही कम है, उसमें से भी आधा निद्रा और आलस्य

में चला जाता है तथा उसमें से भी बाल्यावस्था, बुढ़ापा, रोग और दुःखों में चला जाता है, अतः शेष आयु भी निष्फल ही बीत जाती है ॥ ३० ॥ मोक्ष आदि के उपाय का प्रारंभ करने में उद्योगरहित होनेवाला, जागने योग्य (ब्रह्मचिन्तन) कार्य में सोनेवाला (अर्थात् ब्रह्म का चिन्तन नहीं करना) और भय का स्थान जो संसार है उसमें विश्वास करनेवाला कौन मनुष्य नहीं मारा जाता है (अर्थात् सब ही मारे

जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम् । बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम् ॥ ३० ॥ प्रारब्धव्ये निरुद्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः । विश्वस्तव्यो भयस्थाने हा नरः को न हन्यते ॥ ३१ ॥ तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते । अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः ॥ ३२ ॥ अहिते हितसंज्ञः

जाते हैं) ॥ ३१ ॥ जल के फेन के समान देह में जब जीव आक्रमण करके स्थित होता है तब इस अनित्य देहरूपी प्यारे के सहवास में निर्भय कैसे रह सकता है ? ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य अपने बुरे-भले को (आतम-ज्ञान को) नहीं जानता है वह वैरीरूप सांसारिक विषयों को हितू समझता है, अनित्य देह आदि को ध्रुवसंज्ञक

(नित्य) समझता है, तथा अनर्थकारी धन को ही वह अपना सिद्ध प्रयोजन समझता है ॥ ३३ ॥ देवमाया से मोहित हुआ मनुष्य देखता हुआ भी गिर पड़ता है, सुनता हुआ भी उसकी ओर ध्यान नहीं देता है तथा पढ़ता हुआ भी नहीं जानता है ॥ ३४ ॥ उस कालरूपी गहरे समुद्र में मृत्यु, रोग और बुढ़ापारूपी ग्राहों से

स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः । अनर्थे चार्थविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः ॥ ३३ ॥ पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति । पठन्नपि न जानाति देवमाया-विमोहितः ॥ ३४ ॥ तन्निमज्जज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे । मृत्युरोगजरा-ग्राहैर्न कश्चिदपि बुध्यते ॥ ३५ ॥ प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते । आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णन् न विभाव्यते ॥ ३६ ॥ युज्यते

पकड़ा हुआ और गोता खाता हुआ यह जगत् कभी भी बोध को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ क्षण-क्षण में क्षीण होता हुआ यह काल (समय) इस प्रकार नहीं दिखाई देता है जैसे जल में रक्खा हुआ कच्चा घड़ा घुलता-बिखरता नहीं जाना जाता है ॥ ३६ ॥ वायु का बाँधना, आकाश का खण्डन करना और जल की

तरङ्गों का गूँथना सम्भव हो सकता है, परन्तु आयु के बारे में आस्था करना असम्भव है ॥ ३७ ॥ जब काल पृथ्वी को फूँक सकता है, सुमेरु को बिखेर सकता है और समुद्र को सुखा सकता है तब इस शरीर का कहना ही क्या है ? ॥ ३८ ॥ मेरी संतान है, मेरी स्त्री है, मेरे भाई-बन्धु हैं, मेरा धन है, इस प्रकार कहते हुए

वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम् । ग्रथनं च तरङ्गाणामास्था नायुषि युज्यते ॥ ३७॥ पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते । शुष्यते सागर-जलं शरीरस्य च का कथा ॥ ३८ ॥ अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे । जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात् ॥ ३९ ॥ इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् । एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम् ॥ ४० ॥ श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् । नहि मृत्युः प्रतीक्षेत

मनुष्यरूपी बकरे को कालरूपी भेड़िया जबरदस्ती मार डालता है ॥ ३९ ॥ यह काम कर लिया है, यह करने को है, यह किया-अनकिया है, इस प्रकार की चेष्टा करते हुए पुरुष को यमराज अपने वश में कर लेता है ॥ ४० ॥ कल होनेवाले काम को आज ही कर ले और दोपहर पीछे करनेवाले काम को दोपहर पहले ही

कर ले, क्योंकि मौत किये-अनकिये की प्रतीक्षा नहीं करती है ॥ ४१ ॥ बुढ़ापा द्वारा दिखाया है मार्ग जिसको ऐसे प्रचण्ड रोगरूपी सेनावाले शत्रुरूपी मौत से दबाया हुआ तू अपने रक्षक भगवान् को क्यों नहीं देखता है ॥ ४२ ॥ तृष्णारूपी सुई से छेदे हुए, विषयरूपी घी से सींचे हुए और रागद्वेषरूपी अग्नि में पके हुए मनुष्य

कृतं वाप्यथवाकृतम् ॥ ४१ ॥ जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम् । मृत्युशत्रुमधिष्ठोऽसि त्रातारं किं न पश्यसि ॥ ४२ ॥ तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा । रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम् ॥ ४३ ॥ बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि । सर्वानाविशते मृत्युरेवंभूतमिदं जगत् ॥ ४४ ॥ स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम् । स्त्रीमातृपितृपुत्रादि-

को मृत्यु खा लेती है ॥ ४३ ॥ बालक, युवा, वृद्ध और गर्भ में रहनेवालों को यह मृत्यु अवश्य खा लेती है, ऐसा यह संसार है । अर्थात् संसार में आया हुआ मृत्यु से कोई नहीं बचता है ॥ ४४ ॥ यह जीव जब अपने शरीर को भी छोड़कर यमलोक को चला जाता है तब स्त्री, माता, पिता और पुत्र आदि सम्बन्धियों की बात ही

क्या है ॥ ४५ ॥ इस दुःखरूपी जगत् की जिसको इच्छा है वही दुःखी है। जिसने इसका त्याग कर दिया है वही सुखी है, अन्य कोई नहीं ॥ ४६ ॥ सब दुःखों को पैदा करनेवाला और सब विपत्तियों का स्थान तथा सब पापों का आश्रयरूप इस संसार को शीघ्र छोड़ देना चाहिए ॥ ४७ ॥ लोह और लकड़ी से बने फाँसों

संबन्धः केन हेतुना ॥ ४५ ॥ दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः। तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित् ॥ ४६ ॥ प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्। आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन ॥ ४८ ॥ यावतः कुरुते जन्तुः संबन्धान्मनसः प्रियान्। तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥ ४९ ॥ वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको

से बँधा हुआ पुरुष छूट जाता है, परन्तु पुत्र-स्त्रीरूपी फाँसों से बँधा हुआ कभी नहीं छूटता है ॥ ४८ ॥ प्राणी जितने मन के प्यारे सम्बन्धों को करता है उतनी ही शोकरूपी कीलें उसके हृदय में गड़ती जाती हैं ॥ ४९ ॥ हा ! खेद की बात है कि छल से संपूर्ण धन को हरनेवाले, विषयरूपी आहार करनेवाले उन देह में स्थित

इन्द्रियरूपी चोरों ने लोक को नष्ट कर दिया है ॥ ५० ॥ जैसे मांस का लोभी मत्स्य मांस में लिपटी कील को नहीं देखता है वैसे ही सुख का लोभी मनुष्य यम की बाधा को नहीं देखता है ॥ ५१ ॥ हे गरुड़ ! जो अपने भले-बुरे को नहीं जानते हैं और हमेशा खोटे मार्ग में चलते हैं तथा अपना ही पेट भरने में लगे रहते हैं

विनाशितः । हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः ॥ ५० ॥ मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशंकुं न पश्यति । सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति ॥ ५१ ॥ हिताहिते न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः । कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग ॥ ५२ ॥ निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः । ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः ॥ ५३ ॥ प्रभाते मलमूत्राभ्यां

वे मनुष्य नरकगामी हैं ॥ ५२ ॥ सोना, मैथुन करना और खाना ये सब प्राणियों के समान हैं । परन्तु ज्ञानवान् मनुष्य कहा जाता है और जो ज्ञान से हीन है वह पशु कहा जाता है ॥ ५३ ॥ प्रातःकाल मल और

मूत्र से, मध्याह्न के समय भूख और प्यास से तथा रात्रि में कामदेव और निद्रा से मूर्ख पुरुष सताया जाता है ॥ ५४ ॥ खेद है कि अज्ञान से मोहित सब जीव अपने देह, धन और स्त्री आदि के प्रेम में फँसे हुए मरते हैं और पैदा होते हैं ॥ ५५ ॥ इसलिए सदा संग का त्याग करना चाहिए, यदि सब न छोड़ सके तो बड़ों के

क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ । रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्तेमूढमानवाः ॥ ५४ ॥ स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः । जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञान-मोहिताः ॥ ५५ ॥ तस्मात्सङ्गः सदा त्याज्यः सर्वस्त्यक्तुं न शक्यते । महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम् ॥ ५६ ॥ सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम् । यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः ॥ ५७ ॥ स्वस्ववर्णाश्रमाचारनिरताः सर्वमानवाः । न जानन्ति परं धर्मं वृथा

साथ संग करना चाहिए क्योंकि सन्त (सज्जन) ही संग की औषध है ॥ ५६ ॥ सत्संग और विवेक ये ही दो निर्मल नयन हैं। जिसके ये दोनों नहीं हैं वह अन्धा मनुष्य कुमार्ग में कैसे नहीं जायगा (अवश्य जायगा) ॥ ५७ ॥ सब मनुष्य अपने-अपने वर्णाश्रम और आचार में लगे हुए दूसरे धर्म को नहीं जानते हैं।

पाखण्डी वृथा ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ कोई नित्यक्रिया में परिश्रम करनेवाले और कोई व्रत, उपवास आदि करनेवाले अज्ञान से घिरे हुए छलिया घूमा करते हैं ॥ ५९ ॥ कर्मकाण्ड में लगे हुए मनुष्य नाममात्र से प्रसन्न हो जाते हैं। वे मंत्र का उच्चारण और होम आदि से तथा यज्ञ के विस्तारों से भ्रमाये हुए मूढ़ एक

नश्यन्ति दाम्भिकाः ॥ ५८ ॥ क्रियायासपराः केचिद्व्रतचर्यादिसंयुताः । अज्ञानसंवृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः ॥ ५९ ॥ नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरताः नराः । मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः ॥ ६० ॥ एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः । मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः ॥ ६१ ॥ देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम् । वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः ॥ ६२ ॥ जटाभाराजिनैर्युक्ता

बार भोजन, उपवास और शरीर को सुखानेवाले नियमों से मोक्ष की इच्छा करते हैं। वे मेरी माया से मोहित हैं ॥ ६०-६१ ॥ देह को दंड देनें मात्र से अविवेकियों की मुक्ति कैसे हो सकती है। बाँबी के पीटने से कहीं सर्प मरा है ॥ ६२ ॥ पाखण्डी लोग बड़ी-बड़ी जटा और मृगचर्म धारण करके साधुओं का-सा वेष बनाये

ज्ञानियों के समान लोक में घूमते हैं और मनुष्यों को बहकाते हैं ॥ ६३ ॥ सांसारिक कर्मों में आसक्त और 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ' ऐसा कहनेवाला तथा कर्म और ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट मनुष्य को चाण्डाल के समान त्याग देना चाहिए ॥ ६४ ॥ संसार में घर और वन को समान जाननेवाले, लज्जारहित, नंगे गर्दभ आदि

दाम्भिका वेषधारिणः । भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि ॥ ६३ ॥
संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् । कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजे-
दन्त्यजं यथा ॥ ६४ ॥ गृहारण्यसमा लोके गतव्रीडा दिगम्बराः । चरन्ति
गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम् ॥ ६५ ॥ मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः
स्युर्यदि मानवाः । मृद्भस्मवासी नित्यं श्वास किं मुक्तो भविष्यति ॥ ६६ ॥
तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः । जम्बूकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते

घूमा करते हैं तो क्या वे विरक्त हो जाते हैं ? ॥ ६५ ॥ अगर मिट्टी और भस्म लगाने से ही मनुष्य मुक्त हो जायँ तो क्या हमेशा मिट्टी और भस्म में रहनेवाला कुत्ता भी मुक्त हो जायगा ? ॥ ६६ ॥ तृण, पत्ते और जल का आहार करनेवाले और सदा वन में बसनेवाले सियार, मूषा और मृग आदि क्या तपस्वी होते

हैं ? (कभी नहीं) ॥ ६७ ॥ जन्म से मरणपर्यन्त गंगा आदि नदियों में रहनेवाले मेढक, मत्स्य आदि क्या योगी होते हैं ? (कभी नहीं) ॥ ६८ ॥ कंकड़ों को खानेवाले कबूतर और पृथ्वी के जल को कभी भी नहीं पीनेवाले चातक क्या व्रती होते हैं (कभी नहीं) ॥ ६९ ॥ इसलिए ये सब काम लोगों को प्रसन्न करनेवाले हैं।

भवन्ति किम् ॥ ६७ ॥ आजन्ममरणान्तं च गङ्गादितटिनीस्थिताः । मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवन्ति किम् ॥ ६८ ॥ पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः । न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्ति किम् ॥ ६९ ॥ तस्मादित्यादिकं कर्म लोकरञ्जनकारकम् । मोक्षस्य कारणं साक्षात्तत्त्वज्ञानं खगेश्वर ॥ ७० ॥ षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग । परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिताः ॥ ७१ ॥ वेदशास्त्रार्णवे घोरे ऊह्यमाना इत

हे गरुड़ ! मोक्ष का कारण तो केवल तत्त्वज्ञान ही है ॥ ७० ॥ हे गरुड़ ! षड्दर्शनरूपी महाअन्धकूप में पड़े हुए शास्त्रों के पढ़ने में आकुल (ज्ञानरहित) पशु परमार्थ (ईश्वर),को नहीं जानते हैं क्योंकि वे पशुओं की रस्सी (मोह की रस्सी) में बँधे हुए हैं ॥ ७१ ॥ वेद-शास्त्ररूपी घोर समुद्र में इधर-उधर छटपटाते

स्ततः । षडूर्मिनिग्रहग्रस्तास्तिष्ठन्ति हि कुतार्किकाः ॥ ७२ ॥ वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः । विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितम् ॥ ७३ ॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः । पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः ॥ ७४ ॥ वाक्यच्छन्दो निबन्धेन काव्यालङ्कारशोभिताः । चिन्तया दुःखिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः ॥ ७५ ॥ अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चान्यथा । अन्यथा शास्त्रसद्भावा

हुए कुतार्किक षडूर्मियों (शोकादि छह ऊर्मियों) को रोकने में व्याकुल रहते हैं (अर्थात् कुतर्क से द्वैतज्ञान ही में पड़े रहते हैं) ॥ ७२ ॥ वेद, शास्त्र और पुराण का जाननेवाला यदि परमार्थ को नहीं जानता है तो उस विडंबक का कहा हुआ सब कौआ के बोलने के समान वृथा है ॥ ७३ ॥ 'यह ज्ञान है' और 'यह जानने योग्य है' इस चिन्ता से व्याकुल तथा परमतत्त्व (ईश्वरीय ज्ञान) से विमुख लोग रात-दिन शास्त्र को पढ़ा करते हैं ॥ ७४ ॥ सुन्दर वचन और छन्दों की रचना द्वारा काव्य-अलंकार से शोभित तथा चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियोंवाले मूढ़ सदा दुःखित रहते हैं ॥ ७५ ॥ परमतत्त्व तो और ही है (अर्थात् गुरुलक्ष्य है) परन्तु

मनुष्य उससे विपरीत क्लेश उठाते हैं (अर्थात् कुतर्कों से जानने का प्रयास करते हैं) तथा शास्त्र का भाव तो और कुछ है परन्तु व्याख्या उससे विपरीत ही करते हैं ॥ ७६ ॥ गुरु आदि के उपदेशरहित अहंकारी पुरुष स्वयं तो अनुभव करने की सामर्थ्य नहीं रखते और दूसरों से पूछने में उन्मनी भाव कहते हैं (अर्थात् अन्य से पूछने में लज्जा करते हैं) ॥ ७७ ॥ वेद और शास्त्र को पढ़ते हैं और परस्पर एक दूसरे को बोध कराते

व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा ॥७६॥ कथयन्त्युन्मनीभावं स्वयं नानुभवन्ति च। अहंकाररताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः ॥ ७७ ॥ पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम्। न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा ॥ ७८ ॥ शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जानाति नासिका। पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः ॥ ७९ ॥ तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति। गोपः

हैं परन्तु वे परमतत्त्व को ऐसे नहीं जानते हैं जैसे कलछी पाक के रस को नहीं जानती है ॥ ७८ ॥ शिर तो पुष्पों की माला को धारण करता है परन्तु उनकी सुगन्धि को नासिका जानती है। इसी प्रकार वेद-शास्त्र को तो पढ़ते हैं परन्तु उनके भाव का बोध होना दुर्लभ है ॥ ८९ ॥ मूढ़ मनुष्य आत्मा में स्थित तत्त्व को

नहीं जानकर शास्त्रों में मोहित होता है जैसे खराब बुद्धिवाला गुवालिया काख में बकरी के रहते हुए भी उसे कुएँ में देखता है ॥ ८० ॥ संसार का मोह नाश होने के लिए केवल शब्द का बोध समर्थ नहीं है, जैसे दीपक की बात करने से अन्धकार निवृत्त नहीं होता है ॥ ८१ ॥ बुद्धिहीन मनुष्य का पढ़ना ऐसा है जैसे

कुक्षिगते छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः ॥ ८० ॥ संसारमोहनाशाय शब्दबोधो न हि क्षमः । न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया ॥ ८१ ॥ प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम् । अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य लक्षणम् ॥ ८२ ॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति । दिव्यवर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥ ८३ ॥ अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः । तस्मा-

अन्धे को दर्पण (आयना) । इससे बुद्धिमानों के लिए ही शास्त्र तत्त्वज्ञान का लक्ष्य करानेवाला है ॥ ८२ ॥ 'यह ज्ञान है' 'यह जाननेयोग्य है' इन सबके सुनने की इच्छा करता है परन्तु देवताओं के हजार वर्ष की आयु होने से भी शास्त्र का पार नहीं मिलता है ॥ ८३ ॥ शास्त्र तो अनेक हैं, आयु थोड़ी है और विघ्न करोड़ों

हैं इसलिए सार वस्तु को जान लेना चाहिए। जैसे हंस जल में से दूध को जान लेता है ॥ ८४ ॥ बुद्धिमान् पुरुष वेद और शास्त्रों का अभ्यास करके उनमें से तत्त्वज्ञान को जानकर सब शास्त्रों को छोड़ दे। जैसे धान चाहनेवाला पयाल में से धान निकालकर पयाल को छोड़ देता है ॥ ८५ ॥ हे गरुड़ ! जैसे अमृत से तृप्त हुए

त्सारं विजानीयात्क्षीरं हंस इवाम्भसि ॥ ८४ ॥ अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाथ बुद्धिमान्। पलालमिव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत् ॥ ८५ ॥ यथामृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्। तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य न शास्त्रेण प्रयोजनम् ॥ ८६ ॥ न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि। ज्ञानादेव हि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ॥ ८७ ॥ नाश्रमः कारणं मुक्ते-

को भोजन से प्रयोजन नहीं रहता उसी प्रकार तत्त्व जाननेवाले को शास्त्र से प्रयोजन नहीं है ॥ ८६ ॥ हे विनता के पुत्र गरुड़ ! वेद के अध्ययन और शास्त्र के पढ़ने से मुक्ति नहीं होती है। केवल ज्ञान से ही मुक्ति होती है इससे अन्यथा नहीं ॥ ८७ ॥ मुक्ति का कारण न तो आश्रम ही है, न दर्शनशास्त्र ही है तथा

अग्निहोत्र आदि कर्म भी मुक्ति के कारण नहीं हैं। मुक्ति का कारण केवल ज्ञान ही है ॥ ८८ ॥ गुरु की एक वाणी ही मुक्ति की देनेवाली है अन्य सब विद्याएँ विडम्बनामात्र हैं। जैसे लकड़ी के हजारों गट्ठों में एक ही संजीवन बूटी श्रेष्ठ होती है ॥ ८९ ॥ क्रियाओं के परिश्रम से रहित शिवरूप (कल्याणकारक) अद्वैत ही

दर्शनानि न कारणम्। तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥ ८८ ॥ मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा विडम्बिकाः। काष्ठभारसहस्रेषु ह्येकं संजीवनं परम् ॥ ८९ ॥ अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं क्रियायासविवर्जितम्। गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागमकोटिभिः ॥ ९० ॥ आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते। शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्म विवेकजम् ॥ ९१ ॥ अद्वैतं केचि-

कहा है। वह गुरु के मुखारविन्द से ही मिल सकता है करोड़ों शास्त्रों के पढ़ने से नहीं मिलता ॥ ९० ॥ ज्ञान दो प्रकार का है एक शास्त्रों के द्वारा और दूसरा विवेक से उत्पन्न। शास्त्रमय ज्ञान तो शब्दमय ब्रह्म है और विवेक से उत्पन्न परब्रह्ममय ज्ञान है ॥ ९१ ॥ कोई तो अद्वैत को श्रेष्ठ मानना चाहते हैं और कोई द्वैत की

इच्छा करते हैं परन्तु इस द्वैत और अद्वैतरहित समतत्त्व को नहीं जानते हैं ।। ९२ ।। 'मेरा नहीं है' और 'मेरा है' यही दो पद मोक्ष और बन्धन के लिए हैं । 'मेरा है' इससे जीव बँध जाता है और 'मेरा नहीं है' इससे जीव बन्धन से छूट जाता है ।। ९३ ।। कर्म वही है जिससे बन्धन न हो और विद्या वही है जो मुक्ति देनेवाली

दिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे । समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥ ९२ ॥ द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च । ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥ तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा । आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥ ९४ ॥ यावत्कर्माणि दीयन्ते यावत्संसारवासना । यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥ ९५ ॥ यावद्दे-

हो । अन्य कर्म तो केवल परिश्रम के लिए हैं तथा अन्य विद्या केवल शिल्प में निपुणता दिखाने को है ।। ९४ ।। जब तक कर्म किये जाते हैं और जब तक सांसारिक भोगों में वासना और इन्द्रियों में चपलता है तब तक तत्त्व की कथा कहाँ है ? ।। ९५ ।। जब तक देह में अभिमान है और जब तक ममता है तथा

प्रयत्न का वेग है और जब तक संकल्प की कल्पना है ॥ ९६ ॥ जब तक मन स्थिर नहीं होता है और जब तक शास्त्र का विचार है तथा जब तक गुरु की कृपा नहीं होती है तब तक तत्त्व की कथा कहाँ है ? (अर्थात् जब तक पूर्वोक्त भाव हैं तब तक तत्त्वज्ञान नहीं मिलता है) ॥ ९७ ॥ तब तक ही तप, व्रत, तीर्थ, जप,

हाभिमानश्च ममता यावदेव हि । यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्सङ्कल्पकल्पना ॥ ९६ ॥ यावन्नो मानसस्थैर्यं न यावच्छास्त्रचिन्तनम् । यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥ ९७ ॥ तावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम् । वेदशास्त्रागमकथा यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ ९८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा । तत्त्वनिष्ठो भवेत्तार्क्ष्य यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥ ९९ ॥ धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च । तापत्रयादिसंतप्तश्छायां मोक्षतरोः

होम, पूजन और वेद-शास्त्र की कथा है जब तक कि तत्त्वज्ञान नहीं प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ हे गरुड़ ! इसलिए यदि अपना मोक्ष चाहे तो सब प्रकार का यत्न करके सदा सब अवस्थाओं में तत्त्वनिष्ठ होना चाहिए ॥ ९९ ॥ तीनों तापों (दैहिक, दैविक, आध्यात्मिक) से सताये हुए मनुष्य को धर्म और ज्ञानरूपी

फूलवाले तथा स्वर्ग और मोक्षरूपी फलवाले मोक्ष वृक्ष की छाया का आश्रय लेना चाहिए ॥ १०० ॥ इसलिए ज्ञान करके श्रीगुरु के मुख से आत्मतत्त्व को जानना चाहिए। आत्मतत्त्व के जान लेने से जीव इस कठिन संसार बन्धन से सुखपूर्वक छूट जाता है ॥ १०१ ॥ तत्त्व के जाननेवालों का जो अन्तिम कर्तव्य है उसको अब

श्रयेत् ॥ १०० ॥ तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात्। सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात् ॥ १०१ ॥ तत्त्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना। येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्म निर्वाणसंज्ञकम् ॥ १०२ ॥ अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः। छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥ १०३ ॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः। शुचौ-

कहता हूँ सुनो, जिसके करने से मुक्त होकर ब्रह्मनिर्वाणपद को प्राप्त होता है ॥ १०२ ॥ अन्तकाल के आने पर पुरुष मृत्यु से निर्भय होकर असङ्गरूपी शस्त्र से देह में जो इच्छा है उसको त्याग दे और जो पुत्रादि हैं उनको भी त्याग कर दे ॥ १०३ ॥ धीर पुरुष घर से निकलकर पुण्य तीर्थों के जल में स्नान करे और एकान्त

पवित्र स्थान में विधिवत् आसन लगाकर बैठ जावे ॥ १०४ ॥ और परब्रह्म का त्रिवृत् शुद्ध अक्षर जो ओंकार है उसका मन से अभ्यास करे तथा ब्रह्मबीज (ॐ) का स्मरण करता हुआ श्वास को जीतकर मन को वश में करे ॥ १०५ ॥ बुद्धिरूपी सारथीवाला मनुष्य मन के द्वारा इन्द्रियों को रोकर कर्मों में लगे हुए मन को

विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १०४ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् । मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १०५ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान् मनसा बुद्धिसारथिः । मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ १०६ ॥ अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् । एव समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ १०७ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मा-

बुद्धि से शुभ कामों में लगावे ॥१०६॥ अर्थात् परमधामरूप ब्रह्म में हूँ, 'परमपदरूप ब्रह्म मैं हूँ' ऐसा विचारकर उपाधिरहित आत्मा में आत्मा को लगाकर ॥ १०७ ॥ ॐ इस एक अक्षर का उच्चारण करता हुआ और मेरा (भगवान् का) स्मरण करता हुआ जो शरीर का त्याग करता है वह परमगति (मोक्ष)

को प्राप्त होता है ॥ १०८ ॥ ज्ञान और वैराग्य-से रहित कपटी जहाँ नहीं जा सकते हैं उस गति को बुद्धिमान् ही पाते हैं वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १०९ ॥ मान-मोह से रहित, संगदोष को जीते हुए, अध्यात्म में निष्ठावाले, कामनाओं से निवृत्त, सुख-दुःख संज्ञावाले द्वन्द्वों से छूटे हुए ज्ञानी मनुष्य नाशरहित पद को पाते हैं ॥ ११० ॥

मनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १०८ ॥ न यत्र दाम्भिका यान्ति ज्ञानवैराग्यवर्जिताः । सुधियस्तां गतिं यान्ति तामहं कथयामि ते ॥ १०९ ॥ निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनिष्ठा विनिवृत्तकामाः । द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ११० ॥ ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १११ ॥ प्रौढवैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक् ।

जो मनुष्य सत्यरूपी जलवाले तथा राग-द्वेषरूपी मैल को छुड़ानेवाले ऐसे ज्ञानरूपी कुण्डवाले मानसतीर्थ में स्नान करता है वही मोक्ष को पाता है ॥ १११ ॥ दृढ़ वैराग्य को धारण कर जो मुझे अनन्य भाव से भजता

है वही पूर्ण दृष्टि और प्रसन्नात्मा मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११२ ॥ जो मरने की इच्छा से घर छोड़कर तीर्थ में जाकर बसता है और मुक्तिक्षेत्रों में मर जाता है वह निश्चय मुक्त हो जाता है ॥ ११३ ॥ अयोध्या, मथुरा, मायापुरी, काशी, काञ्चीपुरी, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावती (द्वारकापुरी) ये सातों मुक्ति

पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११२ ॥ त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः । म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११३ ॥ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका । पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ ११४ ॥ इति ते कथितस्तार्क्ष्य मोक्षधर्मः सनातनः । ज्ञानवैराग्यसहितोयं श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११५ ॥ मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः । पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति

देनेवाली हैं ॥११४॥ हे गरुड़ ! यह सनातन मोक्ष का धर्म तुमसे कह दिया है, ज्ञान-वैराग्ययुक्त पुरुष इसको सुनकर मुक्त हो जाता है ॥११५॥ तत्त्व के जाननेवाले मोक्ष को प्राप्त होते हैं और धर्म करनेवाले स्वर्ग को

जाते हैं तथा पापी दुर्गति को प्राप्त होते हैं और पशु-पक्षी संसार में उत्पन्न होते हैं और मरते हैं ॥ ११६ ॥ इस प्रकार मैंने सोलह अध्यायों से सब शास्त्रों का सार निकालकर तुमसे कह दिया है फिर और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ११७ ॥ सूतजी कहते हैं कि हे राजन् ! गरुड़जी भगवान् के मुखारविन्द से इस प्रकार के

खगादयः ॥ ११६ ॥ इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः । मया ते षोडशाध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं श्रुत्वा वचो राजन् गरुडो भगवन्मुखात् । कृताञ्जलिरुवाचेदं तं प्रणम्य मुहुर्मुहुः ॥ ११८ ॥ भगवन् देवदेवेश श्रावयित्वा वचोऽमृतम् । तारितोऽहं त्वया नाथ भवसागरतः प्रभो ॥ ११९ ॥ स्थितोऽस्मिगतसन्देहः कृतार्थोऽस्मि न संशयः ।

वचन सुन हाथ जोड़कर, बार-बार भगवान् को प्रणाम करके कहने लगें कि ॥ ११८ ॥ हे भगवन् ! हे देवेश ! हे नाथ ! हे प्रभो ! आपने अमृतरूपी वचन सुनाकर मुझे भवसागर से उतार दिया ॥ ११९ ॥ मैं अब सन्देह से रहित हो कृतार्थ हो गया हूँ इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार कहकर गरुड़ चुप होकर बैठ गया और

भगवान् के ध्यान में तत्पर हो गया ॥ १२० ॥ जो स्मरण करने से दुर्गति का हरनेवाला है और पूजन-यज्ञ करने से उत्तम गति को देनेवाला है तथा अपनी पराभक्ति से जो मुक्ति देता है वह भगवान् मेरी रक्षा करें ॥ १२१ ॥ इति श्रीबसईग्रामनिवासिगौड़वंशोद्भवपण्डितमनीलालात्मजखूबचन्दशर्मविरचितायां गरुड़पुराण-

इत्युक्त्वा गरुडस्तूष्णीं स्थित्वा ध्यानपरोऽभवत् ॥ १२० ॥ स्मरणाद्दुर्गतिहर्ता पूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता । यः परया निजभक्त्या ददाति मुक्तिं स मां हरिः पातु ॥ १२१ ॥ इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मं निरूपणो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्याख्यातं मया तार्क्ष्य सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् । दशाहाभ्यन्तरे श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ इदं चामुष्मिकं कर्म पितृमुक्ति-

सारोद्धारभाषाटीकायां भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मनिरूपणो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे गरुड़ ! मैंने इस प्रकार मरने के पश्चात् का सब कर्तव्य कर्म कहा है । दश दिन के भीतर इसको सुनने से सब पाप छूट जाते हैं ॥ १ ॥ यह परलोक के लिए किया हुआ कर्म पितरों को

मुक्ति देनेवाला और कर्ता पुत्र को वांछित फल देनेवाला तथा इस लोक और परलोक में सुख देनेवाला है ॥ २ ॥ जो नास्तिक नीच पुरुष इस पितृकर्म को नहीं करते हैं उनका जल भी निस्सन्देह मदिराके तुल्य समझकर नहीं पीना चाहिए ॥ ३ ॥ देवता और पितर उनके घर को कभी नहीं देखते हैं। पितरों के प्रकोप

प्रदायकम्। पुत्रवाञ्छितदं चैव परत्रेह सुखप्रदम् ॥ २ ॥ इदं कर्म न कुर्वन्ति ये नास्तिकनराधमाः। तेषां जलमपेयं स्यात्सुरातुल्यं न संशयः ॥ ३ ॥ देवताः पितरश्चैव नैव पश्यन्ति तद्गृहम्। भवन्ति तेषां कोपेन पुत्राः पौत्राश्च दुर्गताः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवेतरेऽपि च। ते चाण्डाल-समा ज्ञेयाः सर्वे प्रेतक्रियां विना ॥ ५ ॥ प्रेतकल्पमिदं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः। उभौ तौ पापनिर्मुक्तौ दुर्गतिं नैव गच्छतः ॥ ६ ॥ मातापित्रोश्च

से उनके पुत्र और पौत्र दरिद्री होते हैं ॥ ४ ॥ प्रेत की क्रिया नहीं करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि अन्य सबों को चाण्डाल के समान जानना चाहिए ॥ ५ ॥ इस पुण्यदायक प्रेतकल्प को जो सुनता है और जो सुनाता है ये दोनों पाप से छूट जाते हैं और उनकी दुर्गति नहीं होती है ॥ ६ ॥ माता-पिता के मरने

पर जो पुत्र इस गरुड़पुराण को सुनता है उसके माता-पिता मुक्त हो जाते हैं और पुत्र सन्तानवाला होता है ॥ ७ ॥ जिसने गरुड़पुराण नहीं सुना, गयाश्राद्ध नहीं किया, वृषोत्सर्ग नहीं किया तथा मासिक और वार्षिक श्राद्ध भी नहीं किया वह पुत्र कैसे कहा जा सकता है तथा तीनों ऋणों से कैसे छूट सकता है तथा माता-

मरणे सौपर्णं शृणुते तु यः। पितरौ मुक्तिमापन्नौ सुतः सन्ततिमान्भवेत् ॥ ७ ॥ न श्रुतं गारुडं येन गयाश्राद्धं च नो कृतम्। वृषोत्सर्गः कृतो नैव न च मासिकवार्षिके ॥ ८ ॥ स कथं कथ्यते पुत्रः कथं मुच्येदृणत्रयात्। मातरं पितरं चैव कथं तारयितुं क्षमः ॥ ९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं गारुडं किल। धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं दुःखनाशनम् ॥ १० ॥ पुराणं गारुडं

पिता को तारने के लिए कैसे समर्थ हो सकता है (अर्थात् वह कुछ भी करने को समर्थ नहीं है) ॥ ८-९ ॥ इसलिए सब प्रकार यत्न करके गरुड़पुराण अवश्य सुनना चाहिए। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का देने-वाला तथा दुःख का नाशक है ॥ १० ॥ गरुड़पुराण पुण्यदायक, पवित्र और पापनाशक है। सुननेवालों की

कामनाओं को पूरा करनेवाला होने से सदा सुनने लायक है ॥ ११ ॥ इसके सुनने से ब्राह्मण विद्या को और क्षत्रिय पृथ्वी को पाता है । वैश्य धनवान् होता है तथा शूद्र पातक से छूट जाता है ॥ १२ ॥ श्रोता को चाहिए कि इस पुराण को सुनने के बाद बाँचनेवाले को पहले कहे हुए शय्या आदि सब दान दे । ऐसा न करने से सुनना सफल

पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् । शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि ॥११॥
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियः पृथिवीं लभेत् । वैश्यो धनिकतामेति शूद्रः
शुद्ध्यति पातकात् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा दानानि देयानि वाचकायाखिलानि च ।
पूर्वोक्तशयनादीनि नान्यथा सफलं भवेत् ॥ १३ ॥ पुराणं पूजयेत्पूर्वं वाचकं
तदनन्तरम् । वस्त्रालंकारगोदानैर्दक्षिणाभिश्च सादरम् ॥ १४ ॥ अन्नैश्च

नहीं होता है ॥ १३ ॥ पहले पुराण की पूजा करनी चाहिए फिर वस्त्र, जेवर, गोदान और दक्षिणा से आदरपूर्वक बाँचनेवाले की पूजा करनी चाहिए ॥ १४ ॥ अन्न दान, सोनादान, भूमिदान आदि बहुत-से दानों से बहुत

पुण्य के फल की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक कथावाचक की पूजा करनी चाहिए ।। १५ भगवान् कहते हैं कि कथा बाँचनेवाले की पूजा करने से ही मेरी पूजा हो जाती है इसमें संशय नहीं है । बाँचनेवाले के प्रसन्न

हेमदानैश्च भूमिदानैश्च भूरिभि । पूजयेद्वाचकं भक्त्या बहुपुण्यफलाप्तये ॥ १५ ॥ वाचकस्यार्चनेनैव पूजितोऽहं न संशयः । सन्तुष्टे तुष्टतां यामि वाचकेनात्र संशयः ॥१६॥ इति गरुडपुराणश्रवणफलम् ॥ इति श्रीसारोद्धारे गरुडपुराणं समाप्तम् ॥

होने से मैं भी निस्सन्देह प्रसन्न हो जाता हूँ ।। १६ ।। इति श्रीगरुड़पुराणश्रवणफलम् । इति श्रीसारोद्धारे गरुड़पुराण समाप्तम् ।

आसीद्वेदविदां वरिष्ठविदुषः शुद्धे कुले सन्मतिः
श्रीमान् सर्वसुखः सदा हरिरतश्चन्द्रो मिहिरनामकः।
पुत्रस्तस्य बभूव यो गुणनिधिस्तज्जो मनीलालजोः
तत्पुत्रेण हि खूबचन्द्रविदुषा टीका कृता गारुडी ॥

पञ्चनन्दाङ्कभूवर्षे माघे मासे सिते दले ।
गारुडी लिखिता टीका सा भूयाद्वै सतां मुदे ॥

वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ विद्वान् (ठंढीरामजी) के शुद्ध कुल में भगवद्भक्त श्रीमान् पं० सर्वसुखजी हुए। उनके गुणवान् पुत्र पं० मिहिरचन्दजी हुए और उनके पुत्र पं० मनीलालजी थे। उन्हीं के पुत्र खूबचन्द शर्मा ने गरुड़पुराण की टीका लिखी। संवत् १९९५ के माघ शुक्ल में लिखी हुई गरुड़पुराण की टीका विद्वानों के लिए हर्षप्रद होवे।

इति श्रीगरुड़पुराणं भाषाटीकासहितम्।

पुस्तक मिलने का पता

तेजकुमार बुक डिपो (प्रा0) लिमिटेड

1, त्रिलोक नाथ रोड, लखनऊ। फोन (0522) 2223315

पोस्ट बाक्स 85, हजरतगंज, लखनऊ।

संशोधित संस्करण]   मृद्रक - लक्ष्मी ऑफसेट, संजय गांधी पुरम्, लखनऊ-226 016   [सन् 2014

श्रीमती स्मिता पटवर्धन, प्रबन्ध निदेशिका, तेज कुमार बुक डिपो (प्रा0) लि0 द्वारा प्रकाशित